पार्वती

पार्वती

रामानन्द तिवारी शास्त्री
"भारतीनन्दन"

रचना काल

वासन्तिक नवरात्र

सम्वत् २०१० वि०

से

वासन्तिक नवरात्र

सम्वत् २०१८ वि०

तक

अनुक्रम

श्रीः

नमामि यामिनी-नाथ-लेखालंकृत-कुन्तलाम् ।
भवानीं भव-सन्ताप-निर्वापण - सुधा-नदीम् ॥

नयनों के आलोक-कमल पर राजे श्री कल्याणी,
मधुर कण्ठ की वीणा में हो मुखरित मंगल-वाणी;
भृकुटी पर, बन काल अनय का, नाचे भीषण काली;
पालन, सृजन, नाश में निखरे नित जीवन की लाली।

पार्वती

मङ्गलाचरण

श्रीशिव के पद् - पद्मों में रत रज-सा हो मन मेरा,
हो पराग से पूत सुमन-सा पूजा-हित तन मेरा;
चरण-प्रभा से दीप्त स्वच्छ हो चरम चेतना मेरी,
परा पूर्णिमा से मण्डित हो अविकल अमा अँधेरी।

आत्मा के आलोक-पूर से ज्योतित उर-मन्दिर हो,
करुणा के मृदु आर्द्र दृगों से सिंचित स्वच्छ अजिर हो;
खुलें पटों-से बन्ध हृदय के मुक्त तत्व-दर्शन को,
हों स्वरूप - साकार देवता पुण्य प्राण - वन्दन को।

सजग आरती के दीपक-सा स्नेह-पूर्ण जीवन हो,
भाव-प्रसूनों की सुषमा से युत अर्चा-सा मन हो;
अन्तर का स्वर कम्बु-कण्ठ का गुञ्जित अभिवन्दन हो,
चरण-कृपा से पूत दृगों का जल उज्ज्वल अर्चन हो।

करुणामयी उदार दृष्टि ही हो प्रसाद सुखकारी,
किरण-प्रभा से जागें उर की उज्ज्वल निधियाँ सारी;
चरणों का आलोक दृगों को चरणामृत निर्मल-हो,
अखिल पदार्थों में पूजा का प्राप्त अमृतमय फल हो।

अखिल धर्म का मर्म प्राण में तत्व-ज्योति बन जागे,
अन्तर का आलोक पन्थ पर जगे दृगों के आगे;
श्रद्धा होकर सजग शक्ति से, हो कृतार्थ कल्याणी,
हो चरितार्थ सत्य, सुन्दर औ शिव से मंगल-वाणी।

छन्द छन्द मे मधुर गुञ्जरित हो वाणी की वीणा,
शब्द - अर्थ-स्वर - भाव- व्यञ्जना हो पद-गति मे लीना;
वाणी का वरदान दिव्य यह अमृत काव्य जीवन का
पूर्णकाम परमार्थ विश्व के बने सजग जन जन का।

चरण-प्रभा से पूत दृगों के निर्मल नील गगन में
खिलें कल्पना - लोक सत्य बन सुन्दर श्रेय-सृजन में;
बन जीवन के ज्योतिष्पथ के कुसुम और अंगारे,
खिलें अनन्त साधनाओं के लोक-तुल्य ही तारे।

बनें निसर्ग सर्ग ज्योतिर्मय नक्षत्रों की माला,
निर्मित हो नवीन योगों से भव्य भविष्य निराला;
आत्मा की आलोक - अर्चना बन अभिजित शिवकारी,
आत्म-तन्त्र कर नियति, मानवी संस्कृति करे हमारी।

जीवन के रस, राग, गन्ध से पूर्ण प्रशस्त कुसुम-से
अर्थ-प्रचुर पद, वाक्य, छन्द हों विकसित कल्पद्रुम से;
भावों के स्फुलिंग अवनी के आत्मजात मंगल-से
बनें प्रेरणा नव जीवन की ज्योतिर्मयी अनल से।

स्वाति बिन्दु बन, बिन्दु-बिन्दु इस करुणामय जीवन की
करे मुक्ति का सृजन सीप में मुद्रित जग के मन की;
हंसवासिनी के विहार से मानस पूर्ण सफल हो;
श्री से पूर्ण कृतार्थ मनुज का उज्ज्वल आत्म-कमल हो।

इन्दुकला-सी कर विकीर्ण निज निष्कलंक उजियारा,
शिव की शीषगता गंगा-सी निर्मल जीवन-धारा,
पावन करे कान्ति औ रस से धरणी और गगन को,
छन्द-छन्द हो अमृत तीर्थ-सा जगती के जीवन को।

अन्तर्निहित पुण्य पद पद में दीप्ति तृतीय नयन की
बने भूमिका जग-मंगल के विश्रुत काम-दहन की;
त्रिपुर-विहीन सर्ग की शाश्वत सुषमा बन कल्याणी,
शब्दों में साकार सहज हो मंगलमयी भवानी।

श्री की सुषमा से आलोकित कान्तिमती कल्याणी
दीप्त शक्ति की द्युति-सी उज्ज्वल ओजमयी शुचि वाणी
प्राणों मे साकार, स्वरों में गुञ्जित हो जीवन के;
मंगल के वरदान, वचन हों वाणी के वन्दन के।

वाणी का शृङ्गार सहज हो ओजमयी ऋजु भाषा,
आत्मा का संगीत मुखर : हो कविता की परिभाषा;
हो कल्पना कृतार्थ सत्य के सुन्दर श्रेय सृजन से,
मानवता का मंगल ध्रुव हो वाणी के वन्दन से।

सावित्री-सी अमृतमयी यह गायत्री कल्याणी
संजीवनी दिव्य जीवन की हो ज्योतिर्मय वाणी;
जागृति का वर बन व्याहृतियाँ गुञ्जित हों त्रिभुवन मे,
आत्मा का वर्चस्व उदित हो सविता-सा जीवन में।

जाग्रत स्वर की शिखा दीप्त हो विश्व-क्रान्ति के क्षण में,
निश्वासों के चारवायु से संसृति के कानन में
हो त्रिलोक में व्याप्त चतुर्दिक महाप्रलय की ज्वाला;
जीवन के सुन्दर सुवर्ण का भस्म कलुष हो काला।

उच्छृङ्खल उन्मादमयी हो दग्ध आसुरी होली,
हो पुनीत प्रह्लाद उदित, ले जीवन के रँग-रोली;
आत्मा का अनुराग सुरंजित करे मनुज के मन को,
अन्तर का उल्लास हर्ष से भर दे जग-जीवन को।

बिखराता रुचि-राग-गन्ध-रस वैभव-सा यौवन का,
खिले अपूर्व वसन्त, पर्व बन नव-संस्कृत जीवन का;
हो संस्कृति से पूत प्रकृति ही मर्यादा मानव की,
आत्मा का आनन्द अखण्डित चिर विभूति हो भव की।

करुणा के मेघों से अंचित धरणी की हरियाली
नई उषा के करे भाल पर अंकित पावन लाली;
तप से पूत उमा-सी उज्ज्वल निखरे सृष्टि-कुमारी,
बने नवीन सर्ग की लक्ष्मी वन्दित निर्मल नारी।

श्रद्धा के पीयूष-स्रोत-सी जीवन के समतल में
मानव के विश्वास-शिखर के बहती नित पदतल में,
शक्ति-शिखा बन वह शकर के दीप्त तृतीय नयन की,
इन्दुकला-सी अमृत-ज्योतिमय करे अमा जीवन की।

हों बालक भगवान: विश्व की अर्चा के अधिकारी,
उनके मुक्ति, मोद, गौरव में खिले भूतियां सारी;
उनके तन का तेज जगत में जीवन ज्योति जगाये,
उनके मन का हर्ष लोक का पल पल पर्व बनाये।

जीवन के आनन्द – उत्स – सी लहरें उनकी लीला,
खिलें इन्द्रधनु स्वप्नों का वन छवि से अयुत रँगीला;
रस से सिंचित बीज विश्व के, सफल फूल औ फल में,
ज्योति, राग, रस का वसन्त नित विकसायें पल पल में।

कन्या के निर्मल तन – मन की आभा पुण्य पुनीता
प्रकृति पूत कर, बने मनुज की उज्ज्वल जीवन-गीता;
नारी के स्वतन्त्र गौरव में निधियाँ नव जीवन की
विकसित हों, समृद्ध कर सुषमा तन–मन–नयन-वचन की।

जीवन की कक्षा के ध्रुव युग बन बालक औ नारी
करें विश्व की गति, मति, कृति को सुन्दर मगलकारी;
मानवता के सजग मान के बन कुमार अभिमानी
बनें नवीन स्वर्ग के नेता जयी देव – सेनानी।

आत्मा की विभूति बन निर्मल जीवन – संवित् जागे,
ज्ञान शक्ति से, शक्ति श्रेय औ सुन्दर से अनुरागे;
शिव से संयुत शक्ति जागरित मानवता की जय हो,
सुन्दर–शिव आनन्द सृजन का पर्व अखण्ड अभय हो।

मानस में विकसित हों उज्ज्वल राजकमल जीवन के,
श्री, आलोक, राग, रस, सौरभ वैभव हों जन जन के;
बन पराग अनुराग हृदय का बिखरे मुक्त पवन में,
हो कृतार्थ जीवन मानव का सुन्दर श्रेय सृजन में।

सुषमा का सहस्रदल विकसित हो जन जन के उर में,
सौरभ का आलोक प्रपूरित हो जग के पुर पुर में;
श्री–शिव से सुषमित मानव का संस्कृत तन औ मन हो,
एक अखिल आनन्द–महोत्सव जगती का जीवन हो।

अर्चना

जीवन की पहली ऊषा - सी आदि सर्ग के पल में
हुईं हिमाचल के गौरवमय उदित पुण्य अचल में,
आदि शक्ति वे विश्व - मंगला विश्रुत शैल कुमारी
शंकर वर से आत्म - अर्चना करें कृतार्थ हमारी।

जिनकी महिमा से शिव बन कर जीवन का शव जागा,
जिनकी करुणा से सत्ता ने श्रेय सृजन का माँगा;
जिनकी प्रीति उदार चेतना बन जीवन में छाई,
जिनकी कृपा अपार प्रकृति में कृति - गौरव बन आई;

जिनके पलकों ने भू - नभ के अन्तराल थे खोले,
जिनके स्पन्दन से संसृति के कण हो चंचल डोले;
जिनकी स्मिति से विस्मित सहसा दिव्य दिशायें जागीं,
जिनकी गति से स्फूर्त भव्य से भूत - प्रकृति अनुरागी।

पद - पंकज के धूलि - कणों से रूप विश्व ने पाया,
रवि, शशि, तारों में आभासित हुई कान्ति की छाया;
सौरभ की विभूति संचारित हुई विश्व - जीवन में,
आभा का आलोक रूप की संज्ञा बना भुवन में।

वह अनन्त अवकाश हृदय का नभ - मंडल बन छाया,
रूप, राग, रस, गन्ध और स्वर जिसमें अखिल समाया;
पुण्य प्रकृति की शक्तिमती धृति बनी धरित्री अचला,
भव्यमुखी गति चिर जीवन की बनी शिखरिणी अमला।

दिव्य शक्ति का तेज अग्नि बन उतरा रवि - मण्डल से,
प्राण वायु संचरित हो उठी स्पन्दन के सम्बल से;
श्री की प्राण - विभूति विश्व में पंचभूत बन आई,
ज्ञान, काल, गति में जीवन ने अपनी संज्ञा पाई।

संसृति के सागर के तट पर आदि सर्ग की ऊषा
विहँस खोलती पूर्व क्षितिज पर जीवन की मंजूषा ;
खिले अपूर्व रहस्य राग से रंजित रत्न – निचय – से ,
उत्कण्ठित हो उठी प्रकृति किस वसुधा के विस्मय से।

जीवन की जागृति के अविदित पावन उदय प्रहर में
छवि के कमल अनन्त खिल उठे संसृति के सागर में ;
जीवन की विभूति बन श्री के रूप राग, रस बिखरे
उनकी आभा में संसृति के तत्व पूत हो निखरे।

श्री के तन का तेज रूप बन खिला विश्व की छवि में ,
अन्तर का स्वर अमृत छन्द बन जगा विश्व के कवि में ;
आत्मा का रस बह उर–दृग से बना अमृत की धारा ,
हुआ अंग के सुरभि राग मे आमोदित जग सारा।

प्राण – वायु के अमृत स्पर्श से रोम प्रकृति के पुलके ,
जीवन के स्वर गूँज उठे बन राग रुचिर वंजुल के ;
मूर्त्त हुई मानव रूपों में चिति की अद्भुत माया ,
श्री ने जीवन के स्वरूप में अपना वैभव पाया।

उनके करुणामय अन्तर के उर्ज्जस्वित सागर से
अम्बर में उठ पुण्य पयोधर रस अवनी पर बरसे ;
छवि के शिशुओं–से कुसुमों से खिली प्रकृति की डाली ,
पल्लव के कोमल करतल की गूँज उठी करताली।

नव जीवन हो उठा समुत्सुक जननी के वन्दन को ,
उत्कण्ठित हो उठी प्रकृति भी श्री के अभिनन्दन को ;
हुई कृतार्थ सृष्टि बन शाश्वत अर्चा की अधिकारी ;
धन्य अपूर्व पुण्य से होती जीवन की विधि सारी।

अर्पित की भू ने कुसुमों में अन्तर की निधि सारी;
अम्बर ने अनन्त दीपों में शुचि आरती उतारी;
अन्तरिक्ष ने घन - कलशों का अर्घ्य अनन्त चढ़ाया,
जीवन ने अनन्त रागों में मंगल - वन्दन गाया।

अमित रत्न - निधियाँ वसुधा के निभृत गर्भ में पलतीं,
ज्योति आरती अयुत व्योम में स्वर्ग - शिखा - सी जलतीं;
ध्वनित दिशायें कर अन्तर के मन्द्र - घोष वन्दन से
अमित अमृत के अर्घ्य चढ़ाते मेघ अनन्त गगन से।

तारों से आकुल दृग नभ में स्वप्न - सृष्टि के पलते,
प्राची के पलकों में छवि के स्वर्ग अनन्त मचलते;
ओस - बिन्दु बन व्योम - कुसुम - से उतरे भूपर तारे,
एक उषा की स्मिति - लेखा ने कितने लोक सँवारे।

नयनों की करुणा अवनी के उर में रस बन आई,
अधरों की आभा सुषमा - सी अखिल दिशा में छाई;
हुई कृतार्थ प्रकृति थी अद्भुत दिव्य नवीन सृजन से,
उद्भिज के अंकुर में होती श्री रोमांचित तन से।

किस वसन्त के प्रथम प्रात में पुष्प प्रथम यौवन के
खिल उठते, रुचि अलंकार बन प्रकृति - मनोज्ञ मदन के;
हरी - भरी रंजित धरणी के पुलकित हर्षित तन में
श्री का सुषमित रूप विकसता नव जाग्रत जीवन में।

आभा के अभिजात अमृत - सा उर - सागर में पलता
संसृति के कुसुमों का रस हो पूर्ण फलों में फलता;
शक्ति - बिन्दु - से जिनमें पलते बीज अनन्त सृजन के,
हुये प्रकृति के पूर्ण चक्र में पूर्ण धर्म जीवन के।

स्थावर जीवन मे निसर्ग – श्री कुसुमों में मुसकाती,
पत्रों के मर मर मे वाणी छवि के छन्द सुनाती;
संसृति का रस मौन मूर्त्त था पुष्पों और फलों में,
विस्मित थी अपनी सुषमा पर प्रकृति अखण्ड पलों मे।

जंगम जीवों के जीवन में जीवन गति बन आया,
सत्ता ने गति – संवेदन में नूतन जीवन पाया;
गन्ध, रूप, रस, शब्द, स्पर्श को ग्राहक मिला रसीला,
गति औ संवेदन में जीवन बना मनोरम लीला।

हुई सचेष्ट प्रवृत्ति – रूप में सत्ता चिर जीवन की,
फलित हुई जीवन – रक्षण में वृत्ति सयत्न ग्रहण की;
मिथुन – वृत्ति के मधुर मोह में अर्थ काम ने पाया,
हुई सहज साकार सृजन में चिर जीवन की माया।

सहज वृत्ति, गति, संवेदन में शक्ति सचेतन जागी,
हुआ सृजन के साथ नाश का नव जीवन अनुरागी;
मृदुल जीव : पोषित दूर्वादल, पत्र–पुष्प औ फल से,
हिंस्रों के आहार स्वादुमय बने शस्त्र औ बल से।

हुई मृदुलता में ही प्रकटित शुचि निसर्ग सुन्दरता,
हिंस्रों की श्री – हीन शक्ति में सजग हुई बर्बरता;
ओषधियों से मृदु जीवों ने जो लघु सुषमा पाई,
प्रकृत क्रूरता में हिंस्रों की भीषणता बन आई।

शक्ति – हीन कोमल काया में सहज सृष्टि की सुषमा
बनी मृदुलता मे प्राणों की दुर्बलता की उपमा;
क्रूर शक्ति श्री–हीन जागरित थी बर्बर जीवन में,
रही शक्ति–श्री अचल–मौन–जड़ गिरि–नभ–सागर–वन में।

प्रकट हुई मानव – जीवन मे हो समर्थ सुन्दरता,
होकर श्री से युक्त शक्ति का तेज अपूर्व निखरता;
थी युगपत् साकार शक्ति – श्री मानव के जीवन में,
जीवन हुआ कृतार्थ फलित हो चेतन तन औ मन में।

चिति की ज्योति अखण्ड बनी ध्रुव मुक्त अनन्त गगन में,
शक्ति हुई चरितार्थ चरण के नूपर पन्थ सृजन में;
श्री, शिव औ आनन्द अलक्षित लक्ष्य बने जीवन के,
जिनमें अन्तर्निहित अर्थ थे काम्य अखिल त्रिभुवन के।

अमर हुआ अंकित हो स्मृति में चिर अतीत जीवन का,
काम्य – कल्पना बनी चिरन्तन पन्थ नवीन सृजन का;
काल बना जीवन पा चिति की कान्त क्रम – मयी कलना,
भूत बना विश्वास, भव्य की आशा रचती छलना।

रवि का रंजित तेज दीप्ति बन तन में सहज समाया,
पुष्पों का रस, राग अंग का अगराग बन आया;
चिर – अनन्त बनती जीवन की श्री – विभूति लघु मन में,
आत्मा का आनन्द अमृत बन आया इष्ट- सृजन में।

हुये प्रकृति के रूप धन्य दो नयनों के दर्शन में,
हुये सफल रस मृदु रसना के व्यञ्जित आस्वादन में;
बनी गन्ध आमोद घ्राण के पुलकित प्राण – ग्रहण में,
स्वर बन राग कृतार्थ हो उठे सूक्ष्म सुदूर श्रवण में।

नारी के अलोम अगों में मर्म स्पर्श का निझरा,
विद्युत-सा आलोक गन्ध – रस – छवि – किरणों में बिखरा;
यौवन के अभिजात दर्प से दीपित काम – कुमारी
करती जीवन की कृतार्थता केन्द्रित नर की सारी।

नारी के रमणीय रूप में श्री ने विग्रह पाया,
आदि शक्ति का धर्म सृजन औ पालन बनकर आया;
पशु का दानव-धर्म नाश-बल हुआ सचेतन नर में,
हुये श्रेय-आनन्द तिरोहित जीवन के भंगर में।

तन की वृत्ति निसर्ग प्रेय का पन्थ प्रशस्त दिखाती,
मन की अन्तर्ज्योति श्रेय का रूप मनोज्ञ खिलाती;
अन्तर के संघर्ष-बिन्दु पर कक्षा नर-जीवन की
बनी अलक्षित ध्रुवा: धारिणी जीवन और मरण की।

नारी के सौन्दर्य-जाल मे उलझा प्रकृत अहेरी,
बर्बरता बन गई मनोहर कोमलता की चेरी;
तन का काम त्याग-सेवा-मय प्रेम बन गया मन का,
यायावर को जगा अलक्षित मोह गेह-बन्धन का।

खिला स्वर्ग का कमल मनोहर जब घर के आँगन में,
उदित हुआ जब इन्दु गगन का जीवन के दर्पण में;
शक्ति-दर्प में स्नेह-शिखा तब नई ज्योति-सी जागी,
रति का कामी काम प्रीति का बना सहज अनुरागी।

प्रकृति प्रशस्त हुई सस्कृति बन नव जीवन के पथ में,
हुये अपूर्व भाव अन्तर में उदित प्रगति के अथ में;
बना सृजन सौन्दर्य. श्रेय औ रस की दिव्य त्रिवेणी,
पाई प्रेम-पुनीत काम ने देवों की पद-श्रेणी।

फूलों से सुकुमार अंग में, जग की सुषमा सारी
हो सजीव साकार भर उठी कौतुक की किलकारी;
नारी हुई कृतार्थ समर्पित निज रति गति, कृति करके,
नारी के उपहार बन गये गर्व, दर्प, बल नर के।

नारी ने मातृत्व - मान पर सब अधिकार लुटाये,
जीवन के उत्सर्ग - पर्व में पूर्ण काम सब पाये;
बन कर सृष्टि-निमित्त, मुक्ति का पुरुष प्रकृत अधिकारी
प्रभुता के सम्भ्रान्त दर्प में बना सहज अतिचारी।

बनी चरण की चेरी नर की, जग की मंगल माता,
बना कामचारी जीवन का सहज प्रसिद्ध विधाता;
होकर कण्ठगता जीवन की सरस्वती कल्याणी,
बनी चतुर्मुख के वदनों की अमृत वेदमय वाणी!

प्राणों के मृदु मर्म - सार से पोषण करती नारी
चिर जीवन का, कर जीवन को जीवन पर बलिहारी;
उर के क्षीर सिन्धु में सुख से नयन मूँद कर सोये
श्री के वर - से विदित विष्णु बन नर ने लोक सँजोये।

चिर अखण्ड सेवा औ तप से विश्रुत शैल - कुमारी
करती शिव का वरण : चराचर लोकों का हितकारी;
प्रलयंकर को भी शिव - शंकर देती बना भवानी,
दनुजों से संत्रस्त देवता पाते निज सेनानी।

नर की शेष कामनाओं के स्वर्ग लोक की रानी
अखिल तपों के उत्तम फल-सी बनी अजर इन्द्राणी;
यौवन - रूप - विलास - दर्प की प्रतिमा चिर-मनहारी
करती नर का मन अनुरंजन दिव्य अनन्त - कुमारी।

वाणी के मंगल - गीतों में ब्रह्मा मुखरित होते,
पुण्य पयोधर के सागर में विष्णु सनातन सोते;
तेज और तप से शंकर को देती रूप भवानी,
चिर यौवन से धन्य इन्द्र को करती नित इन्द्राणी।

जीवन की अक्षय सुषमा की बन लक्ष्मी कल्याणी,
जीवन के मगल-गीतों की बन कर मजुल वाणी,
जीवन के तप, योग, श्रेय की बन कर भव्य भवानी,
बन कर भी अभिशप्त इन्द्र की चिर युवती इन्द्राणी,

बन न सकी उन्मुक्त प्रकृति की नर की संस्कृति नारी,
प्रीति-भोज से तृप्त न होता वह आखेट-विहारी;
हो न सका सौन्दर्य - सृष्टि से स्वयं कृतार्थ विधाता,
बन न सका संसृति का स्वामी संस्कृति का निर्माता।

सुन्दरता की सदा प्रफुल्लित कल्पलता - सी नारी
नर के दृप्त दर्प पर करती रही सुमन बलिहारी;
किन्तु सुमन बन सके कभी क्या सुरभि उपल-अन्तर की!
नारी के श्री - शील बन सके नय कब प्राकृत नर की!!

मृदुल अक मे लिये दिव्य शिशु सुन्दरता का नारी
श्री-विभूति करती जीवन की भेंट अयाचित सारी;
कब प्रीणित कर सकी पुरुष को श्रेयमुखी सुन्दरता,
रही सदा उन्मत्त शक्ति बन जीवन की बर्बरता।

दानवता का दृप्त रूप बन, वह बर्बरता नर की
करती रही सदा जीवन में रचना रक्त-समर की;
श्री-सौन्दर्य - शील का घातक, अर्थ-काम का कामी
दनुज रहा सुर, मुनि, मानव के स्वत्वों का अतिगामी।

जीवन के सौन्दर्य - स्वप्न के स्वर्ग - लोक के वासी
निर्जर यौवन के नन्दन में रति के नित्य विलासी,
चिर - युवती अप्सरा बनाकर मुक्त मानसी नारी,
नर के कल्प-कुमार देवता बने अनन्त विहारी।

जीवन के उत्कृष्ट सत्व की सौम्य मूर्ति से भोले
ऋषि-मुनि, वन में तत्व विश्व के गूढ़ जिन्होंने खोले,
ज्ञान, योग, तप औ समाधि की रहे साधना करते
आत्मा के आलोक-दीप से रहे विश्व-तम हरते।

अन्तर्नयनों से जीवन के खोज रहस्य निराले,
मानवता के हित शब्दों के दृढ़ सांचे में ढाले;
जीवन के आलोक-दीप-से ज्ञान-ग्रन्थ वे जलते
रहे शलभ-मन को मानव के सदा स्वप्न-से छलते।

रहे कीट-कुल उन ग्रन्थों में छिद्र अनन्त बनाते,
दनुजों के उत्पात दीप को आँधी-तुल्य बुझाते;
कब उनका उपचार ज्ञान का योग-न्याय कर पाया!
रही सदा दुर्जेय ज्ञान को दानवता की माया।

मानवता बनकर ज्योति-पन्थ के शलभ-तुल्य अनुचारी
रहे मानते श्रद्धा में ही निज कृतार्थता सारी;
श्रद्धापूर्ण धर्म के सुन्दर श्रेष्ठ सनातन फल सा
काम्य स्वर्ग अमरों का छलता रहा उन्हें मृग-जल-सा।

रहे पालते दुर्बलतायें ले ईश्वर की छाया,
रहे धर्म में प्रश्रय पाते सदा मोह औ माया;
बना नरक का द्वार श्रेयसी चिन्तामणि-सी नारी
बने दनुज के दास शास्त्र के वे अखण्ड अधिकारी।

धर्म, कला, साहित्य सभी में रहा स्वर्ग वह पलता,
अन्तर्निहित अप्सराओं का मोह निरन्तर छलता;
ज्ञान-योग में नहीं शक्ति का तेज दीप्त कर पाये
दुर्बलता के पाप शाप बन बहु जीवन में छाये।

विरत हुये मानव जीवन से योगी, यती, विरागी,
रहे राग में लीन विलासी मात्र भोग के भागी;
रही एक को त्याज्य, अपर को केवल भोग्या नारी,
मान सका कब पुरुष उसे निज गौरव की अधिकारी।

बना अप्सरा औ अकिंचना निज चरणों की दासी
नारी को, रत रहे सुरति मे नर स्वच्छन्द-विलासी;
बना बालकों को गुरुओं का अनुचर आज्ञाकारी
वर्तमान शासक – नर बनते भावी के अधिकारी।

अहंकार – शासन में नर की मोह-मद-मयी निष्ठा
कर न विश्व – मन्दिर में पाई शिशु की प्राण-प्रतिष्ठा;
नारी के श्री शील दर्प में अन्वित करके सारी
शक्ति संगठित, बन न सके वे कभी विजय – अधिकारी।

ऋषि – मुनि करते रहे योग तप दुर्गम गिरि-कानन में,
करते रहे विहार देवता यौवन के नन्दन में;
श्रद्धा से विमूढ़ नर उनकी अन्ध अर्चना करते,
दानव अपनी दृप्त शक्ति का रहे दम्भ नित भरते।

शक्तिहीन वह ज्ञान, योग, तप निष्फल था जीवन में,
शक्तिहीन सौन्दर्य बन गया शाप अमर यौवन में,
शक्तिहीन श्रद्धा मानव की बनी दीन दुर्बलता,
दानव का अनिरुद्ध प्रकृति – बल रहा सभी को दलता।

मरे दानवों के अस्त्रों से कितने मुनि बेचारे,
कर असुरों से युद्ध देवता कितनी बार न हारे;
अनाचार सह बहु दनुजों के रहे मनुज बस जीते,
प्राणों को सर्वस्व मान कर घूँट रक्त के पीते।

विग्रह - से सौन्दर्य - शील के कितने बालक भोले
दनुजों की बलि हुये, न नर ने किन्तु नयन निज खोले,
लाज न कितनी कुल - कन्याओं औ वधुओं की लूटी,
किन्तु मोह - निद्रा मानव की नहीं कथंचित् टूटी।

दानव के दुर्दप्त काम की वेदी पर बेचारी
विवश हुई बलि, जाने कितनी सुन्दर शील - कुमारी;
कितनों का कौमार्य असुर की क्रूर अंक में रोया,
कितनों का सिन्दूर समर की रक्त - पंक में धोया।

सुर, मुनि औ मानव के निष्फल भोग, योग, शासन में
जीवन की श्री रही अरक्षित जीवन में औ रण में;
शान्ति, त्याग औ शासन सहकर सबका सन्तत नारी
करती रही आत्म–महिमा से दीपित संसृति सारी।

विकसित करती राजकमल नित पंकिल जीवन–सर में,
श्री–सौरभ विकीर्ण करती प्रति नूतन उदय प्रहर में;
हो जीवन की अमृत–कला–सी उदित शीष पर हर के
हरती रही कलुष कर्मों के सदा निशाचर नर के।

रहे पुरुष अपवाद तुल्य कुछ शिव का सेवन करते,
पर एकाकी रहे असुर के उत्पातों से डरते;
सदा विशृङ्खल दुर्बलता में रहा श्रेय निष्फल था,
संघ–शक्ति का उसे प्राप्त कब हुआ विजयमुख बल था।

मानवता के गर्व - दर्प के ओजस्वी अधिकारी
कुछ नर–सिंहों ने गौरव से मण्डित की शुचि नारी;
उसकी मर्यादा–हित रण में विदित वीरगति पाई
उसके चरणों में प्राणों की भेंट सहर्ष चढ़ाई।

मानव के अभिजात इन्द्र की मनोमोहिनी माया
बन अप्सरियों ने मुनियों का कितना मोह मिटाया;
कितनी छिन्न-मस्तकाओं ने शीश समर्पित करके
मोह मिटाकर, प्राण ओज से भरे निरन्तर नर के।

धर्म-ज्ञान से भ्रान्त रही पर यह मानवता भोली,
सहती जीवन से दनुजों की निर्दय दृप्त ठिठोली;
ज्ञानयज्ञ में शक्ति-शिखा बन कब मानवता जागी,
कब मानव बन सका मुक्त श्री-गौरव का अनुरागी।

किन्तु पराजित भी जीवन में भव्य विजय की आशा,
रही सदा चेतन मानव के जीवन की परिभाषा;
रही विजयिनी प्रकृति, मोह बन मानवता का भारी,
आत्म-ज्योति-सी रही अखण्डित पर आलोकित नारी।

सुर-नर की आत्मा में सन्तत अमृत ज्योति-सी जलती,
कौन शक्ति-श्री रही नाश में दिव्य-सर्ग सी पलती;
रही अमा के असित भाल पर रचती उज्ज्वल राका,
रही पराजय के तोरण पर धरती विजय पताका।

रही निराशा के तम-पथ में अमृत-ज्योति बिखराती,
रही आँसुओं के पावस में विद्युत-सी मुसकाती;
अपराजिता रही जीवन की भव्य चिरन्तन आशा,
मानवता के मंगल की वह रही नित्य परिभाषा।

लक्ष्मी सी जीवन में सन्तत श्री-सौरभ बिखराती,
सरस्वती-सी वह जीवन के गीत चिरन्तन गाती;
रही नृशंस विनाश-निशा में दीप सृजन के धरती,
रही सृष्टि का अमृत-स्रोत से उर के पालन करती।

रही सदैव विनाश – निशा में बीज सृजन के बोती,
पलकों की करुणार्द्र उषा में छवि के स्वर्ग सँजोती,
बन जीवन के विषम देश की निर्मल अन्तर्धारा,
जीवन का मृदु मर्म सींचती रही अमृत – रस द्वारा।

बन शिव के तप – योग – प्रेम से विधिवत् वृता भवानी,
करती सूत स्वर्ग – अवनी के संरक्षक सेनानी;
प्रलय – शिखा – सी कभी तेज से होकर दीप्त कराली,
असुरों के विनाश – हित बनती काल – निशा – सी काली।

दर्पवती दुर्गा बन करती ध्वंस असुर का रण में,
मानवती लक्ष्मी बन गिरती वज्र सदृश पाहन में;
जिन हाथों मे रही सुशोभित जीवन की जयमाला,
हुई दीप्त करवाल उन्हीं मे बन प्रलयंकर ज्वाला।

जीवन की सौन्दर्य – सृष्टि के सुन्दर बाल – कमल को
रही खिलाती, कर प्रच्छालित सदा प्रकृति के मल को;
कर उद्धार सदैव सर्ग का श्री के, बन वाराही,
रचती रही क्षितिज – पलकों में सुषमायें मनचाही।

जीवन के प्रह्लाद पूत को, स्वसा असुर की होली
करने लगी विनष्ट, श्रेय की कर उन्मत्त ठिठोली,
होली का उन्माद भस्म कर, बन जीवन की ज्वाला,
वक्ष विदीर्ण नारसिंही ने दानव का कर डाला।

जब असुरों से घोर युद्ध कर विवश देवता हारे,
जब अमरों के मान विमर्दित हुये समर मे सारे;
नई शक्ति – नय से दुर्बलता हर कर दिव की सारी,
करती पन्थ प्रशस्त विजय का बन अजेय कौमारी।

जीवन के कैलाश कूट पर तप के उज्ज्वल फल – सी,
संसृति के मानस में खिलती श्री के शुभ्र कमल – सी;
सौरभ का आलोक बाँटते कर – पल्लव वरदानी,
करती चिर कल्याण विश्व का मंगलमयी भवानी।

होकर तप से पूत प्रकृति – सी ब्रह्मचारिणी बाला,
अर्पित करती मदन – दहन को जीवन की जयमाला;
भूत प्रकृति के पारंगत वे भूतनाथ चिर त्यागी,
उनके पूत स्नेह से बनते जीवन के अनुरागी।

शीषगता गंगा की धारा त्रिभुवन पावन करती,
भालगता विधुकला विश्व का अन्धकार सब हरती;
अंक गता उनकी सुहागिनी बन विख्यात भवानी,
बनती ताप – त्रस्त त्रिभुवन की श्रेय सरणि कल्याणी।

युगल योग – तप का प्रशस्त फल शिव–कुमार सेनानी
परशुराम – से शस्त्र – शास्त्र के पाकर गुरु विज्ञानी;
त्रिभुवन मे नर–मुनि- देवों की जय का पन्थ बनाता,
ज्ञान–शक्ति–संयोग विश्व का अभय मन्त्र बन आता।

बनता स्वर्ग नवीन शक्ति का स्रोत अखण्ड प्रतापी,
शोणित–पुर की सत्ता उसकी नई प्रगति से काँपी;
बनती नया प्रकाश धरा का नये स्वर्ग की छाया,
देवों के नूतन जीवन मे जीवन जग ने पाया।

ज्ञान–शक्ति – सौन्दर्य – शील -युत तेज पराक्रम शाली
मानवता के षड्धर्मों की करके सिद्ध प्रणाली,
षड्विध प्रमुख कुमार विश्व मे था षण्मुख कहलाया;
संज्ञा का गौरव जीवन मे था कृतार्थ बन आया।

तारक के अवशेष पाप - से त्रिपुरों के शासन में
अनाचार आरूढ़ हुआ जब ज्ञान, शक्ति औ धन मे,
बैठ विश्व रथ मे तब शिव के संग समर्थ भवानी;
बनी नवीन शील - संस्कृति की मंगलमय अगवानी।

मानव - संसृति के जीवन को प्रबल आसुरी माया
उद्यत हुई अन्त करने पर जब जब धर कर काया
तब तब श्रद्धा - शक्ति मानवी, होकर सजग पुनीता,
हुई सहज साकार विश्व की विधि - मुख मंगल-गीता।

दृष्टि - श्वास - बल-शक्ति - भावना- सहित श्रेयसी वाणी
हुई सहज साकार पालनी - शक्ति - रूप कल्याणी,
जाग्रत जिसकी आत्म-व्यक्ति से विष्णु विश्व के जागे
कर असुरों का अन्त लोक के पालन मे अनुरागे।

जब जब दनुजों की दानवता दृप्त महिष - सी भीमा
अतिक्रान्त कर उठी लोक के संरक्षण की सीमा;
जब जब युद्ध दानवों से कर दीन देवता हारे
जब जब शिव के विकट त्राण हित कम्पित हाथ पसारे।

तब तब तेज महान विनिर्गत शिव के कुपित वदन से
प्रतिबिम्बित होता विधि, हरि औ देवों के आनन से,
जाग्रत जीवन - ज्योति सदृश वह संदीपित जीवन से
अद्‌भुत तेज उमड़ता भीषण दावा - सा कानन से।

अखिल देवताओं के ऊर्जित दिव्य तेज की सारी
एकीभूत समष्टि शक्ति ने छवि दुर्गा की धारी,
अखिल देवताओं के दीपित दिव्य तेज से ढाली
एक मूर्ति वह बनी अखण्डित श्री - सरस्वती - काली।

नारी की गरिमा से अन्वित तेज प्रदीप्त सुरों का
संघ - शक्ति से भव्य श्रेय की बना अन्त असुरों का,
बन समवेत समस्त तेज की प्रतिमा जाग्रत नारी,
हुई तेज कैलास - कूट पर प्रकटित शैल - कुमारी।

अंग अंग मे तेज सुरों का सुषमा बन कर छाया,
शक्ति - साधना ने देवों की अद्भुत विग्रह पाया;
देवों की अर्चा - से अर्पित आयुध अयुत करों में
हुये विजय वर से आलोकित श्री के शुचि अधरों मे।

पूजा के प्रसून - से अद्भुत अलंकार छवि शाली
खिले आयुधों की आभा में पाकर दीप्ति निराली,
जीव - प्रकृति का उत्ताम बल बन वाहन उनका आया,
सिंह - वाहिनी मे संसृति ने मंगल का पथ पाया।

श्रद्धा - शक्ति मयी नारी के गौरव मे तन - मन के
होकर अन्वित केन्द्र - बिन्दु मे सस्कृति - मय जीवन के,
दीप्त समष्टि शक्ति देवों की, बन देवी जय शीला,
करती पूर्ण कृतार्थ सुरों की सुन्दर जीवन - लीला।

असुरों के संग्राम - अनय मे अद्भुत माया - छल है,
प्राकृत परम्परा, माया औ संघ अखण्डित बल है;
ब्रह्मा से कर प्राप्त सहज ही वर जय और अभय का,
नित्य नया शासन रचते हैं भय का और अनय का।

महिष समान महा मायावी असुर हुआ हत रण मे,
एक बार निर्भयता देखी देवों ने जीवन मे,
चण्ड - मुण्ड औ रक्तबीज से युक्त किन्तु बलशाली
दानव - बन्धु निशुम्भ - शुम्भ ने दृष्टि स्वर्ग पर डाली।

सुन सचिवों से सरस्वती के रूप, दर्प औ छवि की
महिमा, जगती क्रूर कामना दनुजों के दुष्कवि की;
होता जाग्रत सरस्वती के मोह मदान्ध वरण का।
होता क्रुद्ध नाग-सा पाकर मृदु आघात चरण का।

आत्मा का संस्कार प्रकृति को शिव औ सुन्दर करता,
ज्ञान दीप से शुचि संस्कृति का पुण्यालोक बिखरता;
प्रीति-निमित्त व्यर्थ वाणी की दम्भ, दर्प, छल, बल है;
सरस्वती का स्नेह चरण की पूत भक्ति का फल है।

श्रेयमुखी शुचि देव-शक्ति को सदा शान्ति प्रिय रहती,
पर दनुजों की दृप्त प्रकृति यह समाधान कब सहती!
अनाचार का दृप्त दर्प ही दनुजों का जीवन है,
सदा शान्ति से प्रियतर उनको रण औ अन्त मरण है।

देवी दे सन्देश भेजतीं हठकर शाश्वत शिव को:
"दानव लें पाताल राज्य निज, नित्य मुक्ति दें दिव को,"
बनता वह सन्देश हविष-सा दानव कोपानल में,
रक्त-बीज आता नवीन ले वेग दनुज के दल में।

युद्ध क्षेत्र में आघातों से उसके आहत तन से
रक्त-बिन्दु अवनी पर गिरते जो ज्वाला के कण-से,
होते प्रकट असुर बन उद्भट वे बल-विक्रम-शाली,
बनती है दुर्जेय असुर की माया महा निराली।

चण्डी के चिर काल-सचिव-सी चामुण्डा विकराला,
काल-गुहा-से विवृत वदन में जगा वेग की ज्वाला,
बिन्दु बिन्दु पी रक्त असुर का रण में मुक्त विचरती,
रक्त-बीज का बीज-नाश कर अभय विश्व को करती।

रक्त – बीज के बीज – नाश से असुर पराजित होते,
असुरों के सम्राट सहज ही समर – सेज पर सोते,
शक्ति संगठन का अभाव ही देवों की दुर्बलता,
शक्ति – संघ की ही छाया में श्रेय अखण्डित पलता!

चण्डी के विग्रह में अन्वित देव – शक्ति जब जागी,
सतत पराजित, हुये देवता अन्तिम जय के भागी,
आंतकित जो रहे मग्न हो दनुजों के दुर्नय मे;
अखिल त्रिलोकों में नव – जीवन उमड़ा मुक्त अभय में।

स्वस्थ हुआ जग औ प्रसन्नता छाई नव त्रिभुवन मे,
जागी नई ज्योति की आभा निर्मल नील गगन में;
जीवन के निश्वास अमृतमय बहे पुनीत पवन में,
नये सर्ग का सूर्य उदित था संसृति के आँगन में।

दानव का दुर्दान्त अनय है विजय प्रकृति के बल की,
मुनियों के जीवन में खिलती आत्मा मृदुल कमल – सी,
मानव में विरोध दोनों का विभ्रम बनकर पलता,
देवों का रमणीय स्वर्ग बन माया सबको छलता।

बन कठोर संघर्ष पुरुष के जीवन की परिभाषा,
रच मरीचिकायें जीवन की देता प्रचुर पिपासा;
आत्मा और प्रकृति का अन्वय नारी के जीवन में,
सहज शील – सौन्दर्य युक्त हो फलता दिव्य सृजन में।

केवल श्रद्धा नहीं शक्ति भी नर की निर्मल नारी,
बने शक्ति की महिमा से ही शिवशंकर त्रिपुरारी;
नारी के नय, शील, धर्म मे अन्वित तेज नरों का,
नव संस्कृति का स्वर्ग धरा पर रचे सदा अमरों का।

सर्ग १

हिमालय वर्णन

श्री शिव का आवास चिरन्तन सत्व-महिम धरणी का शीष,
तम - रज से आकुल अवनी को अम्बर का उज्ज्वल आशीष;
वसुधा पर श्री की विभूति का अक्षय औ अनन्त आगार,
शिव के शाश्वत कठिन पन्थ के ध्रुव-दीपक का चिर अवतार;

पूर्ण अनन्त विभूति-तत्व से, अचल, असीम, अगम्य महान,
मानव के श्री, शील, पराक्रम, धर्म, नीति का पूर्ण, प्रमाण,
वसुन्धरा का मानदण्ड - बन सहज छू रहा - सा आकाश,
भव-सागर का ज्योति-स्तम्भ-सा फैलाता सब ओर प्रकाश;

मेघों के मधुकर - कवियों के मन्द्र - मधुर गौरव के गान,
जीवन की सरिताओं में कर वसुन्धरा को वर - से दान,
लेकर संसृति के आंगन में जीवन का ज्योतिर्मय प्रात,
अवनी के मानस में विकसित सुषमा का उज्ज्वल जल जात;

कर कल्पना विश्व के कवि की सत्य और सुन्दर साकार,
अवनी के ध्रुव आकर्षण से उतरा अविदित सहज उदार,
करता जीवन की संस्कृति से मिथ्या मुनियों का अपवर्ग,
श्री, सुषमा, महिमा, विभूति मूर्तिमान बन शाश्वत स्वर्ग;

मूर्तिमान शिव के स्वरूप - सा अचल अखण्ड योग में लीन
अक्षय शक्ति और श्री संयुत चिर पुराण औ नित्य नवीन,
करता आत्मा की विभूति से आलोकित समस्त संसार
करता निज आनन्द स्रोत का रसधाराओं में विस्तार;

शक्ति शील सौन्दर्य तेज, श्री विक्रम का अपूर्व अवतार
मानवता के हित जीवन का महिमामय आदर्श उदार
राजित है उत्तर आशा मे ध्रुव - सा पर्वतराज विशाल
आदि अन्त्य सम्राट विश्व का भारत का शाश्वत भूपाल;

आदि सृष्टि क्षण में अनन्त ने सरस हृदय का रस – उद्रेक
दीप्त दृगों में भर मेघों के, किया प्रथम जिसका अभिषेक;
प्रथम उषा ने ज्योति करों में लेकर नभ का नीलम थाल,
की उज्ज्वल आलोक आरती, स्खलित दिगचल मृदुल सॅम्हाल ;

अरुणा ने निज स्वर्णकरों में लेकर रवि का मुकुट महान
उन्नत मस्तक पर पहनाया, गा जीवन के मंगल – गान ;
किया तेज का तिलक भाल पर भर उर में अपूर्व आह्लाद
रोम रोम मे जगा प्रकृति के उत्सव का सुन्दर सम्वाद ,

दीर्घ सहस्त्र करों से होकर आतुर अतिशय हर्ष विभोर
तारक रत्न अनन्त लुटाये अन्तरिक्ष में चारों ओर
बिछा रहे दृग–दल चरणों में तृण – तरुओं को एक समान
मुक्त मनोहर इन्द्रधनुष – से सपने किये अनन्त प्रदान ;

आतपत्र – सा रुचिर शीश पर राजित जिसके व्योम–वितान ,
मसृण रजत – मेघों के मन्थर चँवर डुलाता मृदु पवमान
देवदारु के दण्ड दीर्घ ले खड़े शिखर कितने श्रीमान
सेवा में अविचल औ उत्सुक, शरणागत राजन्य समान ;

विक्रम के विश्वस्त बाहु – से तरुण तेज से पूर्ण कठोर
उन्नत और अभेद्य अनेकों शृंग सुसज्जित चारों ओर
पारिषदों – से परिवेष्टित कर करते जिसका गौरव पूर्ण ;
करता है संगठित तेज – बल सदा शत्रु का साहस चूर्ण ;

मधुर, मन्द्र, गम्भीर स्वरों में निर्झर कर विरुदावलि गान ,
करते कीर्ति – प्रसार चतुर्दिक तोषित वन्दी वर्ग समान ,
कोमल कर से दिव्य दिशायें वायु–व्यजन का मृदुल विलास
प्रति पल कर, हरतीं भूपति का शासन जनित सकल आयास ;

अमित अखण्ड तेज-बल जिसका धर वज्रोपम उज्ज्वल देह,
रक्षित करता उत्पातों से सदा प्रजा के अगणित गेह,
वज्र कठोर विशाल देह ही बनकर भारत का प्राचीर
बाधित करती रही निरन्तर उत्तर के ध्रुव शीत समीर;

सूर्य – मुकुट से मण्डित जिसके उन्नत गर्वित शीश – समान,
करता स्पर्श गगन को उज्ज्वल कान्तिपूर्ण कैलाश महान,
करुणामय उल्लास हृदय का बन प्रसन्न स्मिति – पूर्ण प्रसाद
भरता अखिल प्रजा के उर में नित्य नवीन हर्ष – आह्लाद;

पूर्व और पश्चिम की पर्वत मालायें युग बाहु समान
बाधाओं के विषम क्षणों में बन कर सदा प्रबल व्यवधान
मृदुल अंक में रहीं पालतीं सुन्दर शिशु – सा भारतवर्ष
दुर्बलता का शाप बन गया संस्कृति का रक्षित उत्कर्ष,

सरस शान्त गम्भीर मनोरम अन्तर – सा मानस सुविशाल
मुनि-हंसों को जहाँ मुक्ति-फल मिलता सहज सर्व ऋतु-काल;
उन्नत स्फीत वक्ष पर जिसके सरितायें ऋजु और अराल
लहरा रहीं अनेक सुनिर्मल बन कर रुचिमय मुक्ता – माल,

कांचन जघा – सी जंघायें पृथुल सुदृढ़ बल – वीर्य – निधान
योग, भोग की पूर्ण पेटिका तपस्तेज से शोभावान,
पाद–पीठ–सा भुवन चरण में, जिस पर अवर महीप अनेक
शरणागत – से गये मान से अपना उन्नत मस्तक टेक;

इन्द्रधनुष पर चढ़ी क्षितिज की प्रत्यंचा मण्डल – आकार
घन – निषंग से, धरे स्कन्ध पर करती सदा प्रजा उपकार
वज्रायुध द्रुत दमक तेज से कम्पित कर असुरों के प्राण
उद्घोषित कर वज्रनीति दृढ़ करता अभय सुरों को दान;

अमित अजेय अमोघ शक्ति – सी पड़ीं शिलायें भीमाकार
जिनका किंचित संचालन भी करता जाग्रत हा हा कार
अयुत शतघ्नी तुल्य गुहायें वज्र घोष से निज गम्भीर
कर देती विचलित असुरों के दृप्त दलों का साहस धीर;

वज्रदेह के विक्रमशाली तरुओं के दल दीर्घ अपार
सेना – बल – से सदा कर रहे संस्कृति का रक्षा – उपकार;
अगणित परिखा –तुल्य घाटियाँ बन अनीति – बाधा गम्भीर
रचती पर्वत मालाओं का चारों ओर प्रबल प्राचीर;

जिसके शील – शक्ति से प्रीणित श्री का मंगल पूर्ण प्रसाद
बन विभूति – वरदान विश्व को बांट रहा उज्ज्वल आह्लाद,
जिसके ज्ञान योग से प्रीणित सरस्वती के चिर वरदान
गूँज रहे शाश्वत अनन्त में बन जीवन के मंगल – गान;

जिसके बल विक्रम मे होकर प्रलयंकर काली साकार
करती संस्कृति के अनृतों – मे असुरों का अकरुण संहार;
पालन, सृजन, नाश के क्रम से जो अखण्ड साकार त्रिमूर्ति
भरता जीवन के प्राणों में संस्कृति की मंगलमय स्फूर्ति;

जिसके गौरव, कीर्ति, विभव से विस्मित – सा सारा संसार
निर्निमेष नयनों से शोभा कब से रहा अनन्त निहार;
जिसके मानस की विभूति बन जीवन की समृद्ध अनुभूति
करती संसृति में सुषमा की परम्परा की भव्य प्रसूति;

स्वर्ण सुमेरु समुन्नत जिसके अक्षय वैभव – कोष समान
अमित दया से द्रवित प्रात नित करता निर्झर – कर से दान,
पाकर जीवन की विभूति – सा निर्मल औ पावन परमार्थ
धरणी के जीवों का जीवन होता सफल, समृद्ध, कृतार्थ;

जिसका ध्रुव साम्राज्य प्रकृति की बन कर गौरवमयी विभूति
बनता है रस, रूप, रंग की भावमयी कोमल अनुभूति ;
गहन गुहा - से उपल-उरों से बहते निर्मल मुक्त प्रवाह ,
करते दुर्गम के पथिकों के शान्त देह औ मन के दाह।

पाहन के कठोर अन्तर से प्रकटित हो मृदुभाव समान
बनते कोमल कुसुम चरित का सुन्दर और अपूर्व प्रमाण ;
संध्या के रंजित मेघों के बनकर रंजित चित्र - विधान ,
रंग - बिरंगे पुष्प प्रान्त हैं इन्द्रधनुष के से उपमान।

रूपराशि से सृजन-कोप की, विधि ने कर सुन्दर आरम्भ ,
छोड़ दिया संकोच-सहित निज रम्य सृष्टि रचना का दम्भ ;
मर्यादा बन स्वर्ग-सृष्टि की सुषमा का असीम आगार
चरम कल्पनायें कवियों की करता सदा सहज साकार।

देख कल्पनाओं का अपना काम्य स्वर्ग सहसा साकार
हुये हर्ष से विस्मित कितने कवि निज कौशल कला बिसार ;
रही अनिर्वचनीय हृदय मे सुन्दर मर्ममयी अनुभूति ,
शब्दों मे हो सकी व्यक्त कब वह अपार सौन्दर्य-विभूति।

पलकों के निस्सीम क्षितिज मे भर अम्बर का रूप अपार ,
मर्म - वेदना से अन्तर की करते वर्णों मे साकार ,
वे विस्मित छविकार रूप के दर्शन से कर दृष्टि कृतार्थ ,
मौन अर्चना मे सुषमा की पाते जीवन का परमार्थ।

नयनों के अपूर्व उत्सव-सा वह सुषमा का स्वर्ग अनन्य ,
देकर पूर्ण दृष्टि-फल करता कितने विस्मित लोचन धन्य ;
पुतली के प्रत्यक्ष बिन्दु मे चिर सुषमा का पारावार
स्मृति की नित्य-विभूति अपरिमित होता, बन अनुभव का सार।

जिसके शासन में बिखेरती सोना आती उषा अनन्त,
और लुटाती सोना जाती संध्या पावन क्षितिज दिगन्त;
निशाकाल में वायुवेग से चन्द्र अमन्द कुबेर समान
हिम-शिखरों पर संचित करता रजत-राशि अतुलित अम्लान।

पारस मणि सा सूर्य उदित हो अपनी अविदित माया फेर,
बना स्वर्ण हिम-रजत-राशि को रचता स्वर्णगिरि मेरु-कुबेर;
द्रवित स्वर्ण के मुक्त दान में प्रति प्रभात में अमित उदार,
जीवन की लक्ष्मी का अक्षय अनायास बढ़ता भाण्डार।

जीवन की विभूति के उज्ज्वल पूर्ण तेज से दीप्त महान
वही मुक्त अनुदान अमृत बन करता चिर जीवन निर्माण;
वह अज्ञात कन्दराओं के कोषों से निर्मल स्वच्छन्द,
धाराये अभिजात अमृत की, बनती संसृति का आनन्द।

जीवन के सहस्र रूपों – सी जहाँ अनर्गल, चंचल, शान्त,
करती हैं सहस्र धाराये गुञ्जित पर्वत का एकान्त;
पद पद पर जल-धाराओं का संगम बन अपूर्व अनुराग
पर्वत के पावन प्रदेश में रचता कितने पुण्य प्रयाग।

हिम शिखरों की ज्योति समुज्ज्वल पावन करती जग की दृष्टि,
निर्मल अन्तर में मुनियों के करती दिव्य भाव की सृष्टि;
निर्मल नीर भरी धाराये कर रसमय पर्वत के प्रान्त,
करती जीवन के गीतों से गुंजित वे निर्जन एकान्त।

राशि राशि रंजित फूलों से भरी घाटियों के विस्तार,
नन्दन के अवतार भूमि पर, फैलाते आमोद अपार;
मादक गन्ध गन्धमादन की भर अनन्त आमोद-विभूति,
भवसागर के राजकमल की फैलाती सौरभ-अनुभूति।

सदा हरित जीवन के रस से देवदारु उन्नत सुविशाल,
तूफानों मे अचल शैल-से जग के प्रहरी उन्नत-भाल!
भोज वृक्ष, जिनके पत्रों पर अंकित पुराचीन इतिहास
डाल रहा है आज विश्व के जीवन पर निस्सीम प्रकाश!!

शिलाजीत, केसर, कस्तूरी, मधु : जीवन के दिव्य पदार्थ
कर लोकों को भेंट, कर रहा जो उनका आयुष्य कृतार्थ;
हरे-भरे वनखण्ड मनोहर रंग-राग मय फल औ फूल,
बना रहे हैं स्वर्ग-कामना लोकों की नितान्त निर्मूल।

कानन और कन्दराओं मे जिसके करते नित्य निवास
कस्तूरी मृग, सिंह, ऋक्ष, गज, चमरी धेनु आदि सविलास,
गुञ्जित करते मधुगीतों से गिरि कानन के मंजुल कुञ्ज
पुष्पों-से अनन्त वर्णों से भूपित नित विहगों के पुञ्ज।

जिसके दिव्य तेज से होकर मन्द सूर्य करता परिचार,
मृदुल सहस्रकरों से करता पोपित सुषमा का संसार;
कौन पूर्ण कवि मनोलोक मे कान्त कल्पना-सा हो लीन।
सुन्दरता के स्वर्ग अनेकों रचना रहता नित्य नवीन।

दिशा भूल कर दिक् दिग्भ्रम मे यहां भटकती चारों ओर,
भूल काल-क्रम प्रकृत, मुक्त-क्रम करता कलना काल कठोर;
कला-काव्य के मौलिक क्रम के बन स्वतन्त्र सुन्दर विन्यास,
करते हैं ऋतु-काल अलौकिक क्रम से यहाँ अपूर्व विलास।

लोकोत्तर क्रम से विशेषत: कर केवल सुषमा-संचार,
जिसके सुन्दर राज भवन मे षड् ऋतुये करतीं शृङ्गार,
प्रमदावन को पुष्प राशि से कर रस-रंजित अमित अनन्त,
करता अधिक निवास वर्ष मे सत्कृत अतिथि समान वसन्त।

नन्दन-कानन-सा खिल उठता पर्वत का विस्तृत कान्तार,
वन-देवी-सी करती निर्भय बाल अप्सरायें अभिसार;
चिर वसन्त के मधुर राज में किन्नर औ गन्धर्व कुमार
मदन महोत्सव मुक्त मनाते कर स्वच्छन्द स्वतन्त्र विहार।

बनता है अन्यत्र ताप की ऊष्मा से जो दुःसह भीष्म,
हो जाता है यहाँ शरद-सा शीतल, सुन्दर, सुखकर ग्रीष्म;
शरद-निशा-सी शीतल रसमय सुन्दर संध्या में सानन्द
करते सुखद विहार जीव-जन मुक्त पवन-से ही स्वच्छन्द।

तन पर चन्दन अंगराग-सा करता शीतल सुरभि-समीर,
मन को देता शान्ति तृप्तिमय हिम का स्वच्छ अमृत-सा नीर;
शीतलता औ शान्ति सहज ही बनते आत्मा के आनन्द,
खिल उठते छवि के कुसुमों-से जीवन की सुषमा के छन्द।

ऊष्मा के शीतल प्रभात में नर, नारी औ उत्सुक बाल,
निर्झर औ स्रोतों में करते क्रीड़ा बनकर मुक्त मराल;
पर्वत की घाटी में बहते स्वच्छ अमृत के मुक्त प्रवाह,
हिम की निर्मल शीतलता से हरते तन औ मन के दाह।

स्वच्छ शिलाओं के आसन पर शीतल औ सुखकर आसीन
देख प्रकृति की सुषमा होते सहज ध्यान में जन-मन लीन;
दुर्गम पर्वत के पथ में भी गाता जीवन के मधु गान,
बहता पर्वत स्रोत, विषम में करता सम पथ का सन्धान।

कठिन शिलाओं में भी करते साहस औ गति पूर्ण प्रवेश,
वे पर्वत के स्रोत पुरुष के हित बनते जीवन-सन्देश;
उपलों के अन्तर में उगते वे सौरभ के पुष्प अनन्त,
शैलों के दृढ़ सफल योग में रचते रस का मधुर वसन्त।

ऊष्मा की भीष्मा से दुर्भर दिवसों के वे विह्वल याम
बनते हैं शीतल – प्रदेश में सुख से पूर्ण कर्म – विश्राम ;
जब जलता है देह देश का ऊष्मा से निदाघ की घोर
शीष शान्त-शीतल रहता है योगनिष्ठ – सा चारों ओर।

भरती पर्वत औ अम्बर मे जीवन का रसमय सन्देश
रुचिर शरद-सुखमय निदाघ में करती पावस सहज प्रवेश ,
अलका के किस निर्वासित के मेघदूत-से गद् गद् प्राण ,
घिर घिर आते घन उन्मन-से निर्मल नभ में धूम-समान।

मृदुल मैंमनों के झुण्डों-से मन्थर गति से बाल समान ,
चढ़ते चढ़ते गिरि-शिखरों पर गिर पड़ते सहसा अनजान ;
क्रीड़ा-बुद् बुद् से शिशुओं के करते पवन संग संचार ,
घुस जाते अज्ञात गृहों मे खुले देख वातायन – द्वार।

आलक्षित केवल प्रवेश में वायव माया – पुरुष समान ,
किस अज्ञात भाव से सहसा होजाते द्रुत अन्तर्धान ,
राजमार्ग मे मायाचर – से फिरते निर्भय बाधाहीन ,
आते आते निकट दृष्टि से हो जाते झट वायु-विलीन।

वनवासी ऋषि-मुनि-जीवों-से विचरण कर वन में स्वच्छन्द ,
गहन गुहाओं में पर्वत की करते वे प्रवेश सानन्द ;
क्रीड़ा-मृग-से वे शैलों पर करते कौतुकमय संचार ,
यथाकाम स्वच्छन्द विचरते करते विषम वृष्टि-व्यवहार।

कभी चटुल निर्झर-सीकर-सी छोड़ मनोहर मन्द फुहार ,
करते जीवों के अन्तर मे कौतुक औ रस का विस्तार ;
कभी इन्द्र सेना-से नभ में घिर कर सहसा चारों ओर ,
वज्र घोष से सतत बरसते निशिदिन प्रलय धार घनघोर।

जल – प्लावन मे तरिए -पोत–से गृह – कक्षों में पा विश्राम ,
रस से आकुल लोक निरखते वह वर्षा का दृश्य ललाम ;
वन्दी–से विहार से वंचित निज निज गृह कक्षों में बन्द ,
जड़ता मे जीवन भरने को गा उठते जीवन के छन्द।

असुरों की सेना – से घिर कर, करके प्रकट भयंकर रोष
प्रलय – भूमिका में कर उठते कभी वज्र भीषण निर्घोष ;
छा जाता भय औ विस्मय – सा गिरि– वन में प्रतिरव गम्भीर ;
वज्र सदृश विद्युत पल पल में देती गिरि, नभ, कानन चीर।

वर्षा के विप्लव से आकुल ऋषि–मुनि–तापस त्याग निवास ,
लेकर शरण कन्दराओं में विवश बिताते चातुर्मास ;
अमित अभावों में, अन्तर के वैभव से अत्यन्त अदीन ,
करके प्रत्याहार प्रकृति से, रहते ध्रुव आत्मा में लीन।

दीर्घ कन्दराओं मे गिरि के प्राकृत अभिनय – गृहों समान ,
प्रकृत यवनिका – मे नाटक की घिर घिर आते घन अनजान ;
मनहर दृश्य बदलते पल पल क्रमश कोमल और कठोर ,
नाटक की निर्दिष्ट दिशा मे सन्धि सन्धि से रस की ओर।

शून्य कन्दराओं में पाकर शरण सिंह, मृग आदि अनेक
वन्य जीव मीलित नयनों से देख प्रकृति का रस उद्रेक ,
प्रकृति भूल कर–से प्रशान्त – मन बैठ एक स्थल पर निस्पन्द ,
करते काल व्यतीत, विचरते जो वन में निर्भय स्वच्छन्द।

जीवन के दुर्भर बन्धन से हो उठते जब जीव अधीर
दिशा दिशा में खुलने लगता तब वन का दुर्गम प्राचीर ;
बन्दी की नवीन आशा – सा खुलने लगता नीलाकाश ,
शरद प्रात मे सहसा होता जग का शतदल–सुमन – विकाश।

प्रथम प्रात में स्वच्छ शरद के शिखर-समावृत नभसर बीच,
प्राची में स्वर्गिक शतदल - सा खिलता दृग-मधुपों को खींच;
वर्षा-घन से आर्द्र संकुचित, सुखा शिखर पर काल-कपोत,
फैला पंख दिशाओं के द्रुत लेता नभ में अगणित गोत।

मुक्त दिशाओं के अम्बर में प्रकृति कुमारी-सी द्युतिमान
होती है अज्ञात यौवना सद्यःस्नाता वधू समान;
धीरे धीरे वन्य मार्ग सब खुलते विद्या-भेद समान,
किस रहस्य के गह्वर में वे अन्तर्हित होते अनजान।

गृह, गिरिगुहा, कन्दराओं से निकल लोक, मुनि, पशु सब साथ
अपना अपना मार्ग खोजते उठा दृष्टि सँग उन्नत माथ,
पशु अपना आखेट खोजते, लोक नये व्यापार - विधान
मुनि जीवन-सरि-तीर तीर्थ - से करते नव आश्रम निर्माण।

चन्द्रातप के साथ शरद के बढ़ता जाता द्रुत हिमपात,
हिम शिखरों से उतर अवनि पर आता है हेमन्त - प्रभात,
आतप औ निर्वात गुहा मे करते पशु - जन जीवन - त्राण,
मन मे तपस्तेज मुनि दृढ़ कर, करते तन हित अग्नि निधान।

छा जाता वन, पथ, पर्वत पर हिम शुचि चन्द्रालोक समान,
छायापथ-से राजमार्ग मे रवि प्रतिबिम्बित चन्द्र प्रमाण;
होकर हिम से तीव्र शिशिर - सा बन जाता दुर्वह हेमन्त,
जिसमे नव जीवन की उषा रचता आकर पुनः वसन्त।

शिशिर काल में जब समाधि मे होते हैं सब पर्वत लीन,
हिम की सत्वोज्ज्वल समृद्धि के सम मे होते भेद विलीन;
√सत्व-शुभ्र हिम की महिमा मे सम रस हो गिरि, वन, सर, ताल,
दीपित करते दिव्य ज्योति से भूमण्डल का उन्नत भाल।

नीरवता की स्तब्ध शान्ति मे होते निर्झर औ नद मौन,
वह अनहद संगीत शून्य का आत्म रहस्य खोलता कौन?
स्वच्छ चन्द्रिका की आभा मे वह उज्ज्वल औ पूर्ण प्रशान्त
हिमप्रदेश रचता रहस्य की रचना कौन अमृत एकान्त!

आत्म सिद्धि की पूर्ण प्रभा – सा जब वसन्त का भास्वर सूर्य
होता उदित, सहज बज उठते जय के जाग्रत निर्झर – तूर्य;
औ समाधि की पूर्ण सिद्धि के फल-सा बन नि.स्पृह व्युत्थान,
करुणा से विद्रवित सहज हो, हो उठता जीवन गतिमान।

योगी की अपार करुणा के अमृत पूर – सा अक्षय स्रोत,
भरता जीवन धाराओं मे आत्मा का उज्ज्वल उद्योत;
धाराओं का वेग कर्म की गति – सा बढ़ उज्ज्वल अम्लान,
गुंजित करता दिङ्मण्डल मे जीवन का ज्योतिर्मय गान।

खिल उठते पल्लव – पुष्पों से सहसा सूने पर्वत प्रान्त,
जाग्रत हो उठते जीवन के कोलाहल से सब एकान्त;
जीवन के रस, राग, रंग से खिलते जनपद, पल्ली, ग्राम,
पूजा के गीतों से गुंजित हो उठते देवों के धाम।

चढ़ती धन्य धर्म – कूटों की ओर पुण्य जीवन की धार,
गुंजित करता अन्तरिक्ष को पृथुल धर्म का जय जय कार;
तीर्थों के निर्जन पन्थों पर पथिकों के दल धर्म धुरीण
ले श्रद्धा का सम्बल चलते, कर अनादि – प्राचीन नवीन।

षड् ऋतुओं के विपुल काल-कृत वैभव मे भी स्थाणु-समान,
रहता चिर निर्वेद – मना – सा वीतराग मुनि –सा हिमवान,
विविध वनस्पतियों का वैभव चरणों मे बिखरा अनजान,
किन्नर औ गन्धर्व अंक मे गाते रस से निर्भर गान।

शिव-शंकर के तपोयोग से वैभवमयी अनन्त विचित्र
रूप-राग-रस-मयी प्रकृति भी हुई उमा-सी पूर्ण पवित्र।
भूमि, तेज, जल के प्रभाव से बन अनेक देवों के धाम।
पुण्य परिग्रह से मुनियों के बने तीर्थ बहु क्षेत्र ललाम।

पुण्य शिलाओं मे अंकित है संस्कृति का अपूर्व इतिहास,
प्राण भर रहा है पाहन मे मानव की स्मृति का अभ्यास,
रोम – हर्षिणी वे घटनायें अविदित कालों की प्राचीन,
हो उठती हैं सजग प्राण मे मानव के शत वार नवीन।

पुण्य धाम कनखल वह जिसमे किया दक्ष ने खण्डित याग,
जहाँ सती ने किया मान पर पति के स्वयं देह का त्याग,
पतिव्रता की पुण्य कीर्ति का बन कर शाश्वत तीर्थ महान,
संस्कृति में शिव की महिमा का स्वतः सिद्ध बन रहा प्रमाण।

हिमगिरि के दुर्भेद्य दुर्ग का मुक्त मनोहर स्वागत द्वार,
हरद्वार वह, जहां भूमि पर होता गंगा का अवतार,
दिखा रहा लक्ष्मण झूला से तुंग तीर्थ की दुर्गम राह,
बढ़ा रहा उत्साह घोष से गंगा का अनिरुद्ध प्रवाह।

यही पंथ है जिससे करके विजय महाभारत का युद्ध,
गये यमालय के पथ पर थे पाण्डव होकर पूर्ण प्रबुद्ध;
जीवन के भीषण भारत का बन करुणामय अन्तिम पर्व,
युग युग मे हर रहा रक्त स रंजित जय का वैभव – गर्व।

दिव्य तीर्थ बन कर पर्वत का आज पुनीत बिल्व – केदार
घोषित करता देवदारु के ऊर्ध्वबाहु से कीर्ति उदार
अर्जुन और किरातदेव की, जो धरणी पर रही अनन्य,
जिसकी महिमा से भासित हो हुआ काव्य का भारवि धन्य।

चण्ड-मुण्ड-वध कर काली ने चामुण्डा पद किया प्रमाण,
असुरों के निर्बीज नाश की रची भूमिका जहाँ महान,
जहाँ धनञ्जय ने पाया था अस्त्र पाशुपत तप से सिद्ध,
श्री के पीठ समान श्रीनगर निज गौरव से सहज प्रसिद्ध।

वह त्रियुगी नारायण का ध्रुव तीर्थ, जहाँ पर उमा-महेश
एक ग्रन्थि-बन्धन से होकर बने विश्व के चिर सन्देश,
जलती जहाँ अनन्त 'धनञ्जय अयुत युगों से ज्योतिष्मान,
जीवन के तप, योग, प्रेम की बन कर नित्य अखण्ड प्रमाण।

त्राहि त्राहि कर उठा भयंकर जब अकाल से पीड़ित लोक,
द्रवित हुआ माता का अन्तर देख सुतों का दारुण शोक,
अमर अन्नपूर्णा त्रिभुवन की बनकर शाकम्भरी महान,
युग युग से कर रही लोक को नव जीवन का तेज प्रदान।

पावन गौरीकुण्ड उमा ने किया जहाँ पहला ऋतु स्नान,
किया पुत्र ने जहाँ नीति पर माता की जीवन बलिदान;
तप के फल-सा जहाँ उमा ने पाया अद्भुत स्कन्द कुमार,
नारी की नय-मर्यादा का तीर्थ कर रहा नित विस्तार।

देवों के प्रिय बन्धु सखा चिर नारद का वह कीर्ति-स्तम्भ,
शक्ति-हीन श्रद्धा का हरता जो निज गति से मिथ्या दम्भ
नारद-कुण्ड, बना संकट में जो देवोंकीशरण-समाधि,
आई बन उत्पात धर्म पर जब यवनों की भीषण व्याधि।

पर्वत के केदार खण्ड को करते चिर जीवन का दान,
युग युग से केदारनाथ हैं भक्तों के पूजित भगवान,
मन्दाकिनी मन्द गति-क्रम से बन शंकर की मुक्तामाल,
सुना रही केदारनाथ की उज्ज्वल कीर्ति-कथा; दे ताल।

हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर राजित तुङ्गनाथ भगवान ,
अखिल विश्व के तीर्थ तुङ्ग-तम, निज महिमा से सदा महान ,
हरगौरी अखण्ड महिमा से नित्य कर रहे हैं साकार
जहाँ उच्चतम सत्य सनातन अखिल धर्म का ध्रुव आधार ।

पुण्य अलकनन्दा के तट पर सदा विराजित बदरीनाथ
युग युग से कर रहे धर्म की दुर्गम यात्रा पूर्ण सनाथ ;
शंकर के वेदान्त धर्म का चिर ज्योतिर्मय ज्योतिष्पीठ
करता अपनी दिव्य ज्योति से उज्ज्वल जग की धूमिल दीठ ।

वह अखण्ड हरगौरी का शुचि कालीमठ ध्रुव तीर्थ अखण्ड ,
काली - सी गर्जन कर बहती काली गंगा जहाँ प्रचण्ड ;
जहाँ प्रचण्ड शक्ति से अपनी रक्त-बीज का कर संहार ,
करुणामयी महादेवी ने किया सुरों का चिर उद्धार ।

अखिल हिमालय का चूड़ामणि उन्नत औ उज्ज्वल कैलास
करते जहाँ अनादि काल से चिर अनन्त शंकर आवास ,
चिर समाधि में लीन निरन्तर शिव-शंकर-सा ही साकार ;
आत्म-योग की पुण्य-प्रभा का फैलाता अनन्त विस्तार ।

नित्य योग के ध्रुव प्रदीप - सा जो स्वरूप से ज्योतिष्मान
आत्म - साधना के पंथों में भरता नित आलोक अ-म्लान ;
नागों-सी कैलास-कण्ठ में सरितायें कर ध्वनि - फूत्कार
लहरा रहीं विभूति योग में बनकर शिव के मुक्ताहार ।

शंकर के तन की विभूति - से मेघों के दल पारद-तुल्य ,
अंजन - से दर्शक के दृग में ज्योति-हेतु बनते बाहुल्य ,
शंकर के रस पूर्ण वक्ष-सा उन्नत, निर्मल और उदार
लहराता है मान - सरोवर बन करुणा का पारावार ,

खिलता राज-कमल जीवन का जिसमें वन श्री का अधिवास,
औ आत्मा के राज हंस पर वाणी करती पुण्य विलास;
एकनिष्ठ श्री औ सरस्वती दोनों का अक्षय आधार,
अखिल भूतियों से भरता है वसुधा का अनन्त आगार।

पावन गौरी शिखर उमा ने किया जहाँ तपयोग कठोर,
शंकर के वर हेतु निरन्तर सह वातातप वर्षा घोर;
जहाँ महाश्वेता तपस्विनी अपर उमा-सी तप में लीन,
गईं पुनः पावन प्रशस्त कर प्रेम योग का पथ प्राचीन;

गौरी की अखण्ड पूजा का अंकित करता पर्यवसान,
गौरी कुण्ड चरण में शोभित अमृत उमा के अर्घ्य समान।
नन्दा देवी दिव्य उमा-सी उज्ज्वल अमृत साधना-लीन
करती निज अखण्ड महिमा से तृप्त लोक के लोचन दीन;

मान्धाता के गुरु गौरव का गुरु मान्धाता मान महान,
खड़ा अचल कैलास अद्रि के चरम पन्थ पर बन्धु समान।
दिव्य मानसर के पश्चिम में रावण ह्रद गम्भीर महान,
कठिन योग-तप का रावण के राजित बनकर अमर प्रमाण;

केशर के कमनीय प्रान्त में करते निज श्री का विस्तार,
पर्वत की दुर्गम्य गुहा में करते अपना तेज-प्रसार,
हिम के ज्योतिर्लिंग लोक के जीवन के उज्ज्वल परमार्थ
एक दिवस दर्शन से करते अमरनाथ चिर आयु कृतार्थ।

केसर के मंजुल कुञ्जों का कल्प कुसुम चिर सुषमावान
श्री-सौरभ से अंचित करता भारत का जीवन उद्यान
दिव्य शारदा की महिमा का मन्दिर भूपर दिव्य अनन्य
दर्शन से श्रीनगर दृष्टि को औ जीवन को करता धन्य।

आर्यों की अभिजात कीर्ति का दुर्गम दुर्ग दिव्य नैपाल,
उन नरसिंहों का निवास वह रखते जो कृपाण मे ढाल;
बागमती के रम्य तीर पर वहाँ सनातन पशुपति नाथ
करते हैं श्रद्धालु जनों को परम पुण्य से पूर्ण सनाथ।

रम्य काँगड़ा की घाटी मे वैद्यनाथ बन करुणा धाम
हरते रोग दोष लोकों के देकर स्वास्थ्य-आयु अभिराम;
ब्रह्मचर्य, तप, योग, नियम से मूर्तिमान बन आयुर्वेद,
नित्य निदान, चिकित्सा द्वारा हरते अखिल विकार- विभेद।

वे पावन आश्रम मुनियों के जहाँ कठिन निर्वासन काट
स्नेह और तप सहित पालतीं मातायें भावी सम्राट;
नारी के तप, त्याग, शील की ज्योत्स्ना मे उज्ज्वल अम्लान
शीतल स्निग्ध हुये मानव के दग्ध नयन, मन, जीवन, प्राण।

परशुराम ने जहाँ सिद्ध कर ज्ञान-शक्ति का अद्भुत तन्त्र,
शिक्षित कर जय के सेनानी, दिया विश्व को जीवन मन्त्र,
शस्त्र- शास्त्र के सिद्ध पीठ पर किया श्रेय का अभय-विधान
मानव संस्कृति की रक्षा का मंगल-मार्ग किया निर्माण

जिसके चरणों की विभूति से महावीर औ गौतम बुद्ध
सुना अमृत सन्देश, विश्व की आत्मा को कर गये प्रबुद्ध
जहाँ योग, व्रत, तप साधन मे ऋषि मुनि तापस निरत महान
करते जीवन के तत्वों का मौन गूढ़ चिर अनुसन्धान

रूप, राग, रस के अतिशय मे मर्यादा का नित्य विधान,
धर्म, ज्ञान, संस्कृति का बनता मानव के यह पूर्ण प्रमाण;
पुष्पों के कामद कानन मे होम-धूम का गन्ध प्रसार
करता मानव के मानस में शान्ति और संयम संचार।

अविचल तप के से प्रतीक वे शिखर शिला निश्चल निस्पन्द ,
मेघ-प्रपातों के निस्वन मे ध्वनित मन्द्र वेदों के छन्द ;
निर्झर सरिताओं के स्वर में बहते बहुमुख शास्त्र-पुराण ,
शुद्ध समीरण मे संवाहित सहज तत्व का दुर्गम ज्ञान ।

सदा समाधि-लीन शिव-सा ही अखिल विश्व का मंगल-मूल ,
जीवन औ जग की विभूति है इसके श्री-चरणों की धूल ,
ध्यान लीन दृग के कोटर से निःसृत करुणामृत की धार ,
भरती भारत के गृह् गृह् मे जीवन का वैभव-भाण्डार ।

धाता की मानस रचना का अवनी पर अंकित आकार ,
अमित कल्पना की सुषमा का धरणी तल पर मुक्त प्रसार ;
संसृति का यह सार-देश औ संस्कृति का यह् पीठ महान ,
जग का ज्योतिर्दीप करेगा युग युग तक आलोक प्रदान ।

खोल दिया है जहाँ प्रकृति ने सुन्दरता का कोष अपार ,
किया विधाता ने भी जिसमे निज अनन्त वैभव-विस्तार ;
जब इसकी अनन्त महिमा को पहचानेगा मानव - वर्ग ,
इसके पद पद पर विकसेगे जीवन के अनन्त छवि-स्वर्ग

जिनके नन्दन के सुषमा औ सौरभ का विस्तार अनन्त
भर देगा आनन्द - ओज से जीवन के विक्षुब्ध वसन्त ;
हरे-भरे शीतल शिखरों के फल-फूलों के सरस पराग
कर देगे कृतार्थ मानव का जीवन के प्रति चिर अनुराग ।

उज्ज्वल तेज, कान्ति, महिमा से यह् जीवन का ज्योतिर्दीप
कर देगा चिर प्राप्ति सिद्धि से जीवन के सब इष्ट समीप ,
उमा और शंकर के तप का योग-पूत यह् पीठ महान
तपोभूमि कर पद पद जग का, होगा संस्कृति का वरदान ।

सर्ग २

हिमाचल कुमारी

उस विशाल हिमवान देश के राजा तेजोधारी
वीर हिमाचल थे यथार्थ निज संज्ञा के अधिकारी,
अचल हिमाचल के समस्त गुण उनमें सहज समाये,
सोने में सुगन्ध आत्मा के गुण भूपति ने पाये।

दिव्य हिमालय के समान थी उनकी उज्ज्वल काया,
जिसके अंग अंग में अक्षय बल औ वीर्य समाया;
दिव्य तेज की कान्ति सूर्य की आभा-सी थी दिपती।
विद्युत की लेखा लज्जित हो अन्तरिक्ष में छिपती।

था कैलास समान समुन्नत उनका शीश गगन मे,
पाद-पीठ-सा अखिल भुवनतल था आरूढ़ चरण में,
जिस पर अवनी के नृपाल सब उन्नत शीश झुकाते,
बन शरण्य श्रीमान मान से अभय लाभ कर जाते।

पर्वत – श्रेणी – से विशाल युग बाहु अमित बलशाली,
दृढ़ प्राचीर समान प्रजा की करते चिर रखवाली;
मानस – सा गम्भीर, शान्त औ निर्मल अन्तस्तल था
मुनियों को जो सदा मुक्ति का देता मुक्ताफल था।

दृढ़-कठोर, वज्रोपम, उन्नत, स्फीत वक्ष पर्वत – सा,
जिस पर अरियों के आयुध सब कुण्ठित होते सहसा;
निर्मल औ उदार मानस से निःसृत होकर बहती,
जीवन की सहस्र धारायें बनकर करुणा महती।

गह्वर – से गम्भीर कण्ठ से निःसृत उनकी वाणी,
हो प्रति – ध्वनित मेघ – गर्जन मे ओजमयी कल्याणी,
आततायियों को आतंकित वज्र घोष से करती,
जीवन का रस-अभय प्रजा के जाग्रत उर मे भरती।

प्रलयंकर विप्लव में भी थे अचल हिमाचल रहते,
अविकृत मन से सदा प्रकृति के लीला-ताण्डव सहते;
किन्तु आत्म-गुण क्रिया-शक्ति औ चिर चैतन्य प्रगति से
थे अपूर्व नृप प्रजा-निरत नित वे निज स्थिति, कृति, मति से।

प्रथम प्रजापति-से वे तन्मय प्रजा-पालना करते
दिव्य गुणों से अपने उनमे श्रेष्ठ भावना भरते;
थे तेजस्वी वीर न जिन पर अरि ने आँख उठाई,
जिनकी भीति आततायी के उर मे सदा समाई।

वज्र नीति थी, किन्तु दया की धारा उर मे बहती,
सदा प्रजा के मंगल के हित शक्ति सचेतन रहती;
चिन्तामणि-सी कृपा कामना पूर्ण प्रजा की करती,
शक्ति-समन्वित प्रीति प्रजा मे निर्भयता थी भरती।

उनके वैभव औ विलास की उज्ज्वल निर्मल छाया,
फैली थी बन देवलोक की मनोमोहिनी माया;
उनके नियम, योग, तप, नय ने मुनियों का मन मोहा,
उनके स्नेह, विराग, कर्म का पथ विदेह ने जोहा।

ऋद्धि-सिद्धि औ भोग-योग को पूर्ण समाहित करके,
सुख-समृद्धि मे तप-सयम का शासन स्थापित करके,
थे अपूर्व आदर्श हिमाचल नृपति समस्त नरों के,
शासक, पालक औ पथ-दर्शक असुर, मनुज, अमरों के।

उनकी लक्षण-मयी धरा-सी कुल-लक्ष्मी कल्याणी,
सम्राज्ञी थी, धर्म-प्रेम की प्रतिमा मेना-रानी;
स्नेह, शील, सौन्दर्य, तेज की मर्यादा वह जग में
करती जीवन-रस संचारित शासन की रग-रग मे।

पितरों की मानस कन्या वह अखिल रूप-गुण-शीला
परम माननीया मुनियों की, शुचि मानस गर्वीला
दिव्य हिमाचल के चरणों मे अर्पित कर निर्भीता,
आत्मा के अनुरूप भूप की बनी सविधि परिणीता।

बनी हिमाचल की आत्मा-सी संजीवनी पुनीता
जीवन की नृप और प्रजा के उज्ज्वल मंगल-गीता;
मिली हिमाचल को समुद्र को मर्यादा-सी मेना,
कुल की कीर्ति और स्थिति के हित चिर सुकृतों की सेना।

प्रीति, नीति, कृति से वह अपनी नृप को रंजित करती,
स्थाणु हिमाचल के अन्तर को रस से अंचित करती,
सहज स्नेह-संकेत राज्य की नीति सुनीति बनाता,
बनी पूर्ण वात्सल्य मयी वह सहज प्रजा की माता।

प्रातः पूजा से निज कुल मे और राज्य में रानी,
धर्म-मूल का सिंचन करती कर्ममयी कल्याणी;
अभ्यागत-आतिथ्य आदि से आश्रम पालन करती,
पूजा से मुनि, द्विज, देवों की धर्म प्रजा मे भरती।

शासन-श्रम का स्नेहार्चन से दृग के अपनय करती,
वचनामृत के सिद्ध मन्त्र से भूपति का मन हरती,
रचती हर्ष-भरे जीवन मे लीला नित्य नवीना,
अर्द्धाङ्गिनी बनी वह उनकी आत्मा पूर्ण प्रवीणा।

किस सुरम्य ऋतु के मुहूर्त्त में, हर्षित निज तन-मन मे
प्रेम-पुनीत काम के कामद किस रोमांचित क्षण मे,
हुई हिमाचल की कुल-स्थिति की संवर्द्धक कल्याणी
निज प्रिय पति के दिव्य तेज से अन्तर्वत्नी रानी।

एक अपूर्व कान्ति से दीपित सालस सुन्दर तन से,
आत्मा में उल्लसित, प्राण मे पुलकित, हर्षित मन से,
पाकर समय हुई शुभ क्षण मे पुण्य प्रसूता रानी,
पुत्र – जन्म से हुये प्रहर्षित अखिल राज्य के प्राणी।

मेना की आशा से अंचित नाम पुत्र का प्यारा
धर मैनाक, महीप मानते उसे भुवन – उजियारा,
कहते भूपति, "दिव्य शुक्ति से पाया अनुपम मोती";
"किन्तु स्वाति से" कह कर रानी सहसा लज्जित होती।

होकर प्रेरित नृप रानी के वत्सल शिशु–पालन मे,
निरत प्रजा के परिपालन में हुये, अधिक शासन से,
कहते, "पुत्र जन्म से जीवन हुआ मुक्ति अधिकारी",
रानी कहती, "अयुत पुत्र हैं राजन्! प्रजा तुम्हारी"।

गृह के स्नेह, शील औ सुख मे काल अलक्षित जाता,
राजा के युग नयन बन गये दिव्य पुत्र औ माता,
राज्य कर्म का भार बन गया था विनोद मन भाया,
करती जीवन को अनुरंजित गृह की मोहन माया।

वय: प्राप्त कर वीर पुत्र वह हुआ अनन्य प्रतापी,
अमरावती तथा अम्बुधि तक कीर्ति विश्व में व्यापी;
सिन्धुराज औ इन्द्र सखा बन, हुये पक्षधर उसके,
यक्ष, किरात, नाग आदिक थे अगणित अनुचर उसके।

नागराज को जीत युद्ध मे फिर भी मान बचाया,
बना नाग–कन्या को विधिवत् परिणीता प्रिय जाया;
विक्रम से दक्षिण सागर के तट नव राज्य बनाया,
कर कुल-कीर्ति समृद्ध, पिता का गौरव द्विगुण बढ़ाया।

अपने प्रतिनिधि-से सुपुत्र के शील और विक्रम से
थे कृत कृत्य महीप हिमाचल हर्ष और सम्भ्रम से ;
अपनी अनुकृति - सी कन्या की रुचिर कामना करती ,
पुनः गर्भयुत हुई मेनका मन में किंचित् डरती ।

पर्वत के सुन्दर वसन्त के प्रिय आरम्भिक क्षण मे ,
रस के अंकुर फूट रहे थे जब उपवन औ वन मे ,
था उल्लसित प्रकृति का कण कण आशा के मधु बल से
लोक - मनोरथ मंजरियों में हुये अंकुरित फल-से ।

मूर्त्त कामना - सी मेना की कर धरणी को धन्या ,
हुई प्रसूत ब्रह्मवेला मे अमित रूपसी कन्या ;
प्राची के अंचल मे उज्ज्वल हैमवती बन ऊषा ,
त्रिभुवन की श्री उदित हुई कर ग्रहण रूप की भूषा ।

प्राची ने प्रसन्न हो रवि की शुचि आरती उतारी ,
हुई प्रहर्षित कन्याओं - सी दिग्बालायें सारी ;
सुर - बधुओं ने रत्नराशि - से तारक पुञ्ज लुटाये ,
जो कानन के पत्र-दलों मे ओस-बिन्दु बन आये ।

आभा बन उल्लास व्योम का दिशा-दिशा में छाया
फूलों में विकीर्ण अवनी का हर्ष न हृदय समाया ;
हुये प्रसन्न समस्त विश्व के स्थावर-जंगम प्राणी ,
ध्वनित हुई निर्झर निस्वन मे सुख की गद् गद् वाणी ।

कलिकाओं औ मंजरियों की लेकर भेंट निराली ,
वनदेवियाँ अनेकों आई बन मेना की आली ,
गिरि शिखरों से किन्नरियों - सी सरिताएँ बल खाती ,
करती लघु - पद नृत्य मोद से मंगल गायन गाती ।

पशु फिरते सानन्द, विहग-कुल मंगल के स्वर गाते,
आतंकित थे असुर, मनुज थे उत्सव-पर्व मनाते,
थे किन्नर-गन्धर्व सशंकित, देव समुत्सुक सारे,
ऋषि, मुनि तापस वर देते थे उर से, पाणि पसारे।

मेना की मर्माभिलाष से अवगत भूपति मन मे
बोले रानी से रहस्य में भर पीयूष वचन मे,
"हुई वीर मैनाक पुत्र से तुम त्रिभुवन मे धन्या,
करे मुझे कृतकृत्य शील से कीर्तिमती यह कन्या"।

कन्या का अभिनन्दन करने आये सुर-मुनि-सारे,
काम-चरण करते हिम गिरि पर तब देवर्षि पधारे;
रानी की अस्फुट अभिलाषा जान अधर पुट खोले,
वीणा-निन्दित मधुर कण्ठ से ऋषि रानी से बोले

"हुआ पुत्र से कुल समृद्ध, पर कन्या से कल्याणी
परम कृतार्थ हुए दोनों कुल निश्चय मेना रानी"।
पुत्रवती तुमने गौरव मे पाई श्री-सी कन्या
इसे जन्म देकर यशस्विनी हुई विश्व मे धन्या।

रानी बोली "मुने! आपकी वाणी सत्य सदा ही,
किन्तु लोक मे तो कन्या को कहते जन विपदा ही;
चन्द्रकला सी बढ़ती कन्या करती शोभा घर की
किन्तु चन्द्रिका-सी बढ़ती है चिन्ता उसके वर की"।

मुनि बोले, "यह नहीं लौकिकी कन्या मेना रानी!
कुल के पुण्य साधना-फल-सी आदि शक्ति कल्याणी
हुई अवतरित, देवि! तुम्हारे तपःशील से प्रीता,
भार नहीं, शृङ्गार विश्व की पावन मंगल-गीता।

दक्ष प्रजापति की कन्या यह सती पुण्य तप-शीला
अर्द्धाङ्गिनी सदाशिव की वह उनकी मंगल – लीला,
करने पति के तिरस्कार का दृढ़ प्रतिशोध निराला,
भस्म पिता के हुई यज्ञ में भेंट धारणा – ज्वाला।

ताप – शान्ति के हित तपस्विनी स्मरण हिमाचल करती,
हुई अवतरित देवि! तुम्हारे कुल को पावन करती,
कर तप मे प्रसन्न, शंकर की एक बधू यह होगी,
बनकर इससे युक्त, शिवंकर होंगे वे चिर योगी।

'इसका औरस पुत्र विश्व में बन विश्रुत सेनानी
देवि! रचेगा अमर भूमिका संस्कृति की कल्याणी,
देवों को जय की नवीन नय दे यह उनका नेता,
त्रिभुवन मे नवीन संस्कृति का होगा अमर प्रणेता।"

सुन नारद के वचन हर्ष से मेना मन मे फूली
माथे पर ली विनत करों से मुनिवर की पद धूली
दे मंगल आशीष "पूर्ण हों रानी! काम तुम्हारे"
ले नृप का प्रणाम, हिम गिरि से मुनि स्वर्लोक सिधारे।

बढ़ने लगी हिमाचल गृह मे चन्द्रकला सी बाला,
खिलने लगा अपूर्व कान्ति से उसका रूप निराला;
निष्कलंक शशि की शुचि आभा थी आनन मे खिलती,
हिम की पूत प्रभा अंगों मे उसके अस्फुट मिलती।

नारद की वीणा से बढ़ कर सुन उसकी प्रिय वाणी,
हुए परम कृत-कृत्य हिमाचल और मेनका रानी,
युगल नयन – से थे दोनों के पुत्र और प्रिय कन्या,
पुत्र प्राण था, तो आत्मा थी पुत्री परम अनन्या।

मन्दाकिनी नदी के तट पर सिकता के पुलिनों में,
कन्दुक और पुत्रिकाओं से सखियों संग दिनों में,
खेल खेल कर बाल्यकाल में, मातु समीप निशा में
कह कह चित्र कथाऐं, हरती मन दृग फेर दिशा में।

उज्ज्वल दीप शिखा-सी गृह मे पुण्य ज्योति फैलाती,
संग स्नेह के कान्तिमती वह अनुदिन बढ़ती जाती,
पिता हिमाचल का अन्तर वह पल पल पावन करती
बढ़ने लगी पुण्य गंगा - सी क्रीड़ा से मन हरती।

खेल खेल मे शैल सुता का शैशव सहसा बीता,
खिली वयोचित संस्कारों से वह सुन्दरी सुनीता,
शनैः शनैः बढ़ हुई एक दिन गौरी शैल कुमारी
आकुल होने लगी अंग की अस्फुट सुषमा सारी।

हिम प्रदेश के स्वच्छ शीत मे राग और रस भरता,
सरल प्रकृति मे ज्यों वसन्त नव सहज आगमन करता,
त्यों गिरिजा के पूत बाल्य मे नव यौवन अनजाने
धीरे धीरे लगा काम के पुष्प नवीन खिलाने।

क्रीड़ा मुक्त संग सखियों के गिरिजा सहसा भूली,
उज्ज्वल अंगों मे छाई किस पुष्प - राग की धूली!
रूप-कमल – सा विकस रहा था क्रमशः उसके तन मे,
कितने सर्ग नवीन खिल रहे उसके रंजित मन मे!

अंग अंग मे एक अलक्षित कान्ति अपूर्व जगाता,
बन निसर्ग श्रृङ्गार देह का यौवन रूप खिलाता
फूट रही थी शरद-घनों से शुचि ज्योत्स्ना की आभा,
विकस रहा था तन पराग से कलिका – का – सा गाभा।

पूत पार्वती के अंगों में काम संकुचित खिलता,
आत्मा के विकास में अनुगत पुण्य भाव-सा मिलता,
संस्कृत हुए कला - कौशल बन, सहज विकार हृदय के,
बने शील - संस्कार मनोहर भाव नवीन उदय के।

हुई अल्प आयास मात्र से वह सब कला - प्रवीणा
हुई स्वरों मे संस्कृत उसकी सुन्दर जीवन - वीणा,
रूप, राग, रस के विकास में कान्तिमती अभिजाता,
खिली कमलिनी - सी यौवन की शुचि गंगा मे स्नाता।

नख की द्युति में हुए चरण के शरणागत-से सारे
अन्तरिक्ष के अमल ज्योति-मय उज्ज्वल ग्रह औ तारे;
स्वर्गङ्गा के शुचि कमलों की छवि चरणों में छिपती,
चरण तलों मे दिव्य उषा की द्युति अन्तर्हित दिपती।

पाद - चरण मे पुण्यव्रती वह पद पद पूत बनाती,
चरण-प्रभा से धन्य धरा पर शुचि स्थल कमल खिलाती,
पावन तीर्थ तटों पर गिरि के प्रमित संचरण करती
रचती पद पद तीर्थ पुण्यतर, पावन करके धरती।

मानस के नव राजहंस हो लज्जित अपनी गति से
करते कला कृतार्थ पार्वती की गति की अनुकृति से,
आत्मा के संस्कार समुत्तम लेकर प्रकृति कुमारी,
मर्यादित करती जीवन की मर्यादायें सारी।

धाता की रस - राग - कल्पना मूर्त जिन्होंने पाई,
जीवन की गति-विधि संस्कृति बन जिनमे सहज समाई,
स्वास्थ्य, शील, सौन्दर्य, रूप के सागर की बन वेला
मर्यादित करती यौवन का ज्वार सदा अलबेला,

जिसकी गौरव – गति से जग मे धन्य हुई कुल नारी,
हुई तिरस्कृत – सी अविनय से कवि कल्पना बिचारी
कम्पित कदली और नाग – कर नित निषेध – सा करते
कवियों की अयुक्त उपमा का, लज्जा से युग डरते;

वे जंघायें अमृत रूप – रस जिनका गंगा – जल – सा,
प्राप्त कर सके एक मात्र शिव तप के उज्ज्वल फल – सा,
स्वर्ण समान शुद्ध शंकर के होकर अग्नि नयन से
पाई जिनमे शरण काम ने हो विमुक्त निज तन से।

जग – जननी की जंघायें वे बन शय्या सुख – शीला
करतीं धन्य स्नेह से गुह की जो निर्मल शिशु लीला,
जिनके शील, तेज, तप नय के ले संस्कार निराले,
सेनानी ने नव – संस्कृति के पन्थ भुवन मे ढाले।

शिव की तपःपूत जंघा ने बन कर आसन मानी
पृथुल नितम्बों के गौरव की गरिमा थी पहचानी,
कृश कटि की भंगिमा, चरण की मंजुल मन्थर गति ने,
अथवा उनकी गरिमा जानी पादाग्रों की धृति ने।

युगल नितम्बों पर रत्नों की काञ्ची गौरव – शीला,
युग चरणों की गति – संगति से लहराती कर लीला,
आदि – शक्ति की रूप-परिधि–से अम्बर – क्षितिज–किनारे
परिक्रमा कर रहे अहर्निश अखिल भुवन, ग्रह, तारे।

संसृति के सौन्दर्य – कमल की कृश कटि कान्त मृणाली,
रूप – रागिनी के अवरोहण – क्रम – सी शोभा शाली,
शिव की सन्तत भ्रमित दृष्टि के नत विश्राम – स्थल – सी,
ऊर्ध्वाधर लोकों की सीमा सदृश सूक्ष्म चंचल – सी

स्तन-शिखरों से उतर उदर पर बहती यौवन - गंगा,
पुण्य त्रिपथगा - सी त्रिवली में चंचल तरल तरंगा,
थी गम्भीर नाभि यौवन की धारा - मध्य भ्रमर - सी,
डूबी जिसमें त्रिनयन की चल तरणि मुग्ध शंकर की।

अन्तर में सन्निहित सदा शिव द्विगुणित बाह्य प्रकट- से,
अमृत - कलश - से पुण्य पयोधर जग के मंगल - घट -से,
जिन पर रुचिर पत्र लेखन कर पूर्ण कला शंकर की,
हुई कृतार्थ, रूप रेखा - में भर सुषमा अन्तर की।

त्रिभुवन के लालन का गौरव-पूर्ण भार गर्वीला,
आदि शक्ति के उर का बनता शुचि शृंगार सजीला;
पल जिनकी पीयूष धार मे वीर कुमार अकेला,
शोणितपुर मे विजय - युद्ध का खेल अनोखा खेला;

मानस से निःसृत स्रोतों - सी छवि के शोभाशाली,
विजय माल - सी बाँह् कण्ठ में शिव के स्मर ने डाली,
नीलकण्ठ के दिव्य हृदय की बनी रुचिर वरमाला;
स्वयंवरा शिव की सुहागिनी शक्ति बनी गिरि बाला।

मृदु मृणाल - सी युग बाहों पर शोभित युग उत्पल - से
पाणि, विश्व - शिशु को अभयंकर वर जीवन के फल -से,
जिनकी सुषमा मे पराग - सी पलती जन की आशा,
अमृत राग - रस जिनका बनता मंगल की परिभाषा।

लज्जित बन्धुर रुचिर कण्ठ की अनुपमेय सुषमा - से
मज्जित हुये शंख सागर मे मौन हीन उपमा - से;
उज्ज्वल मुक्ता हार कण्ठ मे श्वास - संग लहराते,
ज्योतिर्लोक अनन्त शक्ति का उर - शृंगार - बनाते।

वाणी की वीणा – सी मंजुल मधुर कण्ठ की वाणी,
बनती श्रुतियों में जीवन की गीता चिर कल्याणी,
मित पद का सस्मित क्रम स्वर की सहज शक्ति में मिलता,
श्रोता के अन्तर मे स्वर का भाव स्फोट बन खिलता।

अरुणिम अधरों के स्पन्दन में आदि उषा – सी खिलती,
शारदीय ज्यौत्स्ना की निर्मल आभा स्मिति में मिलती,
आनन के अपरूप रूप से शंकित होकर मन में,
अन्तर की लज्जा से कलुपित हुआ मयंक गगन में।

चंचल लोचन की शोभा से विह्वल मीन बिचारी,
ऊर्ध्वाधर धारा में फिरती लोक – लाज की मारी;
सीख पार्वती से चल चितवन, हरिणी अपने मन में
अनुकृति से लज्जित हो छिपती फिरती गिरि – कानन में।

सरल प्रसन्न प्रभा से दीपित उसके स्निग्ध नयन मे,
आदि उषा औ अन्त्य अमा युत राका स्वच्छ गगन मे
सृजन, निलय, पालन की खिलती अन्वित सहज निराली,
पुण्य त्रिवेणी – सी जीवन की श्री – सरस्वती – काली।

चंचल वेला – सी आनन के रूप – महासागर की
दृग – मीनों की गति अनुकृति की चंचल युगल लहर – सी,
भ्रू – लतिकायें प्रत्यंचा – सी शोभित सज्जित धनु की
पुनर्विजय की अभिलाषा – सी हर से विजित अतनु की

गरिमा से विनमित मस्तक पर अंकित शुचि ध्रुवतारा,
करता था जीवन के पथ मे नित्य अमल उजियारा;
राग – बिन्दु, आनन्द सिन्धु – सा जिसमें नित लहराता,
सहज रूप का मान ज्ञान में अगणित सदा बनाता।

शिव की शीश - गता गंगा मे मिल यमुना - सी वेणी
तीर्थराज में भव्य विरचती रहती नित्य त्रिवेणी,
जिसकी महिमा से अवाक् हो, लय सरस्वती होती,
जीवन के अक्षय वट की जो भव्य भूमिका होती।

आनन की द्युति दिव्य देख कर ऋषि, मुनि और सुरों के
होते नयन कृतार्थ, सुपावन होते भाव उरों के,
पुण्य भार से आर्द्र दलों - से पलक विनत हो जाते,
चरणों की छवि मे जीवन की शुचि विभूति निज पाते।

शुचि आचारवती कल्याणी गिरिजा जब अभिजाता
सूर्य - वन्दना अरुणाचल पर करती सद्य. स्नाता,
पावस के प्रभात में लम्बित उसके कुन्तल - घन से
मुक्ता - कण झरते अम्बर से नक्षत्रों के गण - से।

बाल उषा मे शुचि प्राची - सा उज्ज्वल आनन खिलता,
आभा - सा स्वर्णिम केशों में किरणों को पथ मिलता,
अन्तर्हित सुषमा की राका ऊषा के अन्तर में
कान्ति अपूर्व दिखाती उज्ज्वल सहसा पूर्व प्रहर में।

रुचिर रोदसी के सम्पुट के अद्भुत मुक्ता - फल - सा,
त्रिभुवन के शुचि रूप - सिन्धु मे खिलता राज - कमल- सा,
कान्ति, राग सौरभ, रस, सुषमा औ अपूर्व कोमलता
कर एकत्र समाहित श्री का आश्रय आनन बनता।

अखिल तिरस्कृत उपमानों से बढ़ अनुपम सुन्दरता
लोकोत्तर लावण्यवती वह अति अपूर्व मनहरता,
पुण्य पार्वती के तन - मन में हुई समाहित सारी,
शक्ति - सुन्दरी आदि भूमि पर थी हिमवान् कुमारी।

उज्ज्वल आनन की आभा से ज्योतित रवि, शशि, तारे,
उसके ही तन के पराग से सुरभित कमल बिचारे,
उपमानों मे अखिल खिली थी उसकी छवि की छाया,
उसी सत्य - सौन्दर्य - प्रभा से थी आलोकित माया।

हैमवती ऊषा - सी छवि मे पावन प्रभा बिखरती,
पूत और आलोकित वह नित अखिल भुवन को करती,
होम - धूम की पूत गन्ध उस तन से निःसृत होती,
अखिल विश्व के दिङ्मण्डल मे शुचिता संसृत होती।

शील समाहित करन्यास शुचि सर्व कर्म की विधि में,
पूजा का पावित्र्य मिलाता सरस प्रेम की निधि में;
शील तथा अभिजात शान्ति औ सुन्दरता के पुट स
बनते थे सब कृत्य यज्ञ - से, युत अपूर्व अस्फुट से।

पद्मल नत आयत नयनों की दृष्टि पुण्य बरसाती
आत्मा के आलोक शील से सृष्टि पवित्र बनाती
जिधर देखती उधर उषा से हृदय कमल - से खिलते।
एक दृष्टि में शत जन्मों के पुण्य अयाचित मिलते।

करती रस संचार प्राण मे उसकी कोमल वाणी
अमृत -स्यन्दिनी - सी श्रुतियों में सरस्वती कल्याणी
अन्तर्निहित भाव - महिमा के अनायास इंगित - सी
अर्थ - व्यंजना में रस भरती स्मिति किंचित विस्मित - सी।

वाणी का शृङ्गार बना था नित स्वाध्याय स्मरण - सा
बना रुचिर अभ्यास कण्ठ का मधुर साम - गायन था
अखिल कलाओं में कृतार्थ थी कलावती सुकुमारी,
थी स्वभाव - सौन्दर्य - प्रकृति - सी अनायास विधि सारी।

था संयत व्यवहार शील-मय बन्धु जनों मे सारे
धर्म आचरण में कृतार्थ हो, रहा मौन नित धारे
शास्त्र और जीवन का सारा नय था निहित विनय में
नारी की अज्ञात शक्ति का बल था बुद्ध अभय में।

निर्झरिणी-सी अमृत बरसती सस्मित कोमल वाणी
करती स्वर संस्कृत वीणा के जिससे वीणा-पाणी
पूत प्रसन्न भाव भरती थी अमृत दृष्टि ऊषा-सी
खुलती थी स्वजनों के उर में रस की मंजूषा-सी।

भावों की पावन विभूति से उसके निर्मल मन के
काम देवता बना, वास कर मन्दिर में शुचि तन के
पुण्य प्रेम की सुधा बन गई सुरा वासना-मद की
भागीरथी पवित्र बन गई धारा यौवन-नद की।

अबला के दुर्बल विकार-सी अखिल भंगिमा लीला
बनी शक्ति का महिमा मण्डन गरिमा युक्त लजीला
तप संयम के सौम्य शील की मर्यादा में नारी
उदित हुई यौवन ऊषा मे बन कर शक्ति-कुमारी।

यौवन का आवेग अंग में बनता तेज अनूठा
वय का विवश प्रवेग प्राण मे शक्ति स्रोत-सा फूटा
काल-प्रकृति पर आत्म-शक्ति की जय-सी उज्ज्वल नारी
बनती शिव की स्वयंवरा वह शक्ति-मूर्ति सुकुमारी।

शील, स्नेह, सत्कार भाव से माता के कर्मों में
देती थी सहयोग भागिनी बन कर शुचि धर्मों मे।
गृह कर्मों में लीन पार्वती प्रमुदित अपने मन मे
वनदेवी-सी शोभित होती नृप के राज भवन मे।

उसके क्रिया कलापों से नित रहता जीवन घर में
भाव – सृष्टि होती थी सबके सूने – से अन्तर में
मुनि – कन्या – सी शुद्ध सरल वह निर्विकार सुकुमारी।
माता, पिता, बन्धु, स्वजनों की बनी हृदय से प्यारी।

राज सभा में बैठ पिता के दक्षिण पार्श्व पुनीता
प्रीति और शासन से संयुत नीति प्रसन्न अभीता
दर्शन से ही कर कृतार्थ वह सभा – वर्ग को सारे
करती थी विनियुक्त विजय में, शक्ति मौन में धारे।

मन्द धीर संचार चरण का गृह में गरिमा शाली
करता था अवनी को पद पद अद्भुत महिमा वाली
बन उपवन मे मात पिता के संग विचरने जाती
सुर, नर, मुनि, पशुओं के उर मे अद्भुत भाव जगाती।

उसके पावन प्रेम भाव से पशु – पक्षी भी वन के,
हो प्रसन्न, करते थे दृग से व्यक्त भाव निज मन के,
त्याग वैर औ स्वार्थ पार्वती के पावन पद – मग में
करते प्रेम – राज्य की रचना ऋजु निज तिर्यक जग में।

तेज और तप पूत रूप के दिव्य प्रभाव – प्रसर में
हो अभिभूत विलज्जित होते उर में नर किन्नर – से,
ऊषा की स्मिति से खिलते जो सुमन, साँझ मुरझाते,
रवि का उज्ज्वल तेज तपस्वी तरु वर ही सह पाते,

रूप – आरती सदृश शक्ति की सहज शीश धारण में
ऋषि, मुनि औ तापस होते थे चिर कृतार्थ जीवन में,
युग युग के तप, योग, त्याग के नियमित परिसाधन का
होता प्राप्त अखण्ड पुण्य, कर वन्दन पुण्य चरण का।

लीला, कला, विलास, लास हित विविध सुसज्जित होते,
विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष औ किन्नर लज्जित होते,
विद्या, कला, रूप में लखकर सहसा तेज अनोखा,
होता क्षण में भंग सभी के जीवन का चिर धोखा।

भूल अप्सरायें यौवन की विभ्रम-लीला सारी
करती उर मे वन्दित सहसा मर्यादा मय नारी,
चटुल वीचियों का लीला-सर छोड़ सतत मरुजल-सा
करती जीवन की गंगा का अवगाहन पा बल-सा।

दिव्य अंगनाये विलास के डूबी लीला-सर मे
गिरिजा के तप, तेज, रूप के जगतीं उदय-प्रहर में,
शील, तेज, तप, साधन से कर खण्डित ग्लानि हृदय की
होतीं थी प्रतिशोध शिखा-सी दीप्त अखिल दुर्नय की।

अक्षय भोग-विलास लीन वे देव कुमार निराले,
चिर यौवन की मदिरा मे वे असुरों-से मतवाले,
पावन दिव्य स्वरूप देख कर संज्ञा-सी पा जाते,
अभिज्ञान के आत्म-लाभ से चिर कृतार्थ हो जाते।

असुरों के उत्पात, त्रास औ अपने सन्तत भय का,
अपनी हार और असुरों की चिर आवृत्त विजय का,
सरल रहस्य विलास-विकृति की दुर्बलता में पाते,
शक्ति-साधना मे यौवन की मन्त्र विजय का पाते।

थे उद्विग्न असुर आतंकित अपने ही पापों से,
थे विक्षुब्ध, अशान्त, अनादृत अपने ही शापों से,
रूपवती, युवती, तपस्विनी, तेजमती गिरिबाला
भस्मसात कर रही उन्हें बन होम शिखा की ज्वाला।

अखिल लोक को रूप – तेज से पूर्ण प्रभावित करती,
जीवन के संस्कार हृदय में शुचि उद्भावित करती,
उसकी पुण्य रूप – गंगा में अवगाहन कर लोचन,
अयुत जन्म के दृष्टि – पाप का करते थे उन्मोचन।

शारद – श्री स शुद्ध कान्ति थी मानस पावन करती,
दिव्य वसन्तागम – सी सुषमा अन्तर में रस भरती,
नयनों की करुणा पावस – सी जीवन पावन करती,
शीत – ताप की हिम – ज्वाला में बन छवि शक्ति निखरती।

अमित शक्ति – श्री से आराधित, जीवन के मन्दिर में,
शिव की प्राण – प्रतिष्ठा होती जग के पुण्य अजिर में;
अभिज्ञान से आत्म – शक्ति के निष्ठा का बल भरते,
श्रद्धा के सम्बल से काया – कल्प लोक का करते,

गौरव के कैलास शिखर के कामी सुर – नर सारे,
करते आत्म – शक्ति उद्भावन दृढ़, व्रत, संयम धारे;
त्याग मोह सुख औ विलास मय चिर यौवन के दिव का,
आत्मनिष्ठ आराधन करते नित अभयंकर शिव का।

बनी प्रकृति पर आत्म – विजय की श्री – सी शैलकुमारी
हुई विश्व मे मूर्ति तेज की बन कर प्रकटित नारी,
रूप, शील, सौन्दर्य, तेज की वह मर्यादा – वेला
बनती जीवन के सागर का संयम और उजेला।

आलोकित था भुवन मनोहर उसकी पावन छवि से
रहता यथा अहर्निश ज्योतित वह शशि से औ रवि से,
आत्म प्रेरणा की पीड़ा से आकुल थे सब प्राणी,
भुवन-ज्योति औ आत्म – प्रभा-सी थी युगपत् कल्याणी।

कर प्रदीप्त पतिव्रता ने धारणा की आग,
दक्ष के मख मे सती ने किया जब तनु – त्याग,
हो तभी से वीत – राग, विविक्त और असंग,
हो गये तप – लीन शंकर, कर निरुद्ध अनंग।

सर्ग और निसर्ग का तज पूर्णतः अनुराग,
विश्व के व्यापार से तज राग और विराग,
कर निरुद्ध प्रवृत्तियों के अखिल प्रकृत – निमित्त,
कर समाहृत वृत्तियों को, पूर्ण – निश्चल चित्त;

लास्य औ ताण्डव उभय से विरत पूर्ण प्रशान्त,
ग्रहण कर कैलास का नीरव निभृत एकान्त,
शून्य अपने चित्त – सा ही विजन बाधाहीन;
सत्व से भास्वर, हुये शिव साधना में लीन।

चिता – भस्म – विभूति – भूषित देह पर धर चर्म,
उपरमित कर धारणा मे इन्द्रियों के धर्म,
अचल पर आसीन निश्चल देह से निस्पन्द,
पूर्ण अन्तर्लीन, करके नयन तीनों बन्द;

धर न जाने किस अलक्षित ज्योति का ध्रुव ध्यान,
किस अपरिमित दीप्ति के आलोक से द्युतिमान,
आत्म - स्थित हो, हुये शिव सन्तत समाधि–निलीन,
स्थाणु – से निर्वेद – निश्चल, यथा शक्ति – विहीन।

सिद्ध पद्मासन सहज पर अचल एक स्वरूप,
ध्यान मुद्रा मे सुसंस्थित योग के अनुरूप,
सितघनालंकृत अचल कैलास कूट समान,
भस्म–भूषित देह थी अपरूप शोभावान।

थे प्रलम्बित बाहु दोनों जानुओं पर न्यस्त,
कण्ठ औ भुजबन्ध के थे सर्प स्थिर विश्वस्त
मन्त्र – सुप्त समान निश्चल भूल फण – फुंकार;
दूर सुन पड़ती कदाचित् वृषभ की हुंकार।

सहज मीलित नयन पक्ष्मल, अधर स्फुरण-हीन,
प्राण के आयाम मे प्रश्वास – श्वास विलीन,
मणि-विनिर्मित मूर्ति – सी थी ज्योतिमय निस्पन्द
देह-छवि शिव की, झलकती आत्म-ज्योति अमन्द।

तेज की निर्मल प्रभा से दीप्त उन्नत भाल,
कालबन्ध समान अंकित था त्रिपुण्ड त्रिकाल,
कूट पर कैलास के विधु-सा विराजित सोम,
जूट था शोभित समुन्नत ज्यों असितघन – व्योम।

व्योम गंगा – सी प्रवाहित सुरसरी थी शान्त,
ज्योतिधारा तुल्य स्रुत ब्रह्माण्ड से निर्भ्रान्त,
देख निर्मल ज्योतिमय शिव का समाहित रूप,
नयन पूर्ण कृतार्थ होते और मन तद्रूप।

त्रिपुर – जय में सजग शिव के शक्ति – अस्त्र समान,
प्रलय-ताण्डव में त्रिगुण के विलय का उपमान,
नोंक पर जिसके त्रिलोकी कॉपती ज्यों फूल,
था निकट शिव-सा अचल स्थित तेज युक्त त्रिशूल।

ज्यों त्रिगुण की सन्धि पर इस विश्व का संस्थान,
हाथ में नटराज के गोलार्द्ध – युग्म समान,
शून्य मे घोषित घनों – सा शब्द में संक्रान्त,
डमरु अवलम्बित उसी पर था विनीरव शान्त।

पूर्ण भी अपरिग्रही के परि-ग्रहण से पूत,
मानते थे जिसे आत्मविभूति शिव अवधूत,
अन्नपूर्णा के अविक्षय पूर्ण कोष समान,
था धरा अविचल धरा पर कमण्डलु छविमान।

योग का शिव के सुरक्षक सिद्ध बन्ध-विधान,
सजग उत्सुक प्रतीक्षामय प्रतीहार समान,
सिंह-सा निर्भय, ग्रहण कर मौन दृढ़ सायास,
अचल पर बैठा अचल था धीर नन्दी पास।

तप-शिखर से शम्भु के नीचे उतर कुछ दूर,
देखते भागीरथी का पुण्य-दर्शन पूर,
विविध चित्रित सानुओं पर बैठ गण चुपचाप,
कर रहे अनियुक्त चर-से अशृंखल आलाप,

हैम शिखरों से अलक्षित कर निभृत निःसार
कर रहीं थी सर्पिणी-सी क्षिप्र पद-संचार,
गिरि वनों मे अप्सरा-सी कर रुचिर अभिसार
सहज सरितायें अनेकों तट-दुकूल पसार।

गिर रहा उन्नत शिखर से कहीं उग्र प्रपात,
कर रहा अविचल शिलाओं पर कठोर विघात,
लुप्त होता घोर रव में सरित-निस्वन क्षीण,
मेघ-ध्वनि मे ज्यों दलों का मन्द मर मर लीन।

विविध-वर्ण शिलातलों पर गणों के प्रिय मित्र
गैरिकों से ऑकते आकृति अनन्य विचित्र,
भूर्ज वल्कल धार, बन चर शम्भु के अनुरूप
विविध वृत्ति-निलीन थे गण, बने मन के भूप।

दूर पर गन्धर्व – कुल का देख नृत्य – विलास,
सहज भाव – विभोर भर कर दीर्घ - द्रुत निःश्वास,
एक करता दूसरे से मृदु विश्रम्भालाप,
अन्य – मन – सा दूसरा देता चरण की चाप।

कहीं दूर उपत्यका में अद्रि की अन्यत्र,
कर रहे किन्नर रुचिर संगीत का मधु – सत्र,
गूंजती थी गह्वरों औ घाटियों मे तान
प्रेरणा देता गणों को मधुर उनका गान।

चौक उठते सब सखा का सुन असुर आलाप,
एक क्षण किलकार मे जाते शिखर भी काँप;
दूसरे क्षण किन्तु सब हो पूर्ववत् ही शान्त
लग्न होते अन्य क्रम से कर्म मे निर्भ्रान्त।

वायु मे आती कभी मृग-नाभि की मधु गन्ध,
भूल जाते एक क्षण सब पूर्व के अनुबन्ध,
अन्धवत् करते अनिश्चित सूत्र अनुसन्धान,
लौटता प्रत्येक करता अपर का अपमान।

सरल उटजों मे सदा कर शान्ति-पूर्ण निवास
कर रहे ऋषि मुनि अनेकों योग-तप-अभ्यास,
त्याग कर कुछ उटज केवल शिला पर आसीन,
हो रहे शिव के सदृश ही साधना मे लीन।

उन्हीं मुनि औ तापसों के सनातन सम्राट्
स्थाणु सम अविकृत अचल औ व्योम-तुल्य विराट्,
अखिल तप-फल के प्रदाता पूर्ण काम प्रकाम,
तप रहे किस कामना से शिव स्वयं तपधाम।

कभी पड़ती घनों की मृदु मन्द मन्द फुहार,
कभी पड़ता टूट नभ से विपुल मेघासार,
वृष्टि से उद्विग्न हो गण गह परस्पर बाँह;
शरण लेते शिलातल या कन्दरा की छाँह।

वृष्टि के उपराम से जब विमल होता व्योम,
उदय होता सूर्य दिन में औ निशा मे 'सोम,
तब उन्हीं रंजित शिलाओं पर सहज सविनोद
सकल गण करते शिथिलता - श्रान्ति का अपनोद।

एक कहता दूसरे से सुन न उसकी बात,
एक डरता दूसरे से कर स्वयं उत्पात.
बन गया अवकाश शिव के गणों को आयास,
कर रहे थे वे क्रिया से काल का उपहास।

थे समाधिनिलीन शिव अविकल्प औ अविकार,
हो रहा मुख से अपरिमित प्रभा का विस्तार,
शून्य दिक् सर्वत्र थी औ काल था गतिहीन,
आदि हीन अनन्त शाश्वत वर्तमान - विलीन।

काल के निष्कर्म क्रम से गण हुए पर्यस्त,
थे सतत परिवर्त्तनों से प्रकति के संत्रस्त,
व्यर्थ लगता था उन्हें सब कर्म सेवा हीन,
सर्वतः सम्पन्न भी थे दूर शिव से दीन।

वे विलक्षण काल क्रम से काट क्रमशः काल,
बह रहे थे काल - सरि मे ऋजु तथापि अराल,
अर्थ हीन उपक्रमों से कभी ऊब अधीर,
ध्यान धरते बन्द कर दृग हो बहुत गम्भीर।

बालकों औ वंचकों से देखते दृग खोल,
एक पल पल दूसरे को धीर छल से तोल,
पुनः वंचक साधकों – से निज नयन कर बन्द,
भ्रान्तिमय सहयोग से छल कर रहे स्वच्छन्द।

गन्धमय झोंका पवन का विकल करता प्राण,
गर्जनों की भीति हरता नृत्य – निस्वन – गान;
विघ्न बन कोई प्रकृति क्रम ध्यान करता भंग,
सभी युगपत् निर्झरों से फूट बहते संग।

सोचते "स्वामी सदाशिव अचल औ अविकार,
कर रहे कैसे निरन्तर ध्यान का प्रस्तार,
श्वास है गति – हीन पद्मल पलक हैं निस्पन्द,
स्थाणु से अविचल, वदन पर किन्तु दीप्ति अमन्द।"

शक्ति – सी करती उषा अभिवन्दना प्रति प्रात,
देखती अपरूप छवि शत खोल दृग – जलजात,
तेज से आरक्त, लज्जित – वदन, कर दृग कोर,
शीघ्र ही होती विदा उल्लास – हर्ष – विभोर।

प्रभापूर्ण प्रसन्न मुख पर उदय होता भानु,
चमकते हिम – श्रेणियां – से बाहु युग आजानु,
हिम – शिखर – सी दीप्त अविचल भासती थी देह,
दिव्य दर्शन दूर करता अखिल भ्रम – सन्देह।

डूबता पश्चिम जलधि मे श्रान्त होकर सूर्य,
नील नभ लगता धरा के शीष का वैदूर्य;
देख तप की पूर्णता कर रहा विस्मय व्योम,
चकित अक्ष समान खुलते विकल तारक – सोम।

सकल गण, किन्नर, नरों को कर अतीव अधीर,
नृत्य – निस्वन – गान, गर्जन – शब्द मृदु – गम्भीर
व्योम – मूर्ति प्रसन्न नभ मे सहज होते लीन
प्रकृति – क्रम में थे समाहित ईश आत्म – निलीन।

अष्टमूर्ति अखण्ड 'शिव हो एक तैजस मूर्ति,
तप रहे थे बन स्वयं निज कामना की पूर्ति,
स्वच्छ नभ में अचल विद्युत्कल्प ज्योतिर्धाम,
राजते थे प्रभा से दुर्दर्श पर अभिराम।

विचल करता है न कोई प्रकृति का व्यापार,
काल – ऋतु – क्रम मे सदाशिव पूर्णत. अविकार;
सूर्य, सोम, समीर कर निज पूर्ण कार्य – कलाप,
भीत – से जाते चले सब पूर्णतः चुपचाप।

किम्पुरुष, गन्धर्व, निर्झर आदि के मधु गान,
विलय होते शान्ति – नभ मे व्योम – वीचि समान,
मेघ – गर्जन, सिंह औ वृष का भयंकर घोष,
हृदय मे जाग्रत न करता रुद्र के अभिरोष।

पक्षि, पशु, नर, किन्नरों को कर रहा मद – अन्ध,
गमकता गिरि में चतुर्दिक मधु – वसन्त – सुगन्ध,
हृदय में भर राग का उल्लास - पूर्वक रंग,
जगाता मन में न शिव के दुर्निवार अनंग।

जब प्रकृति के लोक में बन अन्तरंग विकार,
सृजन मे संलग्न होते काम के व्यापार,
स्थाणु से अविचल सदाशिव तब विकार – विहीन,
ध्यान मे किस ध्येय के रहते नितान्त निलीन।

मृदुल भी हिम लोक में, पर दृष्टि-अर्थ प्रचण्ड,
तीव्र तपता ग्रीष्म में मध्याह्न का मार्तण्ड,
कर पलक किञ्चित् विचंचल, रोम का उन्मेष,
कर न सकता ध्यान - निशि में ज्ञान-सूर्य प्रवेश।

पृथुल पावस मे बरसती व्योम से जलधार,
विप्लवित कर वज्र गर्जन से सकल संसार,
कन्दरा, कोटर, गृहों मे बचाकर निज प्राण,
पक्षि, पशु, नर, मुनि, तथा गन्धर्व पाते त्राण।

विप्लवित हो शम्भु-गण भी पा न स्थिति अन्यत्र,
शिलाओं को बनाते निज प्राकृतिक प्रिय छत्र;
एक नन्दीश्वर अचल शिव सदृश ध्रुव आसीन
अविचलित रहता न जाने किस तपस् मे लीन।

वज्ररव के प्रतिध्वनित - सा कर वृषभ हुंकार,
गरजता, होते विचंचल फणी भर फुंकार,
अद्रि से सर्वांग मे पावस - प्रवाह - समान;
अचल - से शिव का न किञ्चित् भंग होता ध्यान।

विपुल मेघासार मे कर शम्भु शत शत स्नान,
निखर उठते ज्योति से हिम-शिखर-से रुचिमान,
स्वर्ण - शतदल - सा उषा मे उदय होता गात,
शरद् - ज्योत्स्ना मे कुमुद - सा विकसता अवदात।

शिशिर औ हेमन्त मे हिमपात से अविराम,
चन्द्रलोक समान होता शीत - सित हिम - धाम;
हिम - पटल में साम्य सत् से प्रकृति होती लीन,
अद्रि - वन तम - रज सदृश होते विभेद-विहीन।

तेज से हिम - आवरण को कर निरन्तर भंग,
राजते केवल पुरुष - से निर्विकार असंग,
योग में आरूढ़ शिव ऋतु - काल से स्वच्छन्द
बने पुण्य स्वरूप मे थे पूर्ण परमानन्द।

काल - क्रम से पुनः फिर फिर राग - पूर्ण वसन्त,
प्रकृति को रस - पूर्ण कर, रंजित समस्त दिगन्त,
भीत त्रिनयन और तप से, दूर से अविराम
चाहता निष्काम उर मे उदय करना काम

शिव रहे चिर काल तप में लीन इसी प्रकार,
वर्ष - गणना कर, गये गण भूल कितनी बार,
पक्षि, पशु, नर, मुनि, असुर, सुर कभी कोई भी न,
उस शिखर की ओर आये दिव्य अथवा दीन।

एक बार वसन्त - श्री - सी पार्वती के साथ
परिचरों के सहित आये उधर पर्वतनाथ,
उग्र तप मे लीन शिव के दरस की थी चाह,
और नारद के वचन का हृदय में उत्साह।

सानुओं को घेर बैठे गणों ने उद्दाम,
शीघ्र हो संयत किया नृप को विनम्र प्रणाम,
और बोले "नाथ! शिव तो हैं समाधि - निलीन
कर रहे हैं विघ्न - वारण हम चतुर्दिक दीन।"

भूप बोले, "विघ्नहर शिव सदा बाधा - हीन,
विघ्न - वारण तुम करो बस विघ्न - वारण लीन;
देव - दर्शन का सभी को भक्ति से अधिकार,
दरस से होगा न तप में तनिक भंग - विकार।"

मान आश्वासन नृपति का गणों ने तत्काल,
किया मार्ग प्रदान, हर्षित बढ़ चले भूपाल;
दूर से युगपत् गणों ने किया कुछ संकेत,
सूर्य को इंगित करे ज्यों दीप गर्व समेत।

रुक गये सहसा स्वयं विस्मित महीप विशेष,
विनत नन्दी ने किया नृप-मार्ग का निर्देश,
शिखर पर आरूढ़, जो बन शान्ति का प्रतिहार,
कर रहा शिव के गणों के विघ्न का प्रतिकार।

हो रहा था तेज से भास्वर शिखर का प्रान्त,
था सकल वातावरण नीरव नितान्त प्रशान्त,
हो रहे तप-तेज से थे दीप्त दिव्य महेश,
शीर्ष पर नभ में यथा हो दीप्त स्वच्छ दिनेश।

जड़ित थे लोचन नृपति के देख कर वह रूप,
दूर दर्शन मात्र से कृत कृत्य होकर भूप,
विनत कर ग्रीवा-पलक औ जोड़ कर युग हाथ,
रह गये निश्चल खड़े वे पार्वती के साथ।

पार्वती सौभाग्य का फल प्राप्त कर साकार,
रह गई अनिमेष निश्चल दिव्य रूप निहार;
कर पिता का अनुकरण-सा, नम्र कर निज माथ,
प्रार्थना-से मौन जोड़े कमल-से युग हाथ

और चित्रित प्रार्थना-से अचल औ अनिमेष
भावना में भर हृदय का मर्म-भाव अशेष,
देर तक दोनों खड़े ही रहे सुधि-सी भूल,
धैर्य-श्रद्धा से हुये कुछ देवता अनुकूल।

तब कहीं उस तेज के आलोक में अविकार,
हुआ आलक्षित अलक्षित उर्मि का संचार,
योग निद्रा से युगों की यथा सहसा जाग,
बाहुओं औ कण्ठ मे आकुल हुये कुछ नाग।

युगों से मीलित पलक दल मे हुआ कुछ स्पन्द,
निभृत अधरों मे हुआ कुछ स्फुरण - सा मृदु - मन्द,
हुआ कुछ नासापुटों में श्वास का आभास,
बना कन्या का कुतूहल, पिता का विश्वास।

तेज में करुणा - कमल - से खुले चक्षु विशाल,
दृष्टि भर से होगये कृत - कृत्य चिर भूपाल,
पार्वती ने भी पलक की उठा किञ्चित कोर,
तेज की करुणा हृदय मे ली अमोल बटोर।

पलक के ही संग शिव के उठे दोनों हाथ,
छू रहे तेजःप्रसर से थे विनत युग माथ,
दे रहे होकर दया से द्रवित शुभ आशीष,
पुण्य फल - सा भक्ति का उनसे प्रसन्न गिरीश।

खुले सस्मित अधर बोले वचन शंकर मन्द्र,
शंख से ज्यों हो उठा हो मुखर राका - चन्द्र,
"स्वस्ति, राजन्! धर्म मय हो कीर्ति चिर अवदात,
हो परम सौभाग्य शीला तव सुता अभिजात।

आपका श्रम बना मेरे योग का सौभाग्य,
आपके अनुराग से मेरा सफल वैराग्य,
अकिंचन् अपरिग्रही मैं क्या करूँ सत्कार,
उचित कुछ अभ्यागतों के साथ शिष्टाचार।"

भूप बोले, "नाथ! जग के आप मंगल - मूल,
आशुतोष! विभूति जग की तव चरण की धूल,
आपको इस विश्व में कुछ भी न नाथ! अदेय,
आपकी करुणा - किरण से दीप्त जग के श्रेय।

पुण्य दर्शन से शिवंकर आपके अभिराम,
हुये आज कृतार्थ हम चिर पूर्ण - काम प्रकाम,
आपके दुर्लभ दरस का एक ही फल नाथ!
याच्य, दर्शन और सेवा नित सुता के साथ।"

भूप से बोले सदाशिव, "नृप! प्रकृति से दूर,
ध्यान - तप से कर प्रकृति के बन्धनों को चूर,
आत्म-स्थिति की सिद्धि का कुछ कर रहा अभ्यास,
है न समुचित प्रकृति को देना यहाँ अवकाश।

भूपते! कन्या तुम्हारी रूपसी अभिराम
प्रकृति की सौन्दर्य - सीमा, शील - शोभा - धाम,
कमल - सी कमनीय, तन्वी, सृष्टि - मध्य अनन्य
कल्पना के रूप-चय से रच हुआ विधि धन्य।

परम सुकुमारी उचित इसको न यह आयास,
उचित योगी को न रखना प्रकृति को निज पास;
योग्य इसके आपके कमनीय कंचन - धाम,
उचित आत्म - नियोग में मुझको प्रकृति -उपराम।

प्रार्थना इससे हमारी यही पर्वतराज!
(हो गये कृत-कृत्य इसके दरस से हम आज)
छोड़ इस तन्वंगिनी को आप अपने गेह,
नित्य दर्शन को पधारें नृपति! निस्सन्देह।"

शम्भु के सुन कर वचन विस्मित हुये हिमवान
शील का अभिजात उनके बना मौन प्रमाण,
किन्तु गिरिजा रख सकी मन मे न अपने धीर,
लख पिता को मौन, बोली गिरा मृदु गम्भीर –

"देव ! आप तपस्वियों के सर्वजित् सम्राट्,
सकल मुनि औ योगियों के वन्दनीय विराट्,
प्रकृति सुकुमारी, नहीं है आप को दुर्जेय,
आपको इस विश्व मे कुछ भी नही अज्ञेय।

आत्म – निष्ठा मे सदा ही आप पूर्ण समर्थ,
प्रकृति से यह भीति होती आपको क्यों व्यर्थ ?
प्रकृति से निर्लिप्त केवल पुरुष हैं अविकार
आप सर्वेश्वर, प्रकृति भी आपके अधिकार।

पर कुतूहल मात्र मेरा, क्षमा करना आर्य !
है न क्या योगीश्वरों को भी प्रकृति अनिवार्य ?
देव ! कण कण मे प्रवाहित हैं प्रकृति के स्रोत,
विश्व मे सर्वत्र स्वामिन् ! प्रकृति ओत – प्रोत।

आपका यह श्रवण, दर्शन, वचन का व्यवहार,
नाथ ! सुकुमारी प्रकृति का ही रुचिर व्यापार,
आपके ये तप, नियम, व्रत, धारणा औ ध्यान
हैं प्रकृति के मार्ग से ही आत्म – अनुसन्धान।

प्रकृति के ही विभव से है विश्व यह भरपूर,
रह न सकते नाथ ! उससे आप क्षण भर दूर;
आपकी छाया – सदृश यह प्रकृति देव ! अपार;
अनुचरी को उचित सेवा का प्रकृत अधिकार।"

पार्वती के वचन सुन कर मर्म - गर्भ विनीत
हो प्रसन्न महेश बोले, "हो प्रकृति की जीत ;
है प्रकृति दुर्जेय, चाहे पुरुष हो अविकार,
है तुम्हारी प्रार्थना जय - सी मुझे स्वीकार।"

देव - दर्शन के लिये आना वहाँ पर नित्य,
हो गया नृप का सुता के सहित दैनिक कृत्य,
पार्वती बोली पिता से एक दिन सोल्लास,
"पितः! यदि मैं रहूँ सेवा हेतु शिव के पास!"

समझ कन्या का मनोगत भाव बोले भूप
"है तुम्हारी प्रार्थना वत्से! उचित अनुरूप,
है तुम्हारी कामना कन्ये! परम कमनीय,
और श्रद्धा युत तुम्हारी साधना स्पृहणीय।

संग सखियों को सुते! ले रहो तुम चिर काल,
देव - सेवा में निरत", यों कह गये भूपाल;
वचन नारद के बने थे पिता के विश्वास,
भव्य भावी बनी अविदित सुता की अभिलाष।

संग सखियों के वहाँ, धर तापसी का वेश,
ओढ़ गैरिक वस्त्र, कर उन्मुक्त लम्बित केश,
अमल ऊषा - सी, हृदय में अमित श्रद्धा धार,
पार्वती करने लगी शिव का प्रयत परिचार।

हो गये शिव फिर समाहित पूर्ण आत्म-निलीन,
हो गये मीलित निलय में नयन उनके तीन,
अर्चना ही पार्वती का रही शुचि अधिकार,
और आश्रम की व्यवस्था मात्र थी परिचार।

उठ उषा मे नित्य, कर भागीरथी मे स्नान,
पूजती श्रद्धा सहित थी हृदय के भगवान,
अग्नि - सम तप - तेजमय की अर्चना कर दूर,
देख सकती थी न दृग - भर वह प्रभा का पूर।

कुशासन पर बैठ, करके नयन दोनों बन्द,
श्वास को संयत तथा कर देह को निस्पन्द,
खोल अन्तर्नयन करती नित्य शिव का ध्यान,
ध्यान में होते हृदय में प्रकट श्री भगवान।

पूत श्रद्धा - स्नेह - सा जिनमे प्रपूर्ण सुवास
अमल उर - मे सुमन उज्ज्वल चढ़ा पद के पास,
अमृतरस - सा हृदय के शुचि नीर का दे अर्घ्य
अर्चना करती हृदय से निज अनन्य अनर्घ्य।

रख चरण मे शील पूर्वक विनय - से निज शीष,
देवता से मौन मानों माँगती आशीष,
जोड़कर युगकर कमल - से, कर विनम्र प्रणाम
देखती आनत नयन से रूप वह अभिराम।

और लेकर दूर से ही विश्व मंगल मूल
भाल पर श्री के विभव - सी श्रीचरण की धूल,
संकुचित - सी विवश जाती आलियों के पास,
साधना का ले वदन पर भावमय आभास।

नियमचारिणि संग शिव के तापसी बन आप
कर रही तप - रूप सेवा हृदय से चुपचाप,
देव चर्चा ही वहाँ थी कथा - वृत्त - कलाप,
बीतता इस पुण्य क्रम से दिवस था निस्ताप।

भाल का शशि हरण करता तीव्र तप का स्वेद,
ध्यान – दर्शन देवता का दूर करता खेद,
नियम – विधि – क्रम काल का हरता सुदुर्वह भार
धैर्य बनता हृदय का व्रतपूर्ण शीलाचार।

शान्त आश्रम मे जगा कर शुद्ध मणिमय दीप
स्नेह – शीला आलियाँ वे बैठ नित्य समीप,
भूमिका मे भूत की ले वर्तमान प्रसंग
बहु कथा करती जगा कर रुचिर भव्य उमंग।

भर सखी के हृदय मे उत्साह औ विश्वास,
उल्लसित करती कभी कर अल्प मृदु परिहास,
मन्द स्मिति से पार्वती कर लाज का परिहार
ग्रहण करती आलियों का स्नेहमय सत्कार।

निशा तम में उस कुटी मे दिव्य तीनों बाल
स्वच्छ मणि आलोक मे शुचि दीप्त आनन-भाल,
राजती थीं, यथा चन्द्र त्रिलोक के तज धाम
समागत शिव की कृपा के अर्थ थे अभिराम।

शान्त निर्मल चाँदनी मे कुमुदिनी – सी कान्त
बैठ आश्रम द्वार पर शुचि सान्ध्य-विधि उपरान्त,
कर कुतूहल पूर्ण शशि, ग्रह, तारकों की बात
हरण करती पार्वती का श्रम कठिन तप – जात।

रुचिर श्रद्धा और आशा तुल्य दे अवलम्ब
कुसुम – से रुचिमय बनाती अखिल कार्य-कदम्ब,
जया-विजया कुछ सरस कर वह कठिन तपयोग
दे रही थीं साधना में स्नेह का सहयोग।

पूर्ण आत्म निलीन थे शिव पुरुष – से अविकार,
पार्वती करती प्रकृति – सी अर्चना परिचार,
स्थाणु से कूटस्थ थे कैवल्य – पद चिन्मात्र
ज्योति से दर्पण सदृश सन्दीप्त था शुचि गात्र।

गन्ध – मादन–सा बनाकर अखिल पर्वत प्रान्त
कुसुम – सौरभ से बना कर मधुप – सा उद्भ्रान्त
सुर, असुर, नर, पशु–जनों को, विभवपूर्ण वसन्त
तपस्वी मुनि योगियों को भीतिपूर्ण दुरन्त,

पार्वती के पुण्य अंगों पर चढ़ाता ओप
अनभिवन्दित अतिथि – सा तन पर दिखाता कोप,
तापसी के अमल मन से हार, मान्य मनोज
खिलाता उपहास – सा था वदन का अम्भोज।

किन्तु अविदित यौवना – सी तापसी सुकुमार,
कर रही अविकल्प मन से अर्चना अविकार,
बाल – कौतूहल सदृश निज आलियों के संग
कुसुम चुन, माला बनाती, भर अबोध उमंग।

उसे शम्भु – त्रिशूल पर देती मृदुल नित डाल,
थी विलम्बित अर्चना की अवधि-सी जयमाल;
पुष्प–माला की बनाकर रुचिर वन्दनवार,
उत्सुकित मन से सजाती निज कुटी का द्वार।

पुण्य पावस के प्रलय मे प्रकृति-सी शुचि स्नात,
अचल विद्युत कान्ति सी हिम प्रान्त मे अवदात,
आर्द्र वल्कल मे लपेटे संकुचित – सी लाज,
आर्द्र मन से पूर्ण करती नियम निज निर्व्याज।

शरद की निर्मल सरित - सी सुतनु शुद्ध प्रशान्त
पूत उज्ज्वल अंग मे निज, कुमुदिनी - सी कान्त,
गगन-से निर्मल हृदय से, इन्दु-सी अवदात
नियम से नित अर्चना कर रही सायं प्रात।

शिशिर औ हेमन्त मे अक्लिष्ट तन, अम्लान
नित्य ही हिमवारि से कर पुण्य प्रातः स्नान,
ओस - सिक्त सरोज - सी ले शान्तिमय उत्साह
मुक्तमन से कर रही नित नियम का निर्वाह।

देख मधु के रस - प्रलय में शम्भु को अविकार,
पृथुल पावस मे अचल - सा उन्हें शान्त निहार,
शरद मे निर्मल, शिशिर - हेमन्त मे अम्लान,
प्रकृति की सब विकृतियों मे व्योम तुल्य समान,

बढ़ रहा था पार्वती का देव - गत अभिमान
अधिक अर्चा को समुत्सुक हो रहे थे प्राण,
बढ़ रही दृढ़ता नियम की और मन की साध
बढ़ रहा श्रद्धा सहित विश्वास था निर्बाध।

मार्ग - सम्मार्जन तथा सब अन्य आश्रम काज
संग सखियों के स्वयं कर नृप - सुता निर्व्याज,
विश्व - मंगल की सनातन भूमिका - सी पूत
रच रही थी, स्नेह मे कर योग - तप अनुस्यूत।

विश्व - कवि की कल्पना - सी तापसी सुकुमार,
लोक - मंगल छन्द-सी करती नियम पद - चार,
बन्धु, माता पिता गृह की सकल सुधि-सी भूल,
कर रही थी साधना शिव-सिद्धि के अनुकूल।

सर्ग ४

स्वर्ग की पुकार

शैल शिखर पर तपो – लीन थे शिव चिन्मय अविकार,
केवल क्रियाशक्ति – सी करती शैल – सुता परिचार;
उस अकाल अनपेक्ष योग में बीता कितना काल
हुये भुवन – लोकों में तब तक कितने काण्ड कराल।

आसुर विधि से दीर्घ काल तक कर तप कठिन अखण्ड,
हुआ सृष्टि के प्रबल शाप – सा तारक असुर प्रचण्ड;
विश्व विधाता को प्रसन्नकर पाया यह वरदान
"बनूँ अजेय अमर जगती में अनभिभूय असमान।"

हो निर्भय, निर्जेय शक्ति के मद से निर्मर्याद,
पावस के प्रवाह – सा फैला भय, आतंक, विषाद,
करने लगा असुर भुवनों में नित्य नये उत्पात
सुर, नर, मुनि संत्रस्त हुये सब पा असह्य अभिघात।

नर निश्चेष्ट रहे सहते ही उसके अत्याचार,
मुनि प्रशान्त एकान्त प्रकृति से कर न सके प्रतिकार;
बार बार कर युद्ध देवता गये हार से हार,
असुरों की अजेय सेना से पा न सके कुछ पार।

राहु – ग्रस्त रवि – तुल्य सभा मे म्लान – वदन श्री – हीन –
बैठे थे सुरराज, चतुर्दिक खड़े देवता दीन,
लज्जित, चिन्तित औ निराश थे सब आनत मुख मौन
उस निरुपाय दशा मे किससे क्या कह सकता कौन!

शान्त भाव से दीर्घ काल तक कर कुछ मौन विचार,
निविड़ तिमिर में कर प्रकाश की रेखा का संचार,
बोले गुरु गम्भीर शब्द से देवराज से, "आर्य!
कठिन अवश्य, परन्तु नहीं है यह संकट अनिवार्य

"सब प्रकार कर युद्ध असुर से हारे कितनी बार',
शेष अभी क्या साधन जिससे हो इसका प्रतिकार!
देवलोक में गुरो! आपकी तत्व – दर्शिनी दृष्टि
करती रही सदैव हमारे मंगल – पथ की सृष्टि।"

कर विनीत वचनों से वन्दित गुरु को दीन सुरेश
उत्कण्ठित हो उठे श्रवण को रक्षा का सन्देश,
शान्त भाव से बोले गुरु "बस इसका एक उपाय,
स्वयं' स्वयंभू की सेवा में चले देव समुदाय।

जिसके वर से असुर समुद्धत हुआ सृष्टि का शाप,
कर सकते उससे संरक्षण वही स्वयंभू आप,
उनके ही वर के प्रताप से यद्यपि यह दुर्जेय
किन्तु विधाता को देवों को कुछ भी नहीं अदेय।"

सुनकर गुरु के वचन सभी ने पाये मानों प्राण,
हो समवेत देवताओं ने तत्क्षण किया प्रयाण;
वायु वेग से ब्रह्मलोक में उतरे देव – विमान
देवराज! को आगे करके किया शान्त अभियान।

पहुँच समुत्सुक देव वृन्द ने ब्रह्मा के ध्रुवधाम,
दीर्घ काल के उत्पीड़न से पाया प्रिय विश्राम,
देवों की चिन्ता – यामा में ब्रह्मा सूर्य समान
उदय हुये, खिल उठे कमल से उनके मुख परि–म्लान।

देवराज के सहित विनय से करके नम्र प्रणाम,
करने लगे उदात्त कण्ठ से अर्थवती अभिराम
सर्व देवता सर्वतोमुख की स्तुति चिर मंगल – मूल,
विश्व विधाता वागीश्वर की वाणी से अनुकूल।

"नमः आपको आदि सृष्टि के आदि अकारण मूल,
निर्मित होती सरणि सर्ग की तव इच्छा – अनुकूल;
आदि सृष्टि के पूर्व अखण्डित केवल आत्म स्वरूप
रचते अयुत – भेद–युत भव यह, त्रिगुण - भेद – अनुरूप।

एकाकी संकल्प शक्ति से रचकर रूप अनेक,
करते आत्मानन्द हेतु निज प्रजा – सर्ग – उद्रेक,
जल में आदि बीज से ही तव होता है कनकाण्ड
होता उससे प्रकट चराचर यह असीम ब्रह्माण्ड।

नारी – नर दो एक आपके आत्म भाव के रूप,
माता – पिता अनन्त सर्ग के बन जाते अनुरूप,
काम – रूप यह सृष्टि भेद से होकर द्विधा विभक्त
होती है एकत्व सृष्टि के हेतु एक अनुरक्त।

अपने ही परिमाण काल से चिर जाग्रत अनिमेष
अपने ही दिन के प्रभात में कर जग का उन्मेष;
कर आकल्प सृष्टि का धारण रचते पुनः नवीन,
आत्म – निशा मे स्वप्न – प्रलय में करते उसको लीन,

पितरों के भी पिता, सुरों के भी सदैव आराध्य
आप देवता, सुर मुनियों के शुभ सर्वोत्तम साध्य;
आदि प्रजापतियों के स्रष्टा, पर से भी पर आप
प्रभो! आपकी कृपा जनों के हरती सब सन्ताप।

प्रभो आपके चतुर्मुखों से सर्वदृष्टिमय पूत
चतुर्वेद की पुण्यवाहिनी वाणी हुई प्रसूत;
त्रिगुणातीत त्रिलोक सृष्टि के पावन मंगल – धाम,
देव – देव! पावन चरणों मे करते देव प्रणाम।"

सुनकर श्रद्धा सत्य मयी स्तुति अर्थवती अभिराम,
हो प्रसाद - अभिमुख देवों से बोले मंगलधाम,
चतुर्मुखों से कवि पुराण के निःसृत यथा यथार्थ
हुई चतुर्विध वाणी अपने उद्‌गम से चरितार्थ —

'स्वागत! स्वाधिकार मे सन्तत कर्म - योग से निष्ठ,
दिव्य पराक्रम के प्रभाव से सदा सहज धर्मिष्ठ,
स्वागत! सकुशल इन्द्र लोक में है सब देवसमाज
युगपद् देववृन्द का कैसे हुआ आगमन आज!

उत्तम वैभव सकल सृष्टि के देवों के आधीन,
चिर - यौवन . अमरत्व अबाधित, औ उपयोग प्रवीण
आयुध दिव्य अमोघ सभी हैं सदा तुम्हारे पास
कल्पद्रुम - सी अखिल कामदा श्री का विपुल विलास!

फिर भी क्यों हे वत्स! तुम्हारे मुख हैं आज मलीन,
नीहारावृत नक्षत्रों से मन्द - कान्ति श्री - हीन;
आज तुम्हारी मुद्राओं में छाया बन अवसाद
साल रहा अन्तर में कोई दुःसह गूढ़ विषाद!

सह न सका था वृत्रासुर भी जिनका तेज प्रताप
अम्बर मे आभा रचती था जिनकी शत सुरचाप,
तेज - विहीन आज कैसे हैं वे विजयी सुरराज
कान्ति - रहित कुण्ठित - सा कैसे कुलिश हुआ है आज!

दुर्निवार विद्युल्लेखा - सा करता शत्रु विनाश,
दिव्य अमोघ प्रचेता का यह बल - तेजोमय पाश,
मन्त्राहत फणि के समान ही हुआ आज बलहीन
मेघाकुल रवि - तुल्य वरुण भी दीख रहे श्री - हीन।

अलकापति ये अखिल सम्पदाओं के ईश कुबेर,
लज्जित – से क्यों आज म्लान मुख रहे यत्न से फेर,
भग्न – शाख द्रुम से शोभित ये दिव्य गदा निज त्याग
मनोविषाद प्रकट करता है अभिभव – जनित विराग!

संयमिनी नगरी के स्वामी ये यमराज प्रचण्ड,
कर्म – प्रशासक, धर्म – ओज – सा त्याग रत्न–मय दण्ड,
लज्जा से नत – वदन भूमि पर रचते रुचिमय रेख,
खेद – म्लान हो रहे सूर्य भी दीन दशा यह देख!

करते अपने दुसह तेज से नभ में विचरण नित्य,
किस घन – बाधा से आतंकित ये द्वादश आदित्य,
आज शान्त – गति – तेज चन्द्र – से ज्योति-छाया धाम,
चित्रांकित से रुचिर हो रहे दर्शनीय अभिराम!

जिनकी नित्य अमोघ प्रगति थी सृष्टि – प्रलय दुर्वार,
मन्त्र – वद्ध क्यों हुये मरुत के आज वेग – व्यापार,
नभ मे निश्चल मेघ हो रहे, वन में पत्र प्रशान्त,
भू में जलधारा का प्रसरण होता मन्द नितान्त!

शिथिल विनम्र, जटा – जूटों मे आलम्बित शशि – लेख,
राहु – ग्रस्त शशि – तुल्य वदन की क्षीण प्रभा को देख
जिनका रोष विपद्‌ वर्ग को था प्रलयाग्नि समान,
रुद्रों का हुंकार हुआ क्या विहृत अदम्य महान!

क्या बलवत्तर किसी शत्रु ने पूर्व प्रतिष्ठा छीन,
पराभूत कर तुम्हें किया है इस प्रकार श्री – हीन!
जिस प्रकार सामान्य शास्त्र की मर्यादा कर भंग
अनियन्त्रित अपवाद नीति के बनते प्रबल प्रसंग।

तुम्हें सर्ग में श्रेष्ठ बनाकर गुण - बल - वीर्य - निधान,
रक्षा का अधिकार सृष्टि की तुमको किया प्रदान,
तुम आदर्श लोक के, नेता, करते पथ निर्माण
मानव कर अनुसरण तुम्हारा पाते चिर कल्याण।

'आज सर्ग के अग्रदूत तुम इस प्रकार हो दीन
किस विपदा से ग्रस्त, त्रस्त-से आकुल कान्ति-विहीन,
करने क्या अर्थना यहाँ पर आये हो समवेत,
धर्म - प्रचेता - से नेता औ गुरु - सुरराज समेत।"

मन्द अनिल से सहसा स्पन्दित कमल - दीर्घिका तुल्य
(जिनके इंगित के समक्ष था वचन व्यर्थ बाहुल्य),
अपने नेत्र सहस्र फेर कर, सहसा कर उद्‌बोध,
किया इन्द्र ने गुरु को प्रेरित, कर मन से अनुरोध।

कर नयनों से ग्रहण इन्द्र का आग्रह युत निर्देश
सिद्ध, शिष्ट, मित साधु पदों में कर गुरु अर्थ-निवेश,
देख याचनामय नयनों से करुणाकर की ओर,
बोले नम्र वचन ब्रह्मा से गुरु गुरु - भाव - विभोर—

"जन जन के अन्तर्यामी प्रभु विश्व विधाता आप
अविदित नहीं आपको जग के हर्ष, शोक, सन्ताप,
सत्य आपका वचन पितामह ! एक शत्रु बलवान
बना हमारे त्रास - ह्रास का दुर्दमनीय निदान।

प्रभो ! आपके ही प्रसाद से कर वाञ्छित वर प्राप्त,
तारक महा असुर, वर से ही पाकर बल पर्य्याप्त,
धूमकेतु के तुल्य लोक मे करता नित उत्पात,
उसके अत्याचार उपद्रव बनते उल्कापात,

वर के परम अभेद्य कवच मे सदा सुरक्षित क्रूर,
विजयगर्व औ बल के मद मे महावधिक - सा चूर,
त्रिभुवन मे करता है सन्तत भीषण अत्याचार,
उपप्लवित हो रहा त्रास से आकुल सब संसार।

नर, मुनि, देव हुये सब उसके विक्रम से अभिभूत,
उसके कर्म - बीज से होते नित विष - वृक्ष प्रसूत,
त्राहि त्राहि कर रहे लोक सब, छाया हा हा कार,
करती हृदय दीर्ण देवों के उनकी आर्त्त पुकार।

हो विद्रवित उसी करुणा मे आत्म - भोग से त्रस्त,
हुये उपस्थित आज आपके सम्मुख देव समस्त,
करने विनय, निवेदन करके उसके अत्याचार;
हैं सर्वज्ञ आप, यह केवल शिष्ट लोक व्यवहार।

तीन लोक हो रहे समाकुल पाकर भीषण त्रास,
सुर - नर - मुनि - सन्ताप बन रहा असुरों का परिहास,
स्वर्ग और भूलोक बन रहे नरकों के उपमान,
अमरों को दुर्लभ मनुजों का हुआ प्राण - बलिदान।

हुआ नृलोक नरक - सा भीषण फैला त्रास कठोर,
करते अत्याचार घूमते दानव चारों ओर,
फिरते विकट हिंस्र पशुओं - से असुर - वृन्द उद्दाम,
उत्पीड़ित कर रहे नगर, पुर, जनपद, पल्ली ग्राम।

कर युवकों का वध ले जाते बलपूर्वक वे नीच
असुरपुरी में निर्यातन हित अबलाओं को खींच,
विवश आत्म - दुर्बलता से नर जीवित मृतक समान,
सहते अत्याचार अहर्निश औ असह्य अपमान।

कुल ललनाओं के माथे का शुचि सुहाग सिन्दूर
मेट, रक्त का तिलक भाल पर अंकित करते क्रूर,
पतिव्रताओं का सतीत्व कर खण्डित विवश बलात्
निज नृशंसता की वेदी पर देते बलि मृत गात।

कितनी मानवती कन्याये जल मे रमा – समान
बलि कर चुकीं धर्म पर अपने कोमल पावन प्राण,
कितनी क्षत्राणियाँ सती – सी कर से अग्नि सहेज
भस्म हुई, निर्भय पतियों को अन्तिम रण मे भेज।

पकड़ ब्राह्मणों की चोटी औ पोत भाल पर कीच
शोणितपुर को लेजाते वे उन्हें दर्प से खींच,
वहाँ बाँध यज्ञोपवीत से उनके दोनों हाथ,
कहते "तारक महाराज को सभी झुकाओ माथ।"

चन्दन – चर्चित वेद – शास्त्र के पत्र रक्त में बोर,
बरसाते सिर पर क्रीड़ा से उनके चारों ओर
अट्टहास के सहित हाथ मे दे हड्डी औ मांस
कहते, "ले दक्षिणा पधारो द्विज निज पुण्य निवास।"

देव मूर्तियाँ खण्डित करके, कर देवालय भंग,
किया धर्म को नष्ट उन्होंने शिल्प – कला के संग,
पत्थर – से निष्प्राण देवता लखते सब निरुपाय,
शक्ति हीन सब भक्त पुजारी सहते सब असहाय।

ललनाओं की सहित आभरण लाज लूट बहु बार,
कितने वणिकों की सम्पति पर किया सबल अधिकार,
धर्म, कीर्ति को छोड़ कर रहे कुछ दुष्कर व्यापार,
किन्तु त्रस्त कर रहे उन्हें भी अगणित अत्याचार

सेवा प्रकृत धर्म शूद्रों का असुरों का अधिकार,
किन्तु सह रहे सेवा कर भी वे पशुवत् व्यवहार,
नारी की लज्जा से उनकी वधुयें चिर अज्ञान,
और न उनको कल्पनीय है मानव का सुख - मान।

धर्म - कीर्ति - यश - गौरव - मानी द्विज दे रण में प्राण,
छोड़ कीर्ति निज, मानवता का पथ कर गये प्रमाण,
किन्तु सह रहे कायर कितने सेवा - अत्याचार,
अबलाओं के हृदय कर रहे विवश मौन चीत्कार।

ऋषि - मुनियों की पुण्य शान्ति के जन्म - शत्रु दनुजात
धर्म, कर्म, तप, ध्यान, यज्ञ में करते नित उत्पात;
आत्मा के आनन्द शान्ति से पूर्ण परम एकान्त
उनके आश्रम - वास हो रहे असुरों से आक्रान्त।

शिव - विभूति - सी तपःपूत है आश्रम की शुचि धूल,
नैसर्गिक विद्वेष - भाव सब पूर्व - जन्म - सा भूल
जिसके पावनतम प्रभाव से कानन के पशु - वृन्द
शान्त तपोवन में करते हैं विचरण नित स्वच्छन्द,

उन्हीं निसर्ग स्नेह के सागर तपोवनों मे आज
उग्र साहसिक - सा फिरता है उन्मद असुर - समाज;
कठिन होगया तपश्चरण औ दुष्कर आश्रम - वास,
असुरों के प्रकोप से वंचित रह न सका संन्यास।

धर्म - आचरण आज बन गया सहज पुण्य से पाप,
शान्ति, अहिंसा, सत्य, साधना बने धर्म के शाप,
दावानल मे भस्मसात् ज्यों होते सुन्दर फूल,
असुरों के विप्लव मे होते पुण्य - धर्म निर्मूल।

मानव की नैतिक मर्यादा मुनियों के तप - ज्ञान,
आज छिन्न हो रहे प्रलय में सरि के कूल समान,
शिशुओं के विक्रम - सी असफल तपोयोग की शक्ति,
मिथ्या इन्द्रजाल - सी निष्फल हुई भागवत भक्ति।

असुरों की निर्बाध शक्ति के सम्मुख आत्म - प्रवाद
लगता जीवन से उन्मुख कुछ अबलों का उन्माद,
देवार्चन लगता शिशुओं की लीला - की - सी भ्रान्ति,
दुर्बलता के धर्म दीखते सत्य, अहिंसा, शान्ति।

देख धर्म - पीठों पर निर्भय आसुर अत्याचार,
ऋषि - मुनियों के पुण्य वृक्ष पर उनका काल - कुठार,
'मनोभ्रान्ति सब धर्म कदाचित्' होता यह सन्देह,
'आत्मा है सन्दिग्ध, सत्य है केवल बल औ देह।'

असुर अनाचारी के सम्मुख धर्म माँगता नीर,
आत्मा भी असहाय छोड़ती भग्न देह - प्राचीर;
जड़ बन जाते देव, असुर पर कुण्ठित होते मन्त्र।
ईश्वर लुप्त, सुप्त, तज भू पर मुक्त आसुरी तन्त्र।

अनाचार अवलोक अवनि पर असुरों के निर्बाध,
मृग - मरीचिका - सी लगती है आत्म-तत्व की साध,
ज्वालामुखियों के तर्पण - सा लगता धर्माचार,
गगन - कुसुम - सा मोक्ष दीखता, सार यही संसार।

तपोधनी मुनि वृन्द अनेकों नित असहाय समान
दीन - हीन सहते असुरों के त्रास, घात, अपमान,
हो असमर्थ आत्मरक्षा में अर्पण करते देह,
धर्म, कर्म, व्रत की रक्षा मे देख भीति सन्देह।

कितने योगी यती सृष्टि का लखकर उपसंहार,
जान असुर के उत्पातों का एक मात्र प्रतिकार,
अन्त्य समाधि-सिद्धि से करके विलय प्रकृति में प्राण,
स्थाणु-कल्प होगये, ब्रह्म में होकर अन्तर्धान।

कितनी तापस-कन्यायें हो भय से अति अभिभूत
सिद्ध धारणा की वेदी से करके अग्नि प्रसूत,
हुईं सती के तुल्य धर्म की वेदी पर बलिदान;
हुये विरुद्ध विकल्प विश्व में आज धर्म औ प्राण।

मुनि-कन्याओं को दुष्कर है आश्रम में परिचार,
सूख रहे तरु-पशु आश्रम के पा न उचित सत्कार,
वन-बाला-सी पलीं प्रकृति में कर स्वच्छन्द विहार,
आज असूर्यंपश्यायें वे बनी बन्द कर द्वार।

उजड़ रहे उपवन आश्रम के, सूख रहे उद्यान;
भस्म कर रहा तपोवनों को भय दावाग्नि समान,
कर्दम मय हो रहा मनोहर स्नान-सरों का नीर,
कमल हुये उच्छिन्न, सरों के भ्रष्ट हो रहे तीर।

जटाजूट-से होमधूम की शिखा दूर कर लक्ष्य,
दौड़ टूटते असुर, हिंस्र पशु यथा देख निज भक्ष्य,
धर्म-कर्म हो गया कठिन औ दुष्कर जप, तप, याग,
आज ज्ञानियों को विराग से भी हो रहा विराग

मनुज लोक मे आज मिट रहे सभी धर्म संस्कार
शेष रह गये पशु जीवन के धर्म और व्यापार
एक धर्म रह गया किसी विध बेच धर्म औ मान
जीवन का निर्वाह, बचा कर अपने दुर्लभ प्राण।

मानवीय गुण भूषण सारे असुर ले गये छीन,
मनुज रह गया केवल पशुवत् मानवता से हीन,
मुनि – वासों में शेष रहा कुछ दबी आग का अंश
कर सकता है कभी नाथ! वह असुरों का विध्वंस!

देवलोक की दशा देखकर नीचा होता माथ,
हुये सभी वैभव विलीन हैं धर्म कीर्ति के साथ,
हो निराश तव शरण पधारे पराक्रमी सुरनाथ,
अकथनीय हैं प्रभो! असुर के उत्पातों की गाथ।

असुर – अनी से करके रण में युद्ध अनेकों बार,
दिव्य देवसेना विक्रम कर चुकी सभी विधि हार;
देव और दिग्पालों से सब चिर वैभव के रत्न
छीन, कर रहा असुर दासता के शासन का यत्न।

उच्चैःश्रवा सहित ऐरावत अर्पित कर सुरराज
अलंकारवत् वज्र विकुण्ठित लिये खड़े ये आज,
अमरावती पुरी उजड़ी – सी सूनी पड़ी विशाल
विवश वन्दिनी सदृश शची भी काट रही गिन काल।

वरुण भेंट कर दिव्य अश्व निज त्याग आत्म विश्वास
लिये कुण्डलित फणि-सा कर मे आत्मकण्ठ का पाश;
उजड़ गई अलका, कुबेर ने अर्पित कर निज कोष,
गदा सहित कर लिया रंक की पदवी से सन्तोष।

यम ने रत्न – दण्ड अर्पित कर छोड़ नियम निर्वाह,
होकर विवश अराजकता से, शासन का उत्साह
त्याग दिया, नर हेतु खोलकर संयमिनी का द्वार
असुरों ने ले लिया धरा पर यम दूतों का भार।

अमुरों का आतंक छा रहा बन रवि का नीहार
शोणितपुर में सूर्य न सकता किरणें मुक्त पसार,
जितने से बस असुर सरों में होता कमलोन्मेष
केवल उतना ही करता है तप - विस्तार दिनेश।

अखिल कलाओं से करता है सेवा नित राकेश,
केवल शिव की शेखर मणि-सी एक कला है शेष,
निशाचरों के दुष्कृत्यों में करता पूर्ण प्रकाश,
शोणितपुर मे सुधा - वृष्टि का है केवल अवकाश।

फूलों की चोरी के भय से गति-अवरुद्ध समीर,
मन्द मन्द शीतल बहता है मानों धरे उशीर,
असुरों के भय से प्रहरी - सा रक्षित कर उद्यान
व्यजन - वायु से अधिक न गति से बह सकता पवमान।

मानों उस अजेय तारक का हुआ काल भी दास,
विपर्यस्त - सा हुआ काल-क्रम, ऋतुओं का विन्यास,
फूलों के संचय मे तत्पर छोड़ काल पर्याय,
हुआ सतत उद्यान-पाल - सा ऋतुओं का समवाय।

सरिताओं के मिस असुरों से लेता जीवन दान
अमुरराज के हित रत्नों का करता नित निर्माण,
असुरों के धोता पद सागर निज मर्यादा छोड़
अन्तस्ताप दग्ध बड़वा - सा करता करुणिम क्रोड़।

स्थिर प्रदीप - सी उज्ज्वल मणियाँ करके भेंट ललाम,
वासुकि प्रभृति भुजंग निशा मे नित असुरों के धाम
आलोकित करते, सेवक - से उन्नत भोग पसार
मणिस्खलन के भय कर सकते तनिक न फण-संचार।

कल्पद्रुम के कल्पित भूषण कितने बारम्बार
भेज दूत द्वारा, तारक का कर बहुविध सत्कार,
इन्द्र चाहते दुष्ट असुर को करना निज अनुकूल
सदा अपेक्षा अनुग्रहों की करते गौरव भूल।

इस प्रकार आराधन से भी होता असुर न तुष्ट,
शुश्रूषा से नहीं, शक्ति से सीधे होते दुष्ट,
दुर्बलता के दण्ड सदृश कर ग्रहण सभी उपहार
कर अनन्त उत्पात कर रहा अगणित अत्याचार।

देव - लोक का सब सुख वैभव हुआ स्वप्न - सा लीन,
सत्व - विभव - पद - वंचित होकर हुये देवता दीन;
भूल सभी बल - विक्रम अपना और विहार - विलास
सेवा करते सब बन्दी - से बन असुरों के दास।

धर अधरों पर अमृत, कण्ठ में कल्पकुसुम के हार
नन्दन वन के कामकुंज में करते मुक्त विहार,
वे बन्दी सुर - वृन्द विनत - मुख असुरों के आधीन
उनकी पद सेवा में रहते विवश अहर्निश लीन।

विवश वन्दिनी सुर बालायें दबीं भीति के भार,
लेकर चामर - व्यजन कुसुम मे हाथों में सुकुमार,
रोक हृदय - निश्वास नयन मे भरकर निश्चल नीर
निद्रालीन असुर - पतियों पर करती मन्द समीर।

देवों का प्रिय सखा, इन्द्र का अनुग्रहीत अनंग
होकर सज्जित नित सन्ध्या मे रतिवन्ती के संग,
असुरों की प्रकाम परिचर्या करने विविध प्रकार
जाता है त्रिभुवन का करने कुछ अलक्ष्य उपकार।

हुआ अमृत सेवी देवों का जो हालाहल काम
शोणितपायी असुरों को वह हुआ अमृत अभिराम,
यौवन – रूप – शिखा में देकर रक्त – मांस का हव्य
करते असुर नित्य संवर्धित शक्ति, तेज, बल नव्य।

अमरावती बनी अमरों के हित ही कारागार,
लेकर शरण स्वयं बन्दी हो और बन्दकर द्वार,
निर्वासित से काट रहे दिन सुर गण किसी प्रकार
भूल गये नन्दन उपवन के वे स्वच्छन्द विहार।

आर्द्र दृगों से निज दयितों की दशा निहार निहार,
देव बालिकायें विरागिनी त्याग सभी शृङ्गार,
आँसू की मुक्तामाला से पलकों में ही मौन
मुक्ति हेतु कर रही निरन्तर निभृत मन्त्र जप कौन।

अन्तरिक्ष मे भी असुरों के उत्पातों की भीति,
कुण्ठित कर देती देवों की भुवनालोकन प्रीति,
मुक्त खगों – से अन्तरिक्ष मे भरते नित्य उड़ान
छिन्न – पक्ष पक्षी से निश्चल रहते आज विमान।

नन्दन वन के वीथि मार्ग वे जिनमें अगणित बार
देव – मिथुन करते थे निर्भय मनमानी मनुहार;
कामद कानन के सौरभमय सुन्दर क्रीड़ा कुञ्ज
चिर यौवन आनन्द भोगते जिनमे निर्जर – पुञ्ज;

मुक्त मरालों से करते थे जिनमे वारि निहार
देव – मिथुन, नन्दन कानन के वे कुसुमित कासार;
शून्य हुये, मानों सुरपुर को गये देवता त्याग
अथवा सहसा हुआ भोग से उनको पूर्ण विराग।

यदि किन्नर गन्धर्व कदाचित् कोई कहीं अजान
प्रकृति विवश निश्वास सदृश भी भर उठता था तान,
हो जाती यदि सहसा पद से नूपुर की झनकार
सिद्ध प्रेत से प्रकट वहीं पर होते असुर हजार।

यदि किन्नर कुमारियाँ कोई देख शान्ति अनुकूल,
बन्धन की व्याकुलता से सब पिछले अनुभव भूल,
आ जातीं क्षण भर को करने सर मे वारि विहार
करते त्रसित प्रकट मकरों – से हो वे महदाकार।

यदि गन्धर्व – मिथुन भोले – से कोई किसी प्रकार,
आजाते अनजान विपिन मे करने सान्ध्य विहार,
तो स्वामी को बांध वृक्ष से पशु – सा परवश दीन
ले जाते नृशंस बाला को निर्यातन हित छीन।

कहीं दूर से यदि विलोकते कोई रूप ललाम,
तो हो उठते भूखे पशु – से असुर वृन्द उद्दाम;
हो उन्मत्त दूर से ही कुछ कर उठते किलकार,
असुर - रागिनी – सी अलापते कुछ सुधि सर्व विसार।

किन्नर औ गन्धर्व गणों के नहीं सुरक्षित वास,
नित्य असुर उन्मद देते हैं उन्हें विविध विध त्रास,
कन्याओं की लाज, कुलों के मर्यादा औ मान
हरते बल से दुष्ट दिखाकर छल बल का अभिमान।

सुनकर कन्याओं का आतुर करुणा पूर्ण विलाप
देख देव, किन्नर, गन्धर्वों का दारुण सन्ताप,
स्वर्ग नरक – निर्यातन – सम है और अमरता शाप।
हुये उदय किन किन जन्मों के आनिसर्ग सब पाप।

अस्तु त्रिलोक त्रस्त है उसके उत्पातों से हाय!
असुर - विजय के हुये हमारे असफल सभी उपाय,
जैसे सन्निपात ज्वर में जब बढ़े त्रिदोष विकार
सारवती औषधियाँ भी सब हो जाती निस्सार।

अन्तिम आशा - बिन्दु विजय का रहा सुदर्शन चक्र,
कर न सका उसकी गति को था अब तक कोई वक्र,
उठा पूर्ण प्रतिघात शिखा की उज्ज्वल चक्रिम ज्वाल,
बना कुसुम सुकुमार कण्ठ में तारक की जयमाल।

कर सब व्यर्थ उपाय सभी विध होकर पूर्ण हताश,
आये नाथ! समीप आपके लेकर अन्तिम आश;
सेनानी का एक आपसे लेने को वरदान,
सुरसेना का करे वीर जो अन्तिम विजय प्रयाण।

कर संगठित देव सेना मे भर नूतन उत्साह,
करे नयन जो अन्तिम उसका विजय गर्व की राह,
जिसे पुरस्कृत कर शोणितपुर जीते देव समाज,
असुर - वन्दिनी जय - लक्ष्मी को ले लौटें सुरराज।"

वाचस्पति के वचन - स्रोत का होने पर अवसान,
संजीवनी अमृत - वाणी से बोले तब भगवान,
ज्यों मयूर के मन्द्रघोष से होकर द्रवित तुरन्त
सरस और गम्भीर नाद से बरसें चतुर्दिगन्त।

"मेरे ही वर के प्रभाव से असुर हुआ दुर्जेय,
तप की शन्ति हेतु ईश्वर को है कुछ नहीं अदेय,
कर उदग्र तप असुर मेंटता तीन लोक का नाम
वर ने शान्त कर दिया जैसे मुक्त भोग से काम।

सेनानी की वत्स! तुम्हारी यह आकुल अभिलाष,
होगी पूर्ण अवश्य, न तुमको होना उचित निराश,
किन्तु न उसके सम्भव हित मम उचित सर्ग व्यापार
केवल सर्ग क्रिया में सम्भव नहीं वत्स! प्रतिकार।

और विष्णु भी पालन में रत सीमित इसी प्रकार,
कर सकते हैं केवल शिव ही दुष्टों का संहार,
बस कुमार को छोड़ न कोई श्रीशंकर से जन्य
कर सकता दुर्धर्ष असुर का अभिभव रण में अन्य।

आदि शक्ति का पुण्य पार्वती अवनी पर अवतार,
वही तेज को श्रीशंकर के सकती केवल धार,
शक्ति और शिव के संगम से सम्भव दिव्य कुमार
कर सकता बनकर सेनानी तारक का संहार।

वत्स! तुम्हारी दुर्बलता है केवल नित्य विलास,
तप - संयम के बिना शक्ति का होता निश्चय ह्रास;
बिना शक्ति के शिव रक्षा में शिव भी नहीं समर्थ
बिना शक्ति - साधन असुरों से संगर करना व्यर्थ।-

तपःपूत शिव - शक्ति बीज से ही उत्पन्न कुमार,
कर सकता है असुर ताप से भुवनों का उद्धार,
अतः पार्वती के प्रति शिव का जाग्रत कर अनुराग
करो सिद्ध निज इष्ट, चित्त से दुर्बलता सब त्याग।"

उत्सुक देवों को आशा - सा देकर यह वरदान,
नभ - वाणी के तुल्य हो गये ब्रह्मा अन्तर्धान,
कर मन में कर्त्तव्य समाहित ले उत्साह नवीन
आये अपने धाम देवता साधन - चिन्ता - लीन।

बैठे थे निज राजभवन में देवराज एकाकी,
विनत भ्रुवों - सी घिरी भाल पर रेखायें चिन्ता की,
असमंजस - सा मौन अनिश्चित था आनन पर छाया,
कौन कल्पना - सूत्र अलक्षित मन में सूक्ष्म समाया।

ब्रह्मा का वरदान स्मरण से था मन पुलकित करता,
दुष्करता से कार्य चित्त में बहु चिन्तायें भरता;
इस प्रकार द्विविधा में आकुल थे सुरराज विचारे
दिग्भ्रम में ध्रुव - तुल्य भवन में तब आचार्य पधारे।

उठ आसन से जोड़ युगल कर गुरु को शीश झुकाया,
अधिक समादर सहित निकट ही आसन पर बैठाया;
रह कर कुछ क्षण मौन यत्न से अधर इन्द्र ने खोले —
'क्या आदेश आपका अन्तिम"? वचन कथंचित् बोले।

चक्रवात मे शान्त वृष्टि - सी उर - नभ निर्मल करती,
उद्वेजित अन्तर में श्रद्धा शीतलता - सी भरती;
शान्त, धीर, गम्भीर भाव से गौरवमय कल्याणी
बोले अभिमुख हो सुरपति से गुरु वाचस्पति वाणी —

'राजन्! सेवा - कुशल आपके चर अद्भुत कौशल से,
बचकर असुरों के बन्धन से ज्ञान, युक्ति, गति, छल से।
मरुत - अप्सरा - गण युगपत् ही समाचार यह लाये
तप कर रहे अखण्ड शैल पर शम्भु समाधि लगाये।

पिता हिमाचल के निदेश से नित पार्वती पुनीता,
सेवा औ उपवास कर रही, किन्तु काल बहु बीता,
शिव का तन्मय तेज, भक्तियुत गिरिजा की धृति भारी,
संग गणों की आकुलता के बढ़ते बारी बारी।

अनायास गुरु कार्य न होते यही समझ मैं पाया,
साधन का संकेत आपको करने केवल आया,
अयस्कान्त से हो सकता है आकर्षित जड़ लोहा,
किन्तु आत्मवश योगी का मन कब माया ने मोहा।

केवल एक उपाय दृष्टि में आता प्रभो! हमारी,
कर सकता कुछ कार्य युक्ति से काम कामगति-चारी;"
इतना कह गुरु गये, इन्द्र को छोड़ विविक्त भवन में,
किया मदन का स्मरण इन्द्र ने आतुरता से मन में।

मनोवेग से शीघ्र मनोभव मानों मन से आया,
होकर प्रस्तुत कामदेव ने सविनय शीश झुकाया,
कर सहस्र दृग से अभिनन्दन अन्तर के आदर से
आसन का संकेत इन्द्र ने किया समुत्सुक कर से।

आदर, स्नेह, कृपा देते हैं अवसर पर ही स्वामी,
प्रभुओं का प्रसाद होता है सदा प्रयोजन गामी,
उससे ही कृतकृत्य भृत्य हो, सेवा पर बलि जाते;
बोला काम कृतार्थ मान से गर्वित शीश झुकाते —

"पूर्व अनुग्रह प्रभो! आपके कर आवृत्त स्मरण में;
सेवा का उत्साह निरन्तर उनके सम्वर्द्धन मे,
अहोभाग्य विश्वास - कृपा का हुआ पुनः मैं भाजन
आज्ञा हो, क्या कार्य आपका करूँ आज मैं राजन्!

विदित आपको पूर्व काल के मेरे विक्रम सारे,
मेरे बल से नाथ! निरन्तर सुर, नर, मुनि सब हारे,
मेरे विक्रम - कीर्ति सदा से काव्य - शास्त्र सब कहते,
कौन आपका कार्य असाधित प्रभो! काम के रहते?

धर्म आपका रत्न – दण्ड – धर सेवक चिर अनुगामी
करता है त्रिभुवन में नय की कठिन व्यवस्था स्वामी !
संयमिनी के शासन – भय से नर – मुनि तप – व्रत करते,
अज्ञानी नर – असुर अन्त में धर्म – कर्म – फल भरते।

असुर – विजय की जय-लक्ष्मी – सी शची सुभग कल्याणी,
करती सेवा स्नेह – सुरति से अमर लोक की रानी;
नित्य नवीन विलास मोद के साधन श्रेष्ठ सजाती,
काम – प्रसाद हेतु अप्सरियाँ गीत मनोहर गाती।

कामधेनु औ कल्पद्रुम से रत्न आपने पाये,
काम कल्पना से जो देते सब पदार्थ मन भाये,
उच्चैःश्रवा और ऐरावत वाहन दिव्य भुवन में,
अलकापति का कोष समुद्यत सदा इष्ट साधन में।

काम – प्रसाधन काम आपका करता नित तन – मन से,
होती रति कृतार्थ नित रति के रंजित आराधन से,
सुर, नर, असुर तीन लोकों मे ऐसी कौन कुमारी,
होती जो न आपकी रति पर अन्तर से बलिहारी।

अर्थ कौन सा काम्य आपके लिये नाथ ! त्रिभुवन में !
कौन कार्य दुःसाध्य आपके सहज कामना – क्षण में !!
धर्म, अर्थ औ काम समाहित जिसके चिर जीवन में,
होती सहज समागत उसके मुक्ति सदेह चरण में।

तप – वैभव – सा प्रभो ! आपने यह उत्तम पद पाया,
ऋषि मुनियों को सदा विमोहित करती जिसकी माया,
सुख वैभव की चरम कल्पना मानवता – के मन की,
हुई स्वर्ग में सत्य आपके, बन सीमा साधन की।

वृत्र, पुलोमा, पाक आदि बहु असुर आपने जीते,
वज्र अमोघ आपका करता सदा सभी मन चीते,
कौन अकल्प्य कामना सहसा मेरे आज स्मरण में
उदित हुई प्रभु ! पूर्ण काम भी आज आपके मन में?

यदि कोई राजर्षि यज्ञ औ गुरु तप के अभ्यासी,
हुये आपके दुर्लभ पद के वैभव के अभिलाषी;
तो यह मेरा पुष्पबाण ही प्रभो ! एक ही क्षण में
उनको तप से स्खलित करेगा कर प्रहर्ष तव मन में।

धर्म, अर्थ औ काम मोक्ष का साधन कोई प्राणी,
कर सकता बन शत्रु आपका क्या नितान्त अज्ञानी,
बिना आपके आराधन के कोई ऋषि मुनि ज्ञानी
कभी सिद्धि में सफल हो सका तपव्रत का अभिमानी।

कौन आपके आराधन के बिना त्रिदिव के स्वामी!
हुआ पुनर्भव की पीड़ा से मुक्ति मार्ग का कामी,
तो उसको चिर बद्ध करूँ मैं नाथ एक ही क्षण मे,
सुन्दरियों के दृष्टिपाश के मृदु अभेद्य बन्धन मे।

देवराज का समुचित विधि से बिना किये आराधन,
कौन कर रहा मूढ़ विश्व मे धर्म, अर्थ का साधन;
शुक्र नीति से भी शासित वह, मेरे नय के बल से
होगा नदी तटों-सा खण्डित नाथ! प्रवाह प्रबल से।

और काम के अनुचर रहते कौन नाथ! त्रिभुवन में,
कर सकता है काम-कामना अपने मानी मन मे,
प्रथम-राग-सी बिना आपकी प्रीति-प्रतीति दिखाये;
प्रभो! आपकी अनुकम्पा में इष्ट समस्त समाये।

विश्वामित्र आदि कितने मुनि ईर्ष्या कर इस पद की
मग्न हुये बुद्बुद् – से लहरों मध्य काम के नद की,
होकर इससे भीत न जाने मात्र मोक्ष के कामी,
कितने मुनि तज स्वर्ग कामना हैं शुक के अनुगामी।

नाथ! आपके ही प्रसाद से ले कुसुमायुध कर मे
केवल रति – मधु – सहित करूँ मैं विजय त्रिलोक प्रहर में,
अन्य धन्वियों संग समर है मेरी कौतुक खेला,
करूँ पिनाकपाणि हर को भी विचलित नाथ! अकेला।"

सुन मनोज के वचन मनोरम ओज पूर्ण गर्वीले
वाञ्छित विषय विशेष देश मे साहस युक्त हठीले,
नये ओज – उत्साह इन्द्र के उर में सहसा जागे,
हुआ सहज साकार भविष्यत भव्य दृगों के आगे।

उरु से उठा सबल दक्षिण पद पाद – पीठ पर टेका,
बोले हर्षित वचन व्योम में गूँज उठी ज्यों केका,
अखिल सभा मे एक अनोखी उत्सुकता – सी छाई,
म्लान – मुखों में दी आशा की रेखा सहज दिखाई —

"सखे! तुम्हारे पूर्व – पराक्रम हमें विदित हैं सारे,
ऋषि, मुनि, नर, सुर, असुर सभी नित मन में तुमसे हारे,
वज्र और तुम साधित करते कांक्षा सकल हमारी।
वज्र विकुण्ठित मुनियों पर, गति पर निर्बाध तुम्हारी,

तुमसे बढ़ कर कौन हमारा है मनोज हितकारी,
सखे! तुम्हारे लिये विश्व में कोई कार्य न भारी,
आज परीक्षक बन कर आया आपत्काल हमारा,
होकर सफल कृतार्थ बनोगे, है विश्वास तुम्हारा।

आज होगया स्वतः सिद्ध यह तुम हो अन्तर्यामी,
अभी पिनाकपाणि शूली पर सखे! मनोगति गामी
पुष्पबाण की गति - क्षमता के विज्ञापन के द्वारा
किया स्वयं स्वीकार कठिन भी तुमने कार्य हमारा।

कार्य सिद्ध कर सखे! हमारा हित तुम अमित करोगे,
किन्तु साथ ही तुम त्रिलोक की विपदा विषम हरोगे,
होंगे नित्य कृतज्ञ तुम्हारे ऋषि, मुनि, सुर, नर सारे,
होंगे मुक्त दुष्ट सेवा से तुम भी संग हमारे।

तुम्हें विदित है त्रस्त कर रहा तारक ज्यों त्रिभुवन को,
किया कलंकित, दलित सुरों के गौरवमय जीवन को,
बार बार कर युद्ध असुर से बन्धु! देवगण हारे,
बन्दी बन तारक की सेवा करते विवश बिचारे।

स्वयं स्वयंभू से वर पाकर वह दुर्जय बना है,
वह निर्बाध उपद्रव करता नित्य अभीत - मना है,
अतः प्राप्त कर ब्रह्मा से वर अभी देवगण आये,
एक अपूर्व यत्न मे हमने पूर्ण मनोरथ पाये।

भव के दिव्य तेज से सम्भव तेजस्वी सेनानी,
पाकर होगी विजय - गामिनी सुर - सेना कल्याणी;
नहीं किसी से सम्भव है यह दुष्कर कार्य सुरों का,
एक मनोभव कर सकता है इष्ट समस्त उरों का।

ब्रह्मा का निदेश है केवल एक हिमाद्रि कुमारी
तपस्तेज से पूत शक्ति युत, (अन्य न कोई नारी)
है समर्थ औ शम्भु - तेज के धारण की अधिकारी,
कर सकती है वही निवारण विपद् समस्त हमारी।

सुना अप्सराओं के मुख से हमने वह गिरिबाला
लिये हृदय में तपोयोग की अक्षमती जयमाला,
पितृ नियोग से दीर्घ काल से लिये कामना वर की,
परिचर्या कर रही स्थाणु – से समाधिस्थ शंकर की।

सखे! विश्वजित् कामदेव – से वीर बन्धु के रहते,
रहे देव अपमान अनेकों व्यर्थ आज तक सहते,
देव कार्य के हेतु शीघ्र तुम करो प्रयाण प्रतापी,
कार्य सिद्ध हों, देव मुक्त हों, नष्ट असुर हों पापी।

है त्रिलोक का कार्य यदपि हैं याचक बन्धु हमारे,
होंगे नित्य कृतज्ञ देव, ऋषि, मुनि, नर किन्नर सारे,
देवों की जय और तुम्हारा यश त्रिलोक मे होगा,
होगा जय से पूर्ण हीन जो भोग सुरों ने भोगा।

वीर विश्वजित्! स्वयं विजय-सी रति सहचरी तुम्हारी,
और सखा मधु नित्य तुम्हारा विक्रम – सा सहकारी,
तेज नित्य निर्बाध हव्य औ पवन समृद्ध अनल – सा
बन्धु! तुम्हारा विजय गमन हो पूर्व कार्य से फल–सा।"

सुनकर इन्द्र निदेश गर्व से पुलके अंग मदन के,
हुआ प्रकट उत्साह ओज से उसके दर्प–वचन के,
"नाथ! धर्म का यशोगान है नभ–मण्डल में छाया,
और अर्थ की कीर्ति विश्व की मनोमोहिनी माया;

मोक्ष अनिवर्चनीय, विपुल पर उसके गान वचन में,
वाणी मे हैं मुक्त अन्यथा जो निबद्ध बन्धन में;
किन्तु काम की तो कृतार्थता – केवल कृति मे स्वामी
अतः विलज्जित अधिक वचन मे प्रभु का चिर अनुगामी।"

विनत शीष से कण्ठ – हार – सा सादर वृत्र-दमन का
करके ग्रहण निदेश, काम ने माँगा मान गमन का,
ऐरावत के चिर ताड़न से कर्कश उन्नत कर से
अंग स्पर्श कर विदा काम को दी प्रहृष्ट अन्तर से।

ले छाया – सी संग रतिमती सखी सहचरी प्यारी,
औ मधु-सा प्रिय सखा संग ले अपना चिर सहकारी,
कर तनु भी बलि देव-कार्य की पूर्ण-सिद्धि का कामी,
हर आश्रम को चला दर्प मे काम मनोगति – गामी।

मूर्त्त कल्पनाओं – सी रंजित दर्प भरे यौवन की,
रुचिर कामना – सी आशा के राग भरे जीवन की;
ज्यों राका में दीप्त स्रोत की चंचल बाल लहरियाँ
सोम संग, त्यों चली काम के संग अयुत अप्सरियाँ।

जिनके भ्रू विलास पर होते इन्द्र – धनुष बलिहारी,
अप्सरियों की ले अनीकिनी कुसुमित कार्मुक – धारी,
सेनापति–मन्त्री – से मधु – रति – संग मनोगति – गामी,
चढ़ा सशंकित काम शिखर पर शम्भु–विजय का कामी।

संयमियों, विरक्त मुनियों के तप – समाधि-साधन में
बाधक निज प्रतिकूल प्रकृति से, उस पर्वत कानन में
वीर मनोभव के प्रभाव के पूर्व – भाव – सा छाया,
कर वसन्त विस्तीर्ण रसमयी अपनी मोहन माया।

हिमगिरि के हेमन्त – शीत में मधुर उष्णता भरता,
कानन के स्वच्छन्द पवन को नर्म – मर्म – मय करता,
चिर अनुसृत निज मकर – अंक का बन कर पुरःप्रगामी,
त्याग दक्षिण दिशा बना रवि दिशा उत्तरा गामी।

समय अतिक्रम कर प्रिय रवि के दूर गमन से दीना,
भरती विरहोच्छ्वास अनिल मे दिग् दक्षिणा मलीना,
हिम विजड़ित नर्मद बन जीवन स्पर्श – सहन सुखकारी
फूट चला मधु – रस – स्रोतों में मधुर कामगति–चारी।

किस रस से संजीवित होकर जगी प्रकृति पाषाणी,
संवेदन से हुये समुत्सुक जग के आकुल प्राणी,
पंचतत्व के त्रिगुण – विनिर्मित रस से अंचित जग में,
शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में जगा राग रग–रग में।

इन्द्रधनुष के सप्त रंग के बहु विध सम्मेलन मे
वाणी के शुचि सप्त स्वरों के अयुत रूप – बन्धन में,
सरस राग बस एक अलक्षित आत्मा-सा था छाया,
फैल रही थी लक्ष रूप मे उसकी मोहन माया।

नव प्रवाल के पत्र – पुञ्ज से संयुत शोभा वाले,
मदन वाण – सी मंजरियों से पूर्ण नवीन निराले
अस्त्रागार समान काम के बने रसाल रसीले,
अस्त्रों की झंकार सदृश थे गुञ्जित भ्रमर हठीले।

किन्नरियों के नूपुर – शिञ्जित गुञ्जित मृदु चरणों के
दूर स्पर्श संकेत मात्र से, गिरि के नग्न वनों के
अखिल अशोक पल्लवित होकर पुष्प राशि से फूले.
पाकर नयन प्रसाद शोक सब जग के प्राणी भूले।

नवल अप्सरा बालाओं के सस्मित आलोकन से
होते कुरबक कुसुम वनों मे विकसित नव यौवन से,
क्रीड़ामयी कुमारी – कुल की लीलागति से हिलती
स्मिति-लतिका–सी डाल तिलक की कलिकाओं से खिलती।

फहर रही थी दृग - अंचल में चंचल मीन - पताका,
फैल रही थी गिरि कानन मे वासन्ती मधुराका,
अभिसारों के संकेतों का अन्वेषण - सा करतीं
कुसुमित कुञ्जों में दूती - सी किरणें कान्त विचरतीं।

शिशिर - शीत से भीत धरा के गर्भ-अंक में सोते,
यौवन के उद्‌गम - अंकों - से बीज अंकुरित होते,
नव वसन्त के मधुर पवन के मृदु नर्मद स्पर्शन से
रोमांचित हो उठी धरा भी किस रस - संवेदन मे।

जड़ पर्वत भी हो सजीव - से सरस- राग-रंजित - से
पल्लव दल के दीर्घ दृगों से देख रहे विस्मित - से
कुसुमोद्‌गम से रुचिर कान्तिमय शोभित रम्य वनानी;
वासक-सज्जित प्रकृति कर रही किस प्रिय की अगवानी।

लीन कुलीन कामिनी - सी निज गृह के अन्तःपुर मे,
आम्र-कुञ्ज मे छिपी कोकिला ढाल प्राण - से सुर मे,
पंचम स्वर मे कण्ठ चीर कर गीत प्रेम के गाती,
निभृत पंचशर कामिनियों के उर मे सहज जगाती।

कुसुमित कुञ्जों को गुञ्जित कर पुञ्जित भ्रमर हठीले,
झूम रहे थे मद से उन्मद तरुणों - से गर्वीले,
सरस काम - सन्देश हृदय में नव पुष्पों के धरते,
जीवन के सौन्दर्य - सर्ग के गान पवन मे भरते।

कर्ण - मूल मे मृदु शिरीष के कर्ण-फूल रुचि धारे,
औ मयूर की वर वेणी मे चित्र - प्रसून सँवारे,
धार तिलक का तिलक भाल पर, शोभा से गर्वीले
कुसुमों के आभरण अंग में धार विचित्र सजीले

भ्रमराकुल इन्दीवर – दृग से, मुग्ध रूप से अपने,
करती नयन – प्रसाद, दृगों में रचती रंजित सपने,
कर आन्दोलित उर, निर्झर के मुक्ताहार हिलाती,
भ्रमरों के नूपुर नि.स्वन से भाव प्रसुप्त जगाती,

कुसुमोद्गम से कान्तिमती रूचि-रूप – ज्योति से स्नाता
विकसित यौवन के वैभव से विस्मित – सी अभिजाता,
यवांकुरों – सी आपाण्डुर – मुख, कुसुमों में मुसकाती,
नव वसन्त की श्री हृदयों को रूप – विमुग्ध बनाती।

रस से संप्लुत प्रकृति हो रही स्नेह-सृजन मे लीना,
गुञ्जित मन्द पवन के स्वर मे मधुर काम की वीणा,
कुसुम-गन्ध से पूर्ण गन्ध-वह के मृदु मन्द चरण मे,
उमड़ रहा रस – स्रोत उमंगे भरता सबके मन मे।

हुये अचेतन भी चेतन – से उत्सुक संवेदन से,
चंचल हुये चेतनों के मन – नयन काम – केतन – से,
पुष्प – बाण ले रतिवन्ती के सहित मदन जब आया,
द्वन्द्वों की अनुभाव क्रिया में प्रकटी रस की माया।

एक पात्र में मधुर कुसुम के मधुप – मिथुन मधु पीते,
झूम झूम कर मुक्त पवन मे करते सम्पुट रीते,
घोल रही रस के संजीवन स्वर अज्ञात श्रवण में
गूँज रही रस – पूर्ण रागिनी उनके मधु-गुञ्जन में।

मर्म स्पर्श से मीलित - नयनी हरिणी वाम – नयन मे,
मृदुल शृंग से कृष्णसार के कोमल कण्डूयन मे,
जीवन का रस – भाव प्रकृति के पट पर अंकित करती
जीवन की रसमयी कला के भाव हृदय में भरती।

अर्ध – निमीलित – नयन द्वार पर बैठे गिरि – गह्वर के
सहला रही सिंह के केसर कोमल कण्डू करके
वाम – नयन से मुग्ध सिंहिनी सालस जृम्भा – शीला,
करती थी अव्यक्त भाव से व्यक्त प्रणय की लीला।

उन्मद शिखर समान निकल कर पर्वत के कानन से
गज औ करिणी क्रीड़ा करते सर मे मोहित मन से,
कमल – रेणु-रंजित जल देती करिणी गज के मुख मे,
तोड़ शुण्ड से कमल प्रिया को देता गज रत सुख मे।

चपल तरंगों मे सरितायें हृदय – उमंगे भरतीं,
शैलों के उन्नत वक्षों का स्नेहालिंगन करतीं,
तन्वंगी लतिकायें चंचल वधुओं तुल्य नवेली,
लिपट तरुण तरुओं से करती यौवन की अठखेली।

मधुर स्नेह – संगीत - स्रोत की लहरों मे लहराते,
नृत्य निरत गन्धर्व – मिथुन थे तन्मय होकर गाते;
नर्तन – मुद्रा मे आलम्बित प्रेमालिंगन करते,
आलापों के बीच परस्पर अधर – बिचुम्बन करते।

अन्तरिक्ष विह्वल था सौरभ – रस – स्वर के प्लावन में,
आन्दोलन हो उठा तपोरत मुनियों के भी मन में,
उस अकाल मधु के प्रवेग से पूर्ण विलोक प्रकृति को
सके कथंचित् कर प्रयत्न से स्तम्भित मनोविकृति को।

उस रस के विप्लव से आकुल समाधिस्थ शंकर के
गण चंचल हो उठे समुत्सुक लीला – दर्शन करके,
नन्दीश्वर ने किया दूर से वर्जन दृढ़ इंगित से,
संयम से संकुचित हो उठे गण सहसा लज्जित – से।

अप्सरियों के नृत्य गीत की झंकृति को सुनकर भी,
रहे समाधि – लीन शिव, विचलित हुये न वे क्षणभर भी ;
मनस्वियों की ध्रुव समाधि में विघ्न न बाधक होते,
झंझा के आघातों से भी शैल न कम्पित होते।

समाधिस्थ शंकर के मीलित नयन मार्ग भी तजता,
आशंकित – सा काम चरण में भर अपूर्वतम त्वरता ;
आश्रम के सन्निकट कुंज में सघन नाग – केशर के,
होकर सहसा लीन देखता रूप, तेज, तप हर के।

योग भूमिका में ध्रुव निश्चल बैठे वीरासन से
करते कान्ति विकीर्ण तेज की शान्त दीप्त आनन से
भुजंगमों से जटाजूट को उन्नत अविचल बाँधे,
समाधिस्थ थे शम्भु योग की मुद्रा निश्चल साधे।

अन्तर्वायु – निरोध पूर्णतः कर, रत अविरत तप में,
राज रहे निश्चल जलधर – से वातहीन आतप में,
स्तब्ध अनिल मे सुप्रसन्न औ निश्चल निर्मल सर–से
दीपक – से निर्वात अकम्पित आभा से भास्वर – से।

इस प्रकार अविचल समाधि में लीन देख शंकर को,
मन से भी विक्षेप – करण का साहस हुआ न स्मर को,
हुआ समाकुल काम भीति से हो आतंकित मन में,
सन्न हस्त से गिरे चाप – शर किस अविजानित क्षण में।

इसी समय हत–प्राय काम को संजीवित – सा करती
अनुपम रूप – सुधा–से, भय में नव साहस – सा भरती ;
रूप – अर्चना – सी, शंकर की पूजा – हेतु पधारी,
वन – देवी – सी शुचि सखियों से अनुसृत शैल – कुमारी।

बासन्ती कुसुमों से भूषित अंगवती अवदाता,
रूप समष्टि तुल्य जिसको रच हुआ कृतार्थ विधाता;
ऊषा – सी बालारुण वल्कल दिव्य देह में धारे,
रूप – भार से विनत, करों मे लम्बित माल संवारे;

रूप, शील, सौन्दर्य, तेज से अपराजिता अनन्या,
शिव – संराधन – लीन तापसी भूप हिमाचल कन्या,
आश्रम की प्रतिहार भूमि पर ज्यों ही मृदु पद आई,
अन्तर्नयनों मे शंकर के आत्म – ज्योति शुचि आई।

आत्म – लाभ कर सिद्ध योग से विरत हुये योगीश्वर,
जटाजूट औ बाहुमूल के हुये विचंचल फणधर,
स्पन्दित पक्ष्मल पलक हुये औ तारक किंचित डोले,
वीरासन कर शिथिल देह मे प्राण शम्भु ने खोले।

गिरिजा की सखियों ने अपने कर से बीन सजाये,
पल्लव मिश्रित पुष्प शम्भु के चरणों मे बिखराये;
जोड़ पार्वती ने दोनों कर किंचित शीश झुकाया,
पलकों से कर स्पर्श, चरण मे शिर से सुमन चढ़ाया।

'हो अनन्य पति की परिणीता पुण्यवती' कह हर ने,
दिया दिव्य आशीष, कण्ठ का किया समर्थन कर ने;
शिव के सत्य वचन सुन सुन्दर अमृतोपम मनहारी,
पुलकित हुई अधीर हर्ष से विनत हिमाद्रि – कुमारी।

मन्दाकिनी नदी के स्वर्णिम कमल बीज की माला,
अर्पण के हित बढ़ी एक पद तपस्विनी गिरि बाला,
स्रोत अपूर्व भाव के सहसा खुले सशंकित मन मे,
रोम रोम हो उठा पुलक से आकुल कोमल तन में।

पूजा का उपहार प्रेम से गिरिजा की जयमाला
करने ग्रहण, तपस्वी शिव ने ज्यों ही कण्ठ सँम्हाला;
अवसर जान उसी क्षण करके लक्ष्य शम्भु के तनु को,
धर संमोहन वाण काम ने खींचा कुसुमित धनु को।

चन्द्रोदय – आरम्भ – काल में आचंचल सागर – से,
होकर अल्प अधीर प्रभावित किंचित् अविदित स्मर से,
उत्सुक लोचन खोल तरी – से चंचल छवि – सागर मे
हुये प्रवाहित ईश एक पल अद्भुत रूप – प्रसर मे,

पुलकित एक अपूर्व भाव से सहसा शैल कुमारी,
कर संकुचित चारु अंगों को लज्जा से सुकुमारी;
मन्द वायु से साचीकृत – सी देह लता कम्पित – सी,
व्रीड़ा से विभ्रान्त नयन से खड़ी रही विस्मित – सी।

मानस का विक्षोभ यत्न मे निग्रह कर हर धृति से
करने लगे विचार विचंचल मन क्यों हुआ विकृति से!
अन्तर – मध्य अलक्ष्य हेतु का करते बहिरन्वेषण,
किया चतुर्दिक चकित दृष्टि का कौतूहल से प्रेषण,

आकुंचित निज सव्य पादकर खींच धनुष की डोरी,
सव्य अपांग मुष्टि पर धरकर, छिप कर चोरी चोरी
सजग समुद्यत पुष्प वाण का लक्ष्य शम्भु को करने,
वाम – पार्श्व के दारु कुञ्ज में देखा स्मर को हर ने।

हुआ प्रवर्द्धित तेज शम्भु के तप का देख मदन को,
हुये समुद्यत दावानल – से कोमल कुसुम दहन को,
चढ़ी पिनाक सदृश भृकुटी से, खोल तृतीय विलोचन,
प्रलय – ज्वाल – सी योग – वह्नि का सहसा किया विमोचन।

"क्षमा ! क्षमा ! शिव !" मरुद् गणों की वाणी वेध गगन को,
श्रुति – गोचर हो सकी न, तब तक ज्वालालीढ मदन को,
भस्म शेष कर चुकी वह्नि वह निःसृत दृग से हर के;
व्याकुल हुये विमोह – भीति से सुहृद समाहृत स्मर के।

मृदुल लता – सी वज्रपात से भीषण सहसा मारी
तीव्र ज्योति से प्रहृत – दृष्टि – सी रति मूर्च्छित सुकुमारी,
जान सकी न वियोग काम का संज्ञाहीन बिचारी,
विषम काल मे कामिनियों को मूर्च्छा भी हितकारी।

दावानल का दुसह ताप – सा गिरि – कानन मे छाया,
झुलसे कुसुम, लता, तरु; विश्री हुई वसन्ती माया,
हुये विशृंखल जीवों के कुल खेद – ताप से वन मे
होकर शोक निलीन देवता दीन हुये हृत मन में

किंकर्तव्य विमूढ़ भीत से सम्मुख आकर शिव के,
बोले आर्त्त वचन शोकातुर विह्वल वासी दिव के —
"अधिष्ठान है अखिल सृष्टि का मूल काम ही स्वामी
काम आपके ही स्वरूप – सा जग का अन्तर्यामी।

मदन भस्म कर हुये शिवंकर सहसा प्रलयंकारी
बिना काम के रह न सकेगी स्थित यह सृष्टि बिचारी,
बिना काम के हो न सकेगी साध हमारी पूरी,
निष्फल हुई आज गौरी की तप – साधना अधूरी।

देकर जीवन – दान काम को कृपया शंकर स्वामी!
पाणि – ग्रहण उमा का करके जग के अन्तर्यामी;
तारक – वध के हेतु हमारा सृजन करें सेनानी,
हो त्रिलोक की मंगलदाता शिव – संयुक्त भवानी।"

शिव ने कहा देवताओं से "सुनो स्वर्ग के वासी,
आत्म रूप से काम विश्व मे सदा अमर अविनाशी;
जग के मंगल हेतु देह कर उसकी दग्ध विकारी,
तप पूत कर दिया काम को आज अनंग-विहारी।

काम-देह की ही उपासना के सन्तत अनुरागी
हुये सर्वदा अमर हीनता और हानि के भागी;
जब जब चले काम-विग्रह को बना आप सेनानी,
तब तब सदा पराजय रण में असुर दलों से जानी।

काम नहीं, तप है जीवन में मन्त्र महत्तम जय का,
तप से करो शक्ति का साधन, तप ही तन्त्र अभय का,
तप से पूत अनंग काम ही जग का मंगलकारी,
तपःप्रसूत शक्ति पर होती विजय स्वयं बलिहारी।"

कह शिव अन्तर्धान हो गये सहसा किस निर्जन मे,
असमंजस-सा एक अनिश्चित छाया अखिल भुवन में,
सुन शंकर के वचन विलज्जित विस्मित देव विचारे
मदन-दहन से उदासीन मन निज स्वर्लोक सिधारे।

करके संज्ञा प्राप्त विरहिणी रति कुररी-सी रोई,
भस्म-शेष लख देह काम की उसकी आशा खोई;
भर आँखों मे अश्रु अकेली नागिन-सी बिललाती,
खींच धूसरित केश, पीटती कर से विह्वल छाती।

"प्राणनाथ तुम बिना विश्व मे प्राण रखूँगी कैसे,
काम बिना रति, चन्द्र बिना ज्योत्स्ना रजनी में जैसे;
पतिव्रता सहचरी आपकी छाया-सी अनुगामी,
आज वियोग ताप में होगी सती तुम्हारी स्वामी!"

सुनकर रति का रुदन छा गई वन मे घोर उदासी,
करुणा से विद्रवित हो उठे पशु पक्षी वनवासी;
नृत्य विहार छोड़कर उन्मन मृग मयूर एकाकी
शोक लीन थे, मौन हुई ध्वनि पिक – कूजन–केका की।

मदन दहन औ शम्भु गमन से विस्मित औ लज्जित–सी,
वर – कामना पिता की करके स्मरण शोक–मज्जित–सी,
व्यर्थ मान निज रूप और रति, सेवा – आराधन को
लुटे पथिक–सी रह न सकी औ लौट सकी न भवन को।

सखियों के समक्ष लज्जा औ दुख का गोपन करती,
निश्वासों के संग अश्रुओं का संरोधन करती;
नारी के संयम – सागर की मर्यादा – सी धीरा,
सुन कर रति का करुण रुदन वह बोली मृदु गम्भीरा।

"है स्वरूप से अमर सदा ही देवि! तुम्हारा स्वामी,
बन कर आज अनंग हुआ वह जग का अन्तर्यामी;
शोक न करो, करो तप तत्पर योग हेतु रति रानी,
हो तप – पूत बनोगी शाश्वत कामवती कल्याणी।

शिव के तपस्तेज से केवल भस्म हुआ तनु पापी,
होकर किन्तु अनंग विश्व मे काम हो गया व्यापी;
एक रूप व्यापक अनंग को शिव से ही शंकर – सा
मेरे तपोरूप से रति तुम प्राप्त करोगी वर–सा।"

शिव की प्राप्ति हेतु कर तप का निश्चय अपने मन में,
सखियों के संकोच शील से लज्जित तन्वी तन मे;
करती स्मरण मनोज दहन औ सहसा शम्भु गमन को
म्लान मुखी, नत नयन, पार्वती चलदी मौन भवन को।

सर्ग ६

तपस्विनी उमा

पार्वती पितृ - भवन आई लाज से म्रियमाण,
भेंट माता में सुता ने पुनः पाये प्राण;
चुभ रहा था पर सुमन में मर्म वेधक शूल,
कर रही थी श्वास - रोधन काम - तनु की धूल।

स्मरण कर शिव का क्षणिक वह रागमय दृक्पात्,
किन्तु चक्षु तृतीय से वह मदन का तनु-घात,
औ उपेक्षा - पूर्ण तप के हेतु दूर प्रयाण
कर रहा था सतत आकुल पार्वती के प्राण।

स्मरण कर रति का करुणतम स्नेहपूर्ण विलाप,
हो रहा था पार्वती के चित्त को सन्ताप,
देवताओं का स्मरण कर वदन दीन मलीन,
पार्वती रहती निरन्तर मौन चिन्ता - लीन।

और अपने रूप - रति की विफलता कर ध्यान,
नित्य करती रूप का निन्दा सहित बहुमान;
नारियों के रूप का फल प्रेम - पूर्ण सुहाग,
मरण से बढ़कर दयित का त्याग - पूर्ण विराग।

जागते सोते सदा ही वह करुण इतिहास,
पार्वती के चित्त को रखता अतीव उदास;
किन्तु पर्वतराज की कन्या तरुण अभिजात
शान्ति और गम्भीरता से थी सदा अवदात।

पूछती सखियाँ कभी थीं यदि हृदय की बात,
स्नेह से धीरज बँधाती थी कभी यदि मात,
धैर्य औ आशा सहित कर मधुर वार्तालाप
भव्य तपःप्रसंग से थी छिपाती निज ताप।

शरद घन-से आ अचानक एक दिन उस ओर,
कह गये देवर्षि नारद कर कृपा की कोर
नृप हिमाचल से कि "शिव हैं कठिन तप से साध्य,
सिद्धि हेतु अनन्य तप होता सदैव अबाध्य।"

सुन सखी से वह रुचिर देवर्षि का सन्देश,
स्मरण कर शिव का सुरों के प्रति तपो-निर्देश;
मान कर तप को सनातन सिद्धि तट का सेतु
पार्वती मन मे समुद्यत हुई तप के हेतु।

सफलता सौन्दर्य की औ रूप के अनुरूप,
प्रेम, औ पति प्रेम के ही सम अनन्य अनूप।
नही प्राप्य समाधि - तप के बिना, जीवन सार,
सिद्धि मन्त्र समाधि-तप ध्रुव, कठिन और उदार।

सुन सखी के मुख सुता का यह कठोर विचार,
जान कर तप को कठिन औ सुता को सुकुमार,
वक्ष में भर पार्वती को व्यथित मेना मात,
स्नेह ममता से भरे बोली वचन अभिजात।

"देवता करते तुम्हारे भवन में ही वास,
अर्चना तुम करो घर मे पुत्रि! मेरे पास,
यह तुम्हारा तन सुकोमल, तप विशेप कठोर,
सह न सकता मृदु कुसुम हिम तथा आतप घोर।"

'उ मा' कह मा ने किया तप से सप्रेम निषिद्ध,
हुई तब से 'उमा' पद से पार्वती सु-प्रसिद्ध,
स्नेह ममता से भरे औ अमृत तुल्य अमोल
विकल माता से उमा बोली मनोहर बोल —

"माँ! न तप को छोड़ मुझको मार्ग कोई और,
विश्व मे तप साधनों का है सदा सिर-मौर,
निखरती तप से हृदय की निभृत मात भक्ति,
प्राप्त होती सिद्धि की निर्बाध धारणा शक्ति।

विधाता ने किया तप से प्रथम सृष्टि-विधान,
किया मुनियों ने तपस् से सत्य अनुसन्धान,
यज्ञ तप के हव्य से हैं सभी श्रेय प्रसूत
ज्योति से तप की जगत की सत्य-छवि उद्भूत।

जी रही तप से निरन्तर यह सनातन सृष्टि,
मातु! तप के पुण्य फल-सी निखिल करुणा वृष्टि,
प्रकृति तप से फलित होकर पालती संसार
सूर्य तप से ही रहा यह विश्व-मण्डल धार।

रूप औ लावण्य है मन की मनोहर भ्रान्ति,
देह का अनुराग केवल इन्द्रियों की श्रान्ति,
रूप औ अनुराग केवल हैं प्रकृति के पाप,
पूत हो तप से अमृत वरदान बनते शाप।

सुरों को प्रभु ने स्वयं ही किया तप आदेश,
तात से देवर्षि ने भी किया यह निर्देश,
परम साधन मानते तप को सदा से शिष्ट
चिर प्रमाणित पन्थ तप का है मुझे भी इष्ट।

शुद्धता करता प्रमाणित उग्र तप से हेम,
करूँगी तप से प्रमाणित मैं हृदय का प्रेम;
प्राप्त तप से ही करूँगी कठिन भी निज इष्ट
रोक, मंगल मार्ग मे माँ! करो तुम न अनिष्ट।

लख सुताका कठिन निश्चय और दृढ़ अनुरोध,
कर सकी उसके न पथ का माँ अधिक अवरोध;
सजल दृग, उर से लगा कर दिया आशीर्वाद
"सफल तप तेरा बने मेरा अतुल आह्लाद।"

वचन में लज्जित उमा ने की पिता के पास,
चतुर सखियों के वदन से प्रकट निज अभिलाष;
स्मरण कर देवर्षि का वह तपोमुख आदेश,
मातृ अनुमति का सखी से प्राप्त कर सन्देश।

रूप के साफल्य के हित सुता का अनुरोध,
उचित ही लखकर पिता भी कर सके न विरोध;
सौंप सखियों को सुता का स्नेहमय संभार,
दी हिमाचल ने अनुज्ञा शान्त धीर उदार।

प्राप्त कर माता–पिता की अनुज्ञा समुदार,
मान सबके स्नेह का मन मे अमित आभार;
शील से कर नत पलक औ विनय विनमित माथ,
पूज्य माता औ पिता को जोड़ कर युग हाथ।

त्याग कर सब रत्न भूषण राजसी शृंगार,
तापसोचित वेश–भूषा हर्ष पूर्वक धार;
हृदय मे तप साधना की भर अपूर्व उमंग,
स्नेह औ सौजन्य शीला आलियों के संग।

गुरु जनों से ले विदा मे सिद्धि का वरदान,
पार्वती ने किया पर्वत शिखर ओर प्रयाण;
पार्वती की साधना की सिद्धि के पश्चात्
हुआ जो गौरी शिखर के नाम से विख्यात।

कर्ण फूल सुकंकणादिक रत्न मय शृंगार,
दीप्त तन की कान्ति से वह रुचिर मुक्ताहार;
निज करों से ही उमा ने किये दूर उतार,
खिला पूर्ण निसर्ग छवि से अधिक रूप उदार।

ले सखी के हाथ मे वल्कल अरुण छवि राग,
रुचिरतम चौमाम्बरों का किया सहसा त्याग,
अरुण वल्कल मे उमा शोभित हुई अवदात
धर रही राका उषा का रूप जैसे प्रात।

खोल वेणी शीश पर बाँधा जटा का जूट,
कान्ति आनन की रही थी चाँदनी सी फूट;
ले सफल आराधना का स्नेह मय आशीष,
धर रही राका अमा को विनय से निज शीष।

मधुप श्रेणी से अलंकृत स्निग्ध औ छविमान
चिकुर शोभित वदन करते फुल्ल कमल समान;
आज अनलंकृत जटा का असंभृत संभार,
बन रहा शैवाल-सा मुख कमल का शृंगार,

रत्न विजटित स्वर्ण-रशना का स्वयं कर त्याग,
कठिन मौञ्जी से निबन्धित किया मृदु कटि भाग;
त्रिगुण मौञ्जी से त्रिवलि में हुआ रोम विकार,
संयमित रखता उसे था मेखला का भार।

जो रहे रचते अधर पर अरुण कोमल राग,
वही मृदु कर कन्दुकों की रुचिर क्रीड़ा त्याग,
कुश चयन के क्षतों से हो पूर्ववत् ही लाल,
संचरित करते नियम से अक्ष-निर्मित माल।

कुसुम शय्या पर शयन करते पिता के गेह
क्लिष्ट कोमल कली से होती सुकोमल देह;
राजकन्या तापसी बन वही कोमल-गात
बाँह के उपधान पर सोती शिला पर रात।

गये षट् रस व्यंजनों के स्वाद उसको भूल,
नियम मित आहार केवल कन्द, फल औ मूल;
छोड़ बहु विधि पेय गन्धित पुष्प और उशीर
था तृषा का तोष शुचि भागीरथी का नीर।

संयमित थे नियम शीला के सभी व्यवहार,
वचन, दर्शन और गति सब नियम के अनुसार;
वचन सखियों को, लताओं को विलोल विलास,
हरिणियों को चल विलोकन दे दिये कर न्यास।

पुत्रकों-से पादपों को स्नेह-भय के साथ,
यत्न-पूर्वक पालती थी उमा अपने हाथ;
घट-पयोधर से, न उनका स्नेह का अधिकार
छीन सकता कभी उन से कार्तिकेय कुमार।

हाथ मे खाते हरिण थे भय रहित नीवार,
और पाते थपकियों मे पार्वती का प्यार;
बैठ कोमल करतलों पर पक्षियों के वृन्द
बीनते नीवार-कण थे भय रहित स्वच्छन्द।

हिंस्र पशु भी प्रकृत हिंसावृत्ति सहज बिसार,
बने दुर्बल जन्तुओं के प्रति प्रशान्त उदार;
सिंह औ मृग द्वेष नैसर्गिक वहाँ पर भूल
वारि पीते एक ही भागीरथी के कूल।

पार्श्व के पल्ली पदों के सरल और अजान,
नारि औ नर बन गये थे बंधुवर्ग समान;
नित्य दर्शन हेतु आते लिये फल-नीवार,
उमा की सखियाँ उन्हें देती उचित सत्कार।

उठ उषा में, कर प्रथम भागीरथी मे स्नान,
उषा-सी कर अरुण वल्कल वस्त्र का परिधान;
शान्त स्वर से पाठ करतीं मन्त्र पद का भव्य।
अर्चना करती अनल की कर समाहुत हव्य।

तपःशीला पार्वती के पुण्य दर्शन हेतु,
सिद्ध, ऋषि, मुनि आदि आते धर्म-सागर-सेतु;
अपेक्षा करता न नय मे वर्ण-वय की धर्म,
एक सिद्धाचार ही है धर्म का शुचि मर्म।

अप्सरायें पार्वती का देख तप औ शील,
मन्त्रणा आश्चर्य से करती सुदूर सलील;
"अमर यौवन का अनर्गल औ अखण्ड विलास,
भ्रान्ति है क्या? सत्य केवल तप नियम उपवास!"

पार्वती के पुण्य फल मे देख अपना भाग,
देवता उत्सुक निरखते नित्य तप औ याग;
राजकन्या का निरखकर नियम, तप, निर्वेद,
स्मरण कर शिव-मन्त्र करते निज अनय पर खेद।

द्रुमों मे निज इष्ट फल से अतिथि सेवा-लीन,
और वन के जन्तुओं से पूर्व-मत्सर-हीन;
शिखाओं से होम की नित उटज से उद्भूत,
पार्वती के हुआ तप से वह तपोवन पूत।

पुण्य शिव के तपस्थल के पार्श्व मे शुचि वाम,
जहॉ भस्म हुआ कुसुम - सा दृग-अनल से काम,
रच वहीं पर वेदिका स्मृति-चिन्ह-सी अभिराम,
पार्वती करती महातप अहर्निश अविराम।

ग्रीष्म मे प्रज्वलित करके अग्नि ज्वाला चार,
बैठ उनके मध्य, मुख पर स्मिति अनामिल धार,
विजित कर आदित्य की उज्ज्वल प्रभा उद्दाम
देखती अनिमेष दृग से सूर्य को अविराम।

सूर्य के अति ताप से भी तप्त, पर अम्लान,
खिल रहा था दीप्त आनन अरुण पद्म समान;
भ्रमर - से दृग थे अचंचल मुग्ध छवि से मौन
मृदुल बाहु - मृणाल कम्पित मात्र करता कौन?

अरुण संध्या मे विलज्जित वदन होकर श्रान्त,
डूबता पश्चिम जलधि मे सूर्य मौन प्रशान्त;
राजती सन्ध्या सदृश करती उमा शुचि होम,
पूर्व में होता प्रभासित सहज लज्जित सोम।

वृक्ष लतिकाओं सदृश ही अयाचित ही प्राप्त,
नीर, औ शुचि चन्द्रमा की रश्मियॉ, पर्याप्त
पारणा विधि पार्वती की पूर्णतः निष्काम,
प्रकृति लीन समाधि - सा था तप प्रकृत आयाम।

निशा में अनिमेष - लोचन, अचल और अतन्द्र,
पार्वती ध्रुव ध्यान करती देख नभ में चन्द्र;
प्रथम औ अन्तिम निशा के प्रहर किंचिन्मात्र
शिला पर करती शयन, कर वह विलम्बित-गात्र।

प्रचुर और प्रचण्ड रवि के हव्य से सुसमृद्ध,
प्रज्वलित बहु वह्नियों से पूत और प्रसिद्ध,
ग्रीष्म में तपती धरा – सी कर विविध विध – होम
द्रवित होता आज – सा करुणा कलित हो व्योम।

कठिन पूर्ण तपान्त के नव नीर से अभिषिक्त,
छोड़ती भू - संग ऊष्मिल श्वास उर्ध्वग सिक्त;
शैलमाला – सी शिखर को घेर नीरद माल
बनाती दुर्गम जनों को विषम वर्षा काल।

पद्म में स्थित एक क्षण कर अधर ताड़ित तूर्ण,
औ पयोधर शिखर पर विनिपात से हो चूर्ण;
उदर – वलियों मे स्खलित हो पार्वती के, दीन
प्रथम वर्षा बिन्दु होते नाभि मे चिर – लीन।

सिद्ध, ऋषि, मुनि पूर्व से ही कर उटज निर्माण,
विवश रक्षित वास करते, त्याग चरण – प्रयाण;
कर अनावृत शिला तल पर शैल - बाला वास,
कर रही तप से व्यतीत अपूर्व चातुर्मास।

तीर्थ जल से मेघ अवभृथ तुल्य कर अभिषेक,
अखिल तापस लोक की राज्ञी उसी को एक
बना, अर्पित रत्नमय कर रहे विद्युत – दण्ड
सौंप तापस लोक का साम्राज्य अखिल अखण्ड।

उमा के अविराम तप – सी वह निरन्तर वृष्टि,
निविड़ तम – संकुल अमा – सी रुद्ध करती दृष्टि;
विकल विद्युत – लोचनों से निशा चकित निहार
उमा के तप की बनी साक्षी अनन्य उदार।

प्रलय घन – से घुमड़ गिरि पर गरजते घन घोर,
विकल जीवों – से चतुर्दिक मुखर दादुर – मोर;
मेघ – गर्जन – प्रतिध्वनित – सा मन्द्र – घोष गभीर
सिंह – व्याघ्र विभीत करते, गह्वरों को चीर।

वज्र – सी भीषण तड़ित जब कर प्रघात प्रचण्ड,
वेग से विह्वल, शिलायें भग्न कर शतखण्ड,
कर विकम्पित रोदसी को, जगा शत भूचाल
तड़प भूपर टूटती ज्यों प्रलय – उल्का – माल,

घोर - तम – अज्ञान मे स्थित – प्रज्ञ – सी अभ्रान्त,
प्रबल वात्या मे सुमणि – सी अमल उज्ज्वल कान्त,
नियम – सी-संयमित, मन औ शक्ति धृति–सी शान्त,
अचल – दृग – मन उमा तपती शिला पर एकान्त।

प्रबल वात्या – वेग – पूर्वक पृथुल वर्षा बिन्दु,
हिम उपल से प्रताड़ित करते मृदुल मुख इन्दु;
तप – प्रसन्न अदृष्ट की मृदु पुष्प – वृष्टि समान
शान्त धीर विनम्र सहती पार्वती अम्लान।

फैलते सरि – स्रोत मेघासार – पूर्ण अपार,
उठ रहा गिरि जलधि मे मानों भयंकर ज्वार;
मकर - कच्छप – तुल्य होते शैल शिखर प्रतीत
तारिका – सी क्षितिज पर तपती उमा निर्भीत।

शरद के आरम्भ में जब विमल होता व्योम,
शान्त रवि दिन मे, निशा मे दीप्त होता सोम,
विपुल मेघासार मे अविचल शिला – सी स्नात,
दीप्त होती प्रकृति – सी उज्ज्वल उमा अवदात।

शरद की उज्ज्वल उषा मे स्वच्छ – कान्ति प्रकाम,
अरुण वल्कल में उषा – सी सोहती अभिराम;
शरद के बालार्क के आलोक में प्रति प्रात,
शिला पर स्थल – पद्मिनी – सी राजती मृदुगात।

नवल आतप से स्फुटित छवि प्रकृति – सी अभिराम,
नवल तप की कान्ति से पाण्डुर प्रदीप्त प्रकाम;
पार्वती होती सुशोभित ज्यों शरद की प्रात
पृथुल – वर्षा – गर्भ से गिरि – प्रान्त में नवजात।

शरद की निर्मल निशा में चन्द्रपूर्णा शान्त,
उदय होती उमा उज्ज्वल कुमुदिनी – सी कान्त;
हो रही तप से निरन्तर शशि कला – सी क्षीण,
शिखर–से शिव – शीश पर शोभित अ–म्लान अदीन।

शरद की शुचि यामिनी में देखता अनिमेष,
दूर दुर्लभ लक्ष्य – सा उज्ज्वल अमल राकेश,
विवश विस्मित – सा विमोहित ध्यान – मग्न चकोर,
ध्यान मग्ना भी उमा करती कृपा की कोर।

शरद राका में समुज्ज्वल शुभ्र शोभावान,
भूमि पर हिम – प्रान्त होता दीप्त स्वर्ग समान;
उमा गैरिक वसन में शोभित शिला – आसीन,
उषा – स्वप्न समान राका के पलक मे लीन;

भाल के ध्रुव – चन्द्र का कर चकोरी – सी ध्यान,
योग में रहती अमा में उमा अन्तर्धान;
शरद की बढ़ती निशाओं में अलक्ष्य अजान
शिशिर – सा बढ़ता अहर्निश उमा का तप – मान।

शिशिर में हिमपात से होता हिमालय श्वेत,
प्रहृत पद्म समान होते म्लान अखिल निकेत,
शिखर पर गैरिक वसन में सोहती शुचि शान्त,
शान्त वासुकि के सुफण पर अरुण मणि - सी कान्त।

प्रबल हिम संपात से होता अचल हिमधाम,
सर्वतः हिम समाच्छादित पूर्ण सार्थक नाम;
वन्य पशु, औ वृक्ष शैलों को बनाता भीत;
कठिन शासन में कँपाता चण्ड - दुर्वह शीत;

शिशिर का मध्याह्न रवि बालार्क तुल्य प्रकाम,
दर्शनीय, प्रशान्त, प्रिय औ मन्द तेज ललाम;
द्रवित कर जड़ता - सदृश हिमपटल की कुछ कोर
शिथिल जीवन को जगाता प्रगति - पथ की ओर।

कुछ खुले गिरि सानुओं पर पहन रोमिल वर्म,
भालु, कपि औ सिंह करते शान्त सेवन घर्म;
शिशिर से सिकुड़े हुये दृढ़ दीर्घ वृक्ष कलाप,
खोल पल्लव पाणि सेवन समुद करते ताप।

निकल कर मध्याह्न मे कर पाद - चार अदूर,
स्पर्श कर शिरसा सरित का पुण्य पारद पूर;
साहसी नर और ऋषि, मुनि, नियत औ अनिवार्य,
मन्द गति सम्पन्न करते कथंचित निज कार्य।

शीतपारदपूर से जल मे अचल कर वास,
कठिन तप करती हृदय मे ले अटल विश्वास;
पार्वती सह शिशिर की हिम निश्वसित - सी वात
ध्यान - मग्न व्यतीत करती दीर्घ दुर्गम रात।

सलिल मे बैठी उमा कर संपुटित युग हाथ,
मृदुल बाहु - मृणाल से मानों मनोज्ञ सनाथ
संकुचित हो रहा केवल शेष - सा जलजात
इन्दु - मुख से यामिनी मे, भर पलक में प्रात।

चक्रवाक मिथुन वियोगी सरित कूल समान,
परस्पर दोनों पृथक औ उभय आकुल - प्राण;
करुण क्रन्दन से विनीरव निशा मे ध्रुव शान्त,
भंग करते पार्वती का ध्यान औ एकान्त।

तुहिन - वर्षण से शिशिर के पद्म - श्री से हीन,
कृश - शरीर पयस्विनी को अकिंचन - सी दीन,
मन्त्र - जप-कम्पित अधर - दल मे अमित छवि मान
पार्वती का वदन करता पद्म - भूति प्रदान।

शान्त - सी स्रोतस्विनी के मध्य मे आसीन,
कण्ठ तक तन्वंगिनी जल मे नलिन - सी लीन
पर्वतीय भुजंग की मणि - सी प्रदीप्त प्रशान्त,
पार्वती होती सुशोभित शुद्ध तप से कान्त।

अन्त - सा हिम शीत के आता कठिन हेमन्त,
उदय होता चरम तप के फल - समान वसन्त;
शून्य धारा में सरित की आदि मधु की प्रात
पद्मिनी - सी पार्वती खिलती अमल अवदात।

भर हृदय में विपुल करुणा और पावन प्रेम,
साधना मे कर समाहित विश्व का हित - क्षेम;
कर वसन्त प्रभात में नव अग्नि का आधान,
उमा करती पुनः विधिवत् वेदिका निर्माण।

शिशिर से विजड़ित प्रकृति हो सजग और सचेत,
निज प्रगति से प्राणियों को दे रुचिर संकेत,
लोक में करता मधुर मकरन्द का संचार,
पुष्प - सा खिलता धरा का सरस राग विकार।

झूमते यौवन - प्रवण तरु कर समुन्नत वक्ष,
ललकती उत्सुक लतायें उठा बाहु समक्ष;
सजग नूतन सर्ग में हो प्राणियों के वृन्द,
प्रकृति मे करते मनोरम रमण सब स्वच्छन्द।

मंजरी मे पुनः कल्पित मदन के चिर बाण,
बोलते पिक के स्वरों मे काम के मृत प्राण;
झूमते मधु अन्ध भ्रमरों की मधुर गुंजार
पुष्प धनु की शिञ्जिनी की रच रहीं झंकार।

देख गिरि पर व्याप्त मधु का पुन रस - संभार,
औ मदन के शेष चिन्ह अशेष पुन. निहार;
स्मरण आता उमा को वह काम का तनु - दाह
और करुण विलाप रति का भर हृदय से आह।

मधुर प्रकृति - विकार - पूर्ण वसन्त का उपचार,
नियम, व्रत, तप का कठोर - प्रशस्त शासन धार,
सकल इष्ट परम्पराओं की समष्टि समान,
पार्वती करती निरन्तर सुदृढ़ शिव का ध्यान।

प्रकृति - सी कर काल के निर्जित सकल व्यापार,
अमृत आत्मा - सी प्रकृति के कर अतीत विकार;
इस प्रकार अनन्य तप से कर मृदुल तन क्लिष्ट,
कर रही अविचल उमा साधन अबाधित इष्ट।

स्थाणु का करती अनन्या धारणा से ध्यान,
हुई कोमल तन कुमारी अचल स्थाणु समान;
काल के क्रम-पूर्ण विक्रम कर न सकते व्याप्त,
भूत से संभूत गति में अमृत आत्मा आप्त।

ग्रीष्म की गुरु-होम-ज्वाला का दिवंगत हव्य,
सूर्य तप की भावना को और करता भव्य,
अग्नि औ आदित्य को भी बनाता भयभीत,
प्रकृति को विजड़ित बनाता वह हिमाकर शीत,

और मधुर वसन्त का रस पूर्ण और उदार,
साधना मे सब समाहित हुये एकाकार;
शरद के निर्मेघ नभ-सा हृदय शुद्ध प्रशान्त,
थी अचल अविकृत तपोरत पार्वती एकान्त।

एक योग अनन्य ही था प्राण का दृढ़ वर्म,
साधना मय बन गये थे अखिल जीवन धर्म;
बन गई आराधना थी प्राण की आधार,
संयमित थे नियम से सब प्रकृति के व्यापार।

प्रथम सखियों से समाहृत कन्द फल औ मूल,
और कानन कुंज से अवचित अकिंचन फूल;
थे रुचिर नव तापसी के अयाचित आहार,
और उसकी अर्चना के उचित लघु उपहार।

कृश हुआ तन औ बढ़ा जब अधिक तप अनुराग,
कन्दफल औ मूल का भी प्रेम से कर त्याग;
स्वयं ही आपतित कतिपय पर्ण से निर्वाह
कर, उमा निज मार्ग मे थी बढ़ रही सोत्साह।

शिशिर औ हेमन्त में तज पर्ण वृत्ति उदार,
कर जलांजलि से अयाचित पारणा प्रति वार;
निशा में जल वास करती कर कठिन तप ध्यान
हुआ इस से ही उमा का अपर्णा अभिधान।

रुचिर वासन्ती विभव की राशियों से तूर्ण,
अन्नपूर्णा के अजिर-से सर्वविध सम्पूर्ण,
पिता के साम्राज्य में रहकर अपर्णा मात्र,
पराकाष्ठा की तपों की बनी पावन पात्र।

अन्ततः में निर्वृत्ति वह कर तपः सीमा पार,
साध्य से निज साधना मे हुई एकाकार,
मृदुल तन से कर कठिनतम तपस् का उत्कर्ष
पूजनीया बनी मुनियों की अलभ आदर्श।

निकट ही गिरि कुञ्ज मे रच कर सरल आवास,
कर रहीं सखियाँ निरन्तर उमा का उपवास;
विरत सेवा से रहीं थी स्नेह की बस पात्र,
साक्षिणी तप और सत्ता की उमा की मात्र।

दूर के योगी, यती, ऋषि और तापस सिद्ध,
कौतुकान्वित ब्रह्मचारी और मुनि तपवृद्ध,
सुन उमा का नाम दर्शन हेतु आते नित्य,
देख कन्या का कठिन तप मानते कृतकृत्य।

सुन उमा के कठिन तप की कीर्ति पितु औ मात,
हर्ष से गर्वित स्मरण करते सुकोमल गात;
अश्रु भर मेना नयन मे देखती पति ओर,
"मार्ग दुर्लभ इष्ट का तप एक मात्र कठोर,"

तपस्विनी उमा

रुद्ध स्वर से कह वचन ये नृप हिमाचल धीर,
मौन चिन्ता नत वदन कर हो गये गम्भीर;
मृदुल तन औ कठिन तप का कर उमा के ध्यान,
हो रहे विस्मित विचिन्तित भवन मे हिमवान।

बढ़ रहा था तेज तप का, हुआ कृशतर गात,
खिली मुख पर दीप्ति कोई आत्मगत अज्ञात;
कान्त कुण्डलिनी प्रभा-सी कुमारी द्युतिमान,
सिद्धयोगी के शिखर-सा ज्योतिमय हिमवान।

जाग कर निज भस्म से औ रूप रुचि-मय धार,
संयमित कर शील से निज अनर्गल व्यापार;
तप रहा था काम मानों आत्म शुद्धि निमित्त,
कर रहा निज पूर्व कृत का पूर्ण प्रायश्चित।

काम-विरहित जान जीवन मात्र निज निस्सार,
विरत हो संसार से एकाकिनी सुकुमार,
कामवर-सा प्राप्त करने काम-रूप प्रकाम
काम को, रति रूप-शीला तप रही अभिराम।

शक्ति मानों शीश पर शिव के सदा आसीन,
हो रही थी स्फूर्त्ति के हित सजग तप मे लीन;
योग से कर अखिल आत्म-विभूति का उन्मेष,
साधकों के चित्त मे करने प्रशस्त प्रवेश।

रूप मानों पार्वती के रूप में साकार,
शील तप से रहा था निज रूप और निखार;
कर सुसंस्कृत इन्द्रियों की खेदमय आसक्ति,
कर रहा था सिद्ध आत्मा की विजयिनी शक्ति।

अटल श्रद्धा - सी अचल पर सुन्दरी सुकुमार,
कर रही थी शक्ति का निज शील में संचार;
साध संयम के शिखर पर सिद्धि योग अखण्ड;
शिव प्रतिष्ठा पूर्व करने नाश पाप प्रचण्ड।

विश्व की चिर - कामिनी बन योगिनी अभिराम,
कर रही थी कामना के शिखर पर उद्दाम
कठिन तप, सौन्दर्य मे कर शक्ति का उन्मेष,
नरों के हरने निभृत दौर्बल्य दोष अशेष।

स्वर्ग के अभिभव पतन से हो हृदय मे क्लिष्ट,
बना कर स्वर्लोक का उद्धार अपना इष्ट;
त्याग दिव का विभव धर कर तापसी का वेष,
कर रही तप शची हरने असुर-भीति अशेष।

अप्सराये सकल होकर - एक रूप अनन्य,
रूप यौवन को चिरन्तन योग से कर धन्य,
काम में करने नियम की शक्ति शिव उद्भूत
तप रही, कर अखिल अन्तःशक्ति को आहूत।

कर अमृत वात्सल्य से सम्भूत शक्ति कुमार,
विश्व माता विश्व का करने अमित उपकार,
शक्ति - सी थी कर रही शिव साधना अविराम,
असुर भय से रहित करने सुरों के ध्रुव धाम।

तीव्र तप से कृश उमा एकाकिनी अभिराम,
अमा मे अमृता कला - सी प्रभा पूर्ण प्रकाम;
ऊर्ध्व गति से तप शिखरपर बढ़ रही अनिवार्य,
बन रही थी सदाशिव के शीश पर चिर धार्य।

प्रलय-रवि-से तेज-तप-मय खोल निज अन्तर्नयन को,
वह्नि से उसकी प्रबलतम भस्म - तनु करके मदन को;
देव - सेवा में अकारण नष्ट होते देख पति को,
शोक के आघात मे मूर्च्छित मरी-सी छोड़ रति को;

कर उपेक्षित पार्वती की नियम - पूर्वक अर्चना को,
देवताओं की विनय से युत अमित अभ्यर्थना को;
कर उमा के रूप के अनुराग से आरक्त मन को,
योग बल से यमित, शिव प्रस्थित हुये अज्ञात वन को।

पार मानस के पहुँच कर, निभृत पर्वत कन्दरा मे,
शिव हुये तप-लीन, प्रज्ञा में निमग्न ऋतम्भरा में;
एक पल के मनोविप्लव को समाहित पूर्ण करने,
किया कितने वर्ष योग अखण्ड ध्रुव एकान्त हर ने।

एक दिन वर्षान्त में शिव ने तनिक तप-बन्ध खोला,
द्वार पर झंकृत विपंची ने श्रवण में अमृत घोला;
शान्त और प्रसन्न मुद्रा वदन पर अभिराम धारे,
कामचर देवर्षि नारद प्रणति युत भीतर पधारे।

मन्द मारुत से कमल सम्पुट सदृश युग अधर डोले,
कर सपर्या वचन नियमित मान - पूर्वक शम्भु बोले—
"पुण्य दर्शन आपका है अयाचित सौभाग्य मेरा,
आपके अनुराग से है धन्य यह वैराग्य मेरा।

कुशल हैं स्वर्लोक में गन्धर्व किन्नर देव सारे,
कुशल हैं भू - लोक मे पशु, मुनि तथा मानव हमारे;
हैं कुशल पूर्वक धरा को नागराज निशंक धारे,
विश्व मंगल - पूत होता चरण - चारण से तुम्हारे।"

जोड़कर युग पाणि – पल्लव वन्दना करके विनय से,
विनय युत देवर्षि बोले सदाशिव कल्याणमय से;
"नाथ! आप त्रिलोक मंगल मूल औ कल्याण कर्त्ता,
अखिल बाधा – भीति – हर्त्ता, विश्व के सुकृपालु भर्त्ता।

आपकी अक्षय दया की त्रिपथगा अविराम बहती,
आपकी सन्तत कृपा से कुशल ही सर्वत्र रहती;
किन्तु अपने पाप के ही आज संवर्द्धित कुफल से
व्यथित तीनों लोक, रहते अन्यथा जो थे कुशल से।

आप अखिल त्रिलोक के शकर सदाशिव शम्भु स्वामी,
लीन रह कर भी गुहा मे आप सबके हृदय-यामी;
बन्द कर भी आप पूर्ण समाधि में निज त्रितय दृग को,
सतत अन्तर्नयन से हैं देखते सम्पूर्ण जग को।

किन्तु आकुल हृदय मे त्रैलोक्य के सन्तप्त प्राणी,
कण्ठ से मेरे अनूदित चाहते हैं मुखर वाणी,
विश्व – मन को जो कठिन सन्ताप रहता नित्य घेरे
विश्व की अभ्यर्थना – सा कण्ठ मे है मुखर मेरे।

असुर के उत्पात से संत्रस्त हैं सुर लोक सारे,
विकल नाग, नृलोक मे हैं, त्रस्त नर, पशु, मुनि बिचारे;
विवश नाग, अचेष्ट नर हैं जा रहे पशु तुल्य मारे,
देवता दुर्बल अनेकों युद्ध करके विफल हारे।

आपके ही तेज से उत्पन्न सेनानी अकेला,
ला सकेगा फिर विजय युत देव – यश की उदय-वेला;
लोक हित की कामना – सी तापसी बन गिरि कुमारी,
कर रही इसके लिये ही अर्चना अभिमत तुम्हारी।

कल्पना भी त्याग काम विहार की नन्दन विपिन में,
पुष्प शय्या छोड़कर, कर प्रीति निज नूतन अजिन में,
आपके आदेश से ही देवता दिव में बिचारे,
तप रहे भव - कृपा की आशा हृदय में धीर धारे।

उमा के आदेश से रति विरहिणी कर नियत मन को,
कर मदन की भस्म से मंडित सुकोमल आत्म तन को,
पुनः पति से मिलन का ध्रुव बीज - मन्त्र अखण्ड जपती,
काम - कान्ता तापसी बन विपिन मे अविराम तपती।

क्लिष्ट कर तप होम से निज कुसुम - से सुकुमार तन को,
संयमित कर व्रत नियम से सुरभि - से मृदु मर्म - मन को;
देवता, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा, रति, गिरि - कुमारी,
आपकी आराधना में कर रहे तप - योग भारी।

नृत्य औ संगीत में जो सर्वदा ही निरत रहते,
कला की कल्लोलिनी में हंस - से जो मुक्त बहते,
अप्सरा, गन्धर्व, किन्नर काम के वे बन्धु सारे,
कर रहे तप योग मन में विजय का ध्रुव ध्यान धारे।

अप्सराओं संग मुक्त विलास ही था धर्म जिनका,
काम - संभृत भोग भी निर्बीज फल - सा कर्म जिनका;
त्याग कुसुमासन सुपरिचित, शिला पर आसीन वे ही,
दिव्य - देही देवता तप कर रहे बन कर विदेही।

चिर युवतियाँ अप्सरायें वासना की मूर्ति जिनकी,
रतिमती बनती अहर्निश कामना की पूर्ति जिनकी,
छोड़ सभा विलास औ अन्तर्भवन निज किस विजन में,
तप रहे वे इन्द्र ले क्या साधना सन्तप्त मन मे।

वासना - से कर समुच्छ्रित कच्च जो पीड़ित उरों के,
इंगितों पर कामचारी चिर युवा उत्सुक सुरों के
सूर्य - शशि के करों पर लघु वीचियों - सी काम - सर में
नाचतीं थीं अहर्निश, वे अप्सरायें आज कर मे

क्लेश - कर लेकर कठिन - व्रत - तुल्य कर्कश अक्षमाला,
योगिनी बन कर रहीं हैं तप कठिन तन्मय निराला;
गूँजता जिनके स्वरों से वायु मण्डल मुखर दिव का,
पलक अधरों पर उन्हीं के ध्यान जप है आज शिव का।

काम की अनुकृति सदृश नित रमणियों के मुग्ध मन मे,
रच रुचिर रस - पर्व, भर कर मोद मिथुनों के मिलन में,
प्रेम की पावन अवनि में वासना के बीज बोती,
रही जो रति, आज वह भी विरति - सी साकार होती।

राज - मन्दिर में पिता के खिली जो चंपक कली - सी,
पली जो वात्सल्य - वैभव मे सुकोमल कन्दली - सी;
धार कर निष्ठुर नियम व्रत वह हिमाचल - राज-कन्या,
कर रही कब से कठिन तप धर्म - शीला वह अनन्या।

आपके आदेश से तप - मार्ग सबने पुण्य जाना,
निभृत जीवन - शक्ति का ध्रुव और अक्षय स्रोत जाना;
हो रही रति तो विरति - सी त्याग मे तप के विलय - सी,
पार्वती हो रही संस्थित साधना में प्रकृति - जय - सी।

पार्वती की चरम श्रद्धा और तपमय साधना से,
और सबकी भक्ति पूर्ण अनन्य शिव - आराधना से,
पार्वती की प्रीति - स्वीकृति मे प्रसाद पवित्र शिव का
विश्व का मंगल बनेगा औ विजय का पर्व दिव का।

आप शिव शंकर सदा हैं लोक के कल्याण कर्त्ता,
अशिव – हर्त्ता और भव के आप मंगल मूल भर्त्ता;
कर कृपा की कोर भव का ताप आज समस्त हर दो,
विश्व शिव–साम्राज्य हो बस नाथ! केवल एक वर दो।"

अर्थ औ नय पूर्ण मुनि के वचन सुन संयुक्त स्वर से,
स्फुरित करुणा–पूर्ण वर–से हुये शंकर के अधर से,
मन्द्र औ गम्भीर वाणी मधुमयी जगदीश बोले
सजल घन ने ज्यों शिखी के शब्द से स्वर कोष खोले—

"हर्ष है देवर्षि! सुन सन्देश तुमसे अखिल जग का,
कर रहे हैं अनुसरण यदि लोक चिर कल्याण मग का;
दूर होंगे तो स्वयं सन्ताप उनके शीघ्र सारे,
मेंट सकता एक तप ही भुवन के सन्ताप सारे।

देव, नर और असुर जब केवल प्रकृति के दास बनते,
तब प्रकृति के भोग भुवनों के चिरन्तन त्रास बनते;
प्रकृति है स्वच्छन्द आत्मा को बनाती वश्य अपना,
सत्य बन जाता सनातन तब यही बस दृश्य सपना।

देवताओं ने प्रकृति का भोग पूर्ण अनन्त पाया,
शक्ति – शोषक भोग ही बन कर पराजय नित्य आया,
देवताओं का मनुज भी हैं सदा अनुसरण करते,
भूल आत्म स्वरूप को वे भी प्रकृति में रमण करते।

है प्रकृति का ही सचेतन रूप असुर समाज सारा,
देव – नर – सहयोग से बढ़ती प्रकृति की वेग–धारा,
है प्रकृति की पूर्णता उन्मुक्त अक्षय बल असुर का,
शाप प्रकृति - अपूर्णता ही देव नर के भीरु उर का।

प्रकृति है अविराम गति औ प्रगति ही है ध्येय उसका;
एक आत्म-स्वरूप स्थिति ही लक्ष्य आत्म-विधेय उसका;
प्रकृति है दुर्जेय पर अपराजिता आत्मा हमारी,
प्रकृति का संस्कार पूर्ण कृतित्व की सीमा हमारी।

प्रकृति के रय मे तृणों - से जीव नित निश्चेष्ट बहते
विवशता में प्रकृति की असफल समस्त अभीष्ट रहते,
प्रकृति के क्रम मे स्वगति का है नहीं प्रतिकार कोई,
प्रकृति की कृतियाँ लहर - सी धार के रय बीच खोई।

हो अचेतन औ अदय भी प्रकृति अधिक उदार भी है
नाश का होकर निलय भी, सृजन का आधार भी है;
अखिल जीवन के अयाचित प्रचुर साधन दान करती,
उत्तमोत्तम साधनों का अहर्निश निर्माण करती।

पर प्रकृति के साधनों का साध्य सुन्दर श्रेय जन का,
देह का आदर्श अन्तिम इष्ट आत्मा और मन का;
प्रकृति का संस्कार तप से, कर अनावृत आत्म बल से,
सफल जीवन - तरु करेंगे देव-नर आनन्द फल से।

सफल जीवन - वृत्त का मंगल मनोज्ञ पराग बनता,
विश्व आत्मा मे वही शुचि प्राण का अनुराग बनता
नित्य नूतन शान्ति वर - से रुचिर पल्लव - पत्र खिलते
अयुत बीजों में भुवन के नवल - जीवन - सत्र मिलते।

पथिक का आश्रय उन्हीं की शान्ति रूपी सघन छाया,
बैठ जिसमें विश्व ने पथ का मधुर विश्राम पाया;
शान्ति है श्रम की सफलता, प्रेरणा भी नवल श्रम की,
योग, तप, श्रम की सरणि ही साधना है श्रेय-क्रम की।

धर्म केवल इन्द्रियों के हैं न अन्तिम ध्येय नर के,
वृत्तियों मे निहित इनकी बीज - मन्त्र प्रशस्त स्मर के;
प्रकृति का ईश्वर मनुज में काम ही है देहधारी,
हो रही शासित उसी से मानवी संसृति बिचारी।

प्रकृति के अभिशाप-सा ही अमर यौवन प्राप्त करके,
मनुज से भी देवता बढ़ हुये दास सहर्ष स्मर के;
विवश मानव में प्रकृति जो बनी वह स्वीकृति सुरों की,
बनी अमरावती सीमा भूमि के प्राकृत पुरों की।

असुर में उन्मुक्त और अनात्म होकर कामचारी,
प्रकृति होती प्रलय - सी दुर्धर्ष अनियन्त्रित विकारी;
रुधिर बनकर सोम करता पूर्ण पोषित प्राण उनका,
काम करता विजय - घोषण सिद्धि-मन्त्र समान उनका।

किन्तु वर - सी सुर - नरों की चेतना ही शाप बनती,
पुण्य आत्मा ही प्रकृति से क्रान्त होकर पाप बनती;
आत्म चेतन से सशंकित भीरु उनकी प्रकृति होती,
और शंकाभीत आत्मा बालिका - सी मौन रोती।

लड़ न सकते सुर तथा नर प्रकृति-कुण्ठित आत्म बल से,
चेतना - शंकित प्रकृति से, असुर के उन्मुक्त दल से;
मुक्त आत्मा की असीमित शक्ति को जागरित करके,
बन सकेंगे देव-नर विजयी प्रकृति को विजित करके।

प्रकृति का अवरोध करके परम तप के पूर्ण बल से,
आत्म बोध न कर सकेंगे देव-नर स्वप्निल अतल-से;
सिद्ध तप से संयमित हो प्रकृति होगी शक्ति उनकी,
यत्न औ कृति से समन्वित सफल होगी भक्ति उनकी।

आत्मघाती बन प्रकृति के रमण में खो शक्ति सारी,
देवता दुर्बल हुये बन कामना से कामचारी;
देव – नर को प्रकृति का पथ नित्य अभिमव औ मरण का,
मार्ग केवल एक तप का शक्ति के नव जागरण का।

प्रकृति को करके नियोजित शुद्ध संस्कृत आत्म बल से,
देव सेना कर सकेगी युद्ध सार्थक दृप्त खल से;
नहीं काम – कुमार उनका नयन जय को कर सकेगा,
तपःशक्ति प्रसूत सेनानी विजय – श्री वर सकेगा।

भस्म कर तनु काम का, कर तीव्र तप से पूत उसको,
तपः पूता पार्वती मे कर पुनः सम्भूत उसको;
इष्ट शक्ति कुमार सेनानी सृजन का धर्म मेरा,
सफल होगा, शुद्ध तप से सुकृत होगा कर्म मेरा।

देवता यदि कर रहे तप शक्ति के नव जागरण को,
पार्वती यदि तप रही सन्तत सदा शिव के वरण को;
पूर्ण निश्चित तो विजय का इष्ट आज अदूर उनका,
प्रलय पारावार होगा असुर को बल – पूर उनका।

पार्वती – सी तपः पूता विश्व की प्रति कुल कुमारी,
शक्त सेनानी सृजेगी असुर के आतंक कारी;
विश्व का प्रत्येक जन शिव का सहज अवतार होगा,
सत्य शिव आनन्द का साम्राज्य यह संसार होगा।

हर्ष से प्रमुदित हुये मुनि गिरा सुन अभिराम शिव की,
कर विनम्र प्रणाम प्रस्थित हुये सहसा ओर दिव की,
हर्ष के सन्देश चिन्तित देवताओं को सुनाये,
सुरों ने अपने मनोरथ आज मन में पूर्ण पाये।

और अन्तर्धान होकर कन्दरा से, रुचिर धारे,
वेष वटु का, पार्वती की ओर वृषभध्वज पधारे;
चाँदनी के श्याम घन-सा कृष्ण मृग का चर्म तन में,
ब्रह्मवर्चस् हो रहा था दीप्त ज्वाला-सा वदन में।

छिप गई ब्रह्माण्ड ज्योति समान गंगा भी जटा में,
ऊर्ध्व-गुम्फित जूट मे शशि छिपा जैसे घन घटा में,
कण्ठ, सिर औ बाहु के फणधर हुये आवृत अजिन में
बन हृदय के हार, मधुकर मौन सन्ध्या के नलिन में।

छोड़ डमरु त्रिशूल, था आषाढ़ लम्बित एक कर में,
याचना-सा मुक्त-मुख था पात्र भिक्षा का अपर में;
तेज से तप के विवर्द्धित रूप था अभिराम कैसा,
बन तपस्वी वटुक आया भस्म होकर काम जैसा।

देख कर आया विपिन में एक अद्भुत ब्रह्मचारी,
उठी शिष्टाचार औ बहुमान के हित गिरि कुमारी;
कर चुके जो संयमित औ शिष्ट तप से पूर्ण मन को,
विपुल गौरव-मान करते वे प्रदान समान जन को।

कर प्रथम पादार्घ्य पूर्वक अतिथि की विधिवत सपर्या,
सखी से आहृत कुशासन दे अतिथि सत्कार चर्या
शान्ति युत सम्पन्न कर, निर्वाक् बैठी पार्वती ने,
सखी को भ्रू-क्षेप से इंगित किया मृदु कुलवती ने।

जया ने सत्कार पूर्वक वटुक से मृदु मधुर स्वर मे,
कुशल पूछी और बोली मन्द स्मिति भरकर अधर में—
"हुआ यह गौरी-तपोवन आज पावन ब्रह्मचारी,
हुई दर्शन से सफल तप-साधना दुष्कर हमारी;

धन्य है वटु आप जो लेकर कृपा इतनी हृदय मे,
रूप, गुण औ शील लेकर रुचिर कान्त कुमार वय मे;
त्याग कर सब भोग जग के, धार कर मृग चर्म तन में,
औ कठिन वैराग्य का संकल्प लेकर मृदुल मन मे;

प्रकृति की पर्वत सरित के प्रतिस्रोत प्रवाह जैसा,
कर रहे इस कठिन वटु - व्रत का सहज निर्वाह ऐसा;
जन्म से पावन हुआ तव कौन कुल सौभाग्य शाली,
नाम से तव कौन वर्णों को मिली महिमा निराली।"

सुन सखी के वचन बोला नम्रता से ब्रह्मचारी,
"देवि! संज्ञा - हीन हम हैं वटुक केवल विपिन चारी,
प्रकृति से तपशील निर्मल विप्र कुल पावन हमारा,
बन रहा मेरा कुतूहल शील, कुल औ तप तुम्हारा।

कठिन तप की कीर्ति गिरि मे, गूँजती चहुँधा तुम्हारी,
पुण्य दर्शन की यहाँ पर लालसा लाई हमारी;
शील औ सत्कार पूर्वक पुण्य दर्शन से तुम्हारे,
हुये आज कृतार्थ तप के पुण्य चिर संचित हमारे।

प्रथम आश्रम धर्म तप अनुकूल है वय के तुम्हारे,
और योग समाधि भी अनुकूल है नय के तुम्हारे;
देख कर यह कठिन तप औ यह सुकोमल वपु तुम्हारा,
सोचता तन - शक्ति के अनुरूप है क्या तप तुम्हारा।

धर्म का आधार प्राकृत आदि साधन देह ही है,
शक्ति के अनुरूप तप - व्रत उचित निस्सन्देह ही है;
है क्रिया के योग्य समिधा और कुश तो सुलभ वन मे,
स्नान विधि के योग्य जल भी सुलभ है इस गिरि विजन मे।

यत्न – निर्मित वेदिका पर छलाँगें निश्शंक भरते,
कष्ट से आहृत क्रिया के दर्भ कर से समुद हरते,
सरल हरिणों से कुमारि! प्रसन्न तो है मन तुम्हारा,
अनुकरण करते दृगों से जो सरल दर्शन तुम्हारा।

पाणि से कोमल तुम्हारे अन्न औ तृण छीन खाते,
बन्धु-से पशु पक्षि कुल बहु प्रिय स्नेह-बन्धन हेतु आते;
स्नेह के अनुरोध से परिचरण में औदार्य करती,
सदय सखियों से, तपस में मधुरता अनिवार्य भरती।

कीर्ति सुन तप की तुम्हारे पुण्य दर्शन हेतु आते
तापसों के नित्य नव सत्कार की बाधा उठाते,
दयामयि! कुछ विघ्न तो होता न तप-व्रत मे तुम्हारे,
सह्य होते सिद्ध तप में धर्म के अनुबन्ध सारे।

शास्त्र का यह कथन 'रूप न पाप-वृत्ति- निमित्त होता,
पुण्य – दर्शन रूप से पावन मलिन भी चित्त होता,'
सत्य होता आज लखकर रूप यह पावन तुम्हारा,
तापसों को भी उचित उपदेश मिलता शील द्वारा।

अर्थ का औ काम का कर त्याग निर्मल शान्त मन से,
धर्म को ही ग्रहण कर तुम कर रही सेवन लगन से;
ज्ञात होता धर्म ही है सार जीवन और जग का,
धर्म से ही मुक्त होता द्वार दुर्लभ मुक्ति मग का।

आत्मनिष्ठ तपस्वियों को पर न कोई विश्व-पुर मे,
शील और सत्कार से नव आत्म – भाव प्रबुद्ध उर मे;
वचन दर्शन से चिरन्तन आत्म – भाव नवीन होता,
अन्यथा भी सज्जनों का सख्य साप्तपदीन होता।

विप्र हूँ, वटु हूँ, क्षमा वाचालता हो देवि! मेरी,
देख तप औ रूप, चंचल हो उठी ऋजु प्रकृति मेरी;
गोपनीय रहस्य यदि कुछ हो न तो अयि! क्षमा शीले!,
शान्त कर दो कुछ कुतूहल प्रश्न शिशुओं-से हठीले।

उषा-सी नभ मे हुई तुम उदित किस कुल में कुमारी!
हुये कौन कृतार्थ माता-पिता महिमा से तुम्हारी?
रूप से प्लावित नयन कर प्रेरणा उत्सुक श्रवण मे
नाम सुनने का कुतूहल कर रहे उत्पन्न मन मे।

रूप औ तप देख जिज्ञासा हुई जागरित मन मे,
रत्न किस कुल की यहाँ यह कर रही तप निविड़ वन में;
राजकन्या-सी सुशीला रूपसी यह कौन बाला,
तापसी बन कर रही तप और जप ले अक्षमाला।

छोड़ कर माता-पिता का स्नेह, सुख सुकुमार वय मे,
त्याग कर आभरण, वल्कल धार कर धृति-से प्रणय में;
किस सुफल की कामना लेकर समाहित शुद्ध मन में,
कर रही हो यह कठिन तप अद्रि के इस घोर वन मे।"

सुन कुतूहल पूर्ण वटु के वचन गिरिजा की सखी ने,
ब्रह्मचारी से कहा मृदु मधुर स्वर मे मधुमुखी ने;
'पुण्य शीला यह हिमाचल राज की कन्या कुमारी,
कर रही पति प्राप्ति के हित, यह कठिन तप ब्रह्मचारी।"

"धन्य हैं गिरिराज गिरिजे! जन्म से पावन तुम्हारे,
सफल दर्शन से हुये सब पूर्व संचित तप हमारे;
धन्य यह आश्रम हुआ इस शील मय तप से तुम्हारे,
धन्य वाणी भी हुई इस नाम और जप से तुम्हारे।

स्वर्ग से सप्तर्षियों की पुष्प बलि से हास-शीला
उतरती, करती विपिन मे बालिका – सी सरल लीला,
हिमाचल भागीरथी से भी न पावन हुये इतना,
पूत पावन चरित से तव शैलजे! हो रहे जितना।

प्रथम वेधा के सुकुल में जन्म तुमने देवि! पाया,
विश्व का सौन्दर्य संचित हो सुतनु! तनु मे समाया;
है अखिल ऐश्वर्य से पूरित पिता का गृह तुम्हारा,
कौन दुर्लभ वर, लिया जिसके लिये तप का सहारा?

इन्द्र वरुण कुबेर – से दिग्पाल आश्रित हैं पिता के,
मान सब बहुमान पूर्वक वहन करते गर्विता के;
प्राप्त कर तव सदृश पत्नी रूप, गुण औ धर्म शीला,
किस कृती की धन्य हो जाती न पावन प्रणय लीला।

है तुम्हारा इष्ट ऐसा युवा कौन कठोर त्यागी,
हो सका इस रूप से भी तुष्ट जो न अभी विरागी;
कौन इस सौन्दर्य के सौभाग्य से वंचित अभागा,
जड़ हृदय में देवि! जिसके प्रणय का गौरव न जागा?

वज्र – उर वह कौन तव ईप्सित युवा हिमराज – कन्ये!
जो न प्रीत पुनीत तप से भी हुआ हे धीर–धन्ये!
शशि – कला – सा तपःकर्षित देख कोमल वपु तुम्हारा,
किस सचेतन का न होगा हृदय कम्पित प्रीति – द्वारा?

देवि! कितने काल से तुम कर रहीं तप हेतु वर के,
पूर्व आश्रम का सुसंचित अर्ध – तप–फल प्राप्त कर के,
कर सको यदि प्राप्त उसको तो मुझे अति हर्ष होगा,
कौन जिसको प्रिय न अद्भुत भाग्य का उत्कर्ष होगा।

इन्द्र, वरुण, कुबेर भी इस रूप से कृतकृत्य होते,
प्रीति से उपकृत तुम्हारी कामना के भृत्य होते;
विष्णु, ब्रह्मा भी हृदय मे गर्व पूर्वक स्थान देते,
शशिकला-सी क्षीण तप से शीश पर हर मान देते।

रूप, कुल औ शील उत्तम देख कर तव गिरि कुमारी,
औ सुतनु! अवलोक तप की यह कठिन काष्ठा तुम्हारी;
कामना है जानने की कौन वह सौभाग्यशाली
है तुम्हारी साधना की पद्मिनी का अंशुमाली।"

मर्म स्पर्शी वचन नर्मद विप्र के सुन हृष्ट मन मे,
शील औ संकोच वश असमर्थ गौरी प्रति - वचन मे;
कर सकी इंगित कथंचित सखी को साकूत दृग से,
सरलता मे जो निरंजन साम्य करते बाल मृग से।

ग्रहण कर इंगित सखी बोली, "विपश्चित ब्रह्मचारी!
जानने की कामना यदि है अधिक उत्कट तुम्हारी,
किस सुदुर्लभ इष्ट के हित सुकोमल वपु और वय से,
किया दुष्कर तप उमा ने क्लिष्ट-तन, हर्षित हृदय से।

तो सुनो, यह मानिनी अवमानना कर मौन मन से
इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम की प्राण के अभिपूत पण से,
रूप से जो हुये परम अ-वश्य करके भस्म स्मर को,
प्राप्त करना चाहती तप से उन्हीं अपरूप हर को।

क्रुद्ध होकर तेज से निज भस्म तनु करके मदन को,
हुये प्रस्थित विप्र! जब से हर किसी अज्ञात वन को;
भज रही उनको तभी से यह निरन्तर मौन जप से,
ध्यान उनका कर रही अविराम गिरि पर कठिन तप से।

हो रही तप – कृष्ट अतिशय शशि – कला – सी यह कुमारी,
कब न जाने सफल होगा यह कठिन तप ब्रह्मचारी!
कब न जाने तुष्ट होंगे देवता इसके निराले,
कब न जाने फलित होंगे तपस्तरु नयनाश्रु – पाले।"

स्निग्ध वचनों से सखी के जान लज्जित पार्वती के
भाव मन के, हुये हर्षित अंग सहसा वटु – व्रती के
औ विलज्जित उमा से बोला प्रहर्षित ब्रह्मचारी,
'सत्य या परिहास केवल यह तुम्हारा गिरि कुमारी!"

रोक मुकुलित अंगुली मे एक पल को अक्षमाला,
लाज से बोली मिताक्षर वचन बरबस शैलबाला,
"सत्य ही तुमने सुना है जो श्रवण से ब्रह्मचारी!
तुच्छ साधन लक्ष्य के हित यह तपस्या है हमारी।"

सखी बोली "लक्ष्य के अनुरूप होती साधना भी,
उग्र तप से ही सफल होती समुन्नत कामना भी।"
सुन उमा के वचन वटु का स्फुरित उत्सुक अधर डोला,
स्नेह के अनुरोध पूर्वक पुनः विप्र प्रगल्भ बोला —

"चिर अमंगल मूर्ति सम्यक हैं महेश्वर विदित जग मे,
हो रही हो तुम उन्हीं के हित प्रवर्तित तपोमग में;
इस अमंगल मय चरण में देखकर ध्रुव रति तुम्हारी,
हो उठी हित कामना से चपल यह वाणी हमारी।

विश्व के सौन्दर्य की प्रतिमा कहाँ तुम गिरिकुमारी,
औ कहाँ वे रूपहीन त्रिनेत्र अहि – गज – चर्म – धारी;
देख तुमको औ स्मरण कर इष्ट की महिमा तुम्हारे,
नियति पर, मति पर हृदय में खेद अति होता हमारे।

मृदुल मंगल सूत्र से जो कर सुतनु शोभित रहेगा,
सर्प-वलयित शम्भु-कर से ग्रहण वह कैसे सहेगा !
हंसचिन्हांकित तुम्हारा रुचिर क्षौम दुकूल होगा,
गज-अजिन से योग उसका क्या कहो अनुकूल होगा !

कुसुम से आकीर्ण रम्य चतुष्क में कोमल गमन के
योग्य, अंकित शुचि अलक्तक से तुम्हारे मृदु चरण के
संचरण को साथ हर के अशुचि भीष्म श्मशान स्थल में,
शत्रु भी शोचित करेगा भूल वैर-विचार पल में।

एक और विडम्बना आरम्भ में ही है तुम्हारी,
दिव्य वारणराज वाहन योग्य तुम पर्वत कुमारी;
वृद्ध वृष पर संग हर के जब गमन गृह से करोगी;
खेद की स्मिति से महाजन-वर्ग की नय विवश होगी।

रूप के सौभाग्य पद का त्याग कर तुम स्वयं मन से,
पुण्य तप द्वारा पिनाकी के सहठ निश्चित वरण से,
हुई जग में चन्द्रमा की कला के सम शोचनीया
तुम त्रिजग की नयन-ज्योत्स्ना विश्व की चिर माननीया।

रूप दिव्य विरूप, कुल औ जन्म हैं अज्ञात उनके,
औ दिगम्बर वेष से हैं विदित वैभव-जात उनके
अयि मृगेक्षिणि ! काम्य हैं जो रूप, धन, कुल आदि वर में,
एक भी है क्या कथंचित प्राप्य ईषन्मात्र हर में।

रूप-कुल-शीला कहाँ नव-वयवती तुम गिरि-कुमारी,
स्थाणु वृद्ध अमंगलाशय कहाँ हर अहिशूल-धारी;
असद् ईप्सित से निवर्तित हो, करो कल्याण अपना,
योग्य वर से सफल होता मधुर यौवन-पूर्ण सपना।

सुन वटु के कटु वचन कोप से हुये अधर आकम्पित,
और उमा की भ्रू लतिकायें सहसा हुई विकुंचित
कर तिरछे अपांग में किंचित लोहित युगल नयन को,
हुई तापसी पर्वत कन्या वटु से विवश वचन को।

"यद्यपि हो श्रुति–शास्त्र–परायण द्विज ! तुम पूर्ण विपश्चित,
परमेश्वर का रूप तत्वतः नहीं जानते निश्चित,
इसीलिये हर की निन्दा युत तत्पर हुये वचन मे,
मन्द सदा ईर्ष्या करते हैं महाचरित से मन मे।

मंगल रूप महेश्वर जग की अखिल आपदा हरते,
भस्म – विभूषित भी त्रिभुवन में सकल सम्पदा भरते,
आप्त – काम निष्काम विश्व की शंकर परम शरण हैं,
कलुष – कारिणी भूति न उनके करते भक्त वरण हैं।

अखिल सम्पदाओं के उद्भव होकर स्वयं अकिंचन,
हैं त्रिलोक के नाथ नित्य, कर भी श्मशान का सेवन;
भीम - रूप भी शिव – संज्ञा से अभिहित करते ज्ञानी,
परमेश्वर के सत्य रूप की महिमा किसने जानी।

ऐरावत आरूढ़ इन्द्र भी चरणों मे सिर धरते,
संपद् – हीन वृषभ – वाहन का उर से वन्दन करते;
हर के अंग पुनीत चिता की रज भी पावन करते
मान परम सौभाग्य शीश पर सुरगण धारण करते।

मुक्त कण्ठ से निन्दा करते गुणातीत शंकर की,
तुमने एक सत्य भी कह दी बात विप्रवर! हर की;
स्वयं स्वयंभू भी हैं जिनको कहते अपना कारण,
उनके जन्म और कारण का संभव क्या निर्धारण?

अथवा व्यर्थ विवाद, सुने हैं तुमने उनमे जैसे,
दोष अनन्त सभी वे उनमें चाहे हों भी वैसे;
एक भाव से हुआ उन्हीं में संस्थित मानस मेरा,
शिव में ही बन गया सनातन मेरा प्राण-बसेरा।

स्फुरित अधर फिर वटु के आली! चाह रहे कुछ कहना,
इसे हटाओ; उचित न मुझको शिव की निन्दा सहना;
नहीं पाप का भागी केवल निन्दक महाजनों का,
सुनने मे भी पाप, सखी! है श्रोता के श्रवणों का।"

'अथवा मैं ही चलूँ यहाँ से' कह चल दी गिरिबाला,
विस्मित हुई देखकर वटु का अद्भुत रूप निराला;
होती जैसे उदित अचानक सहसा श्याम घटा मे,
हुई उदित शशि कला शम्भु की उर्ध्व-निबद्ध जटा मे।

छूटी सहसा निकल जूट से गंगा ज्योतिर्धारा,
पल मे परिणत हुआ उमा का भाव-लोक भी सारा;
निकल अजिन के उत्तरीय से हुये भुजंगम स्पन्दित,
हुये उमा के सन्मुख सस्मित खड़े शम्भु जगवन्दित।

अखिल तपों के अन्तिम फल-से देख शम्भु को आगे,
भाव अनिर्वचनीय उमा के उर अन्तर मे जागे;
हुये सुकोमल अंग स्नेह की सरस भीति से कम्पित।
कर न सकी वह पार शम्भु के बाहु युगल आलम्बित।

पथ मे विवश अचल बाधा से आकुल शैवलिनी-सी,
स्थिति-गति के असमंजस में वह रही सरित-नलिनी सी,
कहा शम्भु ने स्नेह भाव से, "प्रिये! आज से तेरा,
प्रेम और तप-क्रीत दास है तन, मन, जीवन मेरा।

सर्ग ८

परित्राय प्रसंग

शिव के परम अनुग्रह से पुलकित - मना
लाजवती को पुनः न कुछ कहते बना;
मौन वचन से किन्तु सखी को निकट से,
किये हृदय के भाव कथंचित् प्रकट - से।

मर्यादा की धार सखी ने शुभ बहा,
गौरी का सन्देश सदाशिव से कहा;
"मेरे जीवन सूत्र आप के हाथ हैं,
दाता मेरे पिता पूज्य गिरिनाथ हैं।

तत्पर तप से सफल यज्ञ कर प्रेम का,
नाथ! पा चुकी इष्ट विनय औ नेम का;
पर परिणय- विधि लोक - धर्म - आधार है,
सदा पिता को उसका शुभ अधिकार है,

तप का फल तो पुण्य देव दर्शन मिला,
शत सुमनों से भव्य, हृदय उपवन खिला;
दर्शन का फल यह मंगल वरदान हो,
मर्यादा का सदा लोक मे मान हो।

कर विधि पूर्वक पूज्य पिता से याचना,
सफल गृहाश्रम माता युत उनका बना;
परिग्रहण कर मुझे शास्त्र-की रीति से,
करें कृतार्थ अपार कृपा औ प्रीति से।"

जान उमा का भाव समुद शिव ने कहा,
"मर्यादा मे ही मंगल जग का रहा;
तव इच्छा नय सदृश मुझे चिर मान्य है,
मर्यादा का बीज विश्व का धान्य है।"

यह कह शंकर चले गये कैलास को,
इधर उमा भी लिये हृदय में आस को,
मन मे परम प्रसन्न पिता के गृह चली,
स्मिति-विस्मिति-सी संग उभय सखियाँ भली।

जया और विजया के मुख से जानकर,
उमा-विजय का वृत्त, स्वयं को मानकर
धन्य, तथा कुल को कृतार्थ, प्रमुदित पिता
हुये, हर्ष से माता थी अति पुलकिता।

कहा सहित आशीष हिमाचल भूप ने—
"पुत्रि! तुम्हारे पावन तपस अनूप ने
मम कुल पावन किया; हुये हम गृहव्रती
कन्ये! तेरे पुण्य-शील-तप से कृती।"

माता पुलकित उर से फिर फिर भेंटती,
घर आई लक्ष्मी-सी समुद समेटती;
बोली गद्गद्-कण्ठ स्नेह-निर्भर-मना,
'बेटी! मेरा भाग्य आज उन्नत बना।"

सखियों ने उल्लास सहित ही द्वार पर,
स्वागत किया प्रफुल्ल-सुमन-चय वार कर;
हास और उल्लास सरित में फूल-सी,
बहा ले चलीं उसे अजिर-अनुकूल-सी।

केशर पुट-सी कान्त उमा को घेर कर,
पुष्प-दलों-सी स्नेह-दृष्टि से हेर कर;
'सफल हुआ तप शील, रूप औ वय सखी!
हुई विश्व मे प्रथित प्रेम की जय सखी!"

बोली सखियाँ हास - मुखी नव - वयवती,
हुई लाज से नमित - वदन सुन पार्वती;
"मिली रत्न को अंक सुगन्धित हेम की
मिली प्रीति को रीति सनातन प्रेम की।"

धन्य मान निज भाग्य भूप हिमवान ने,
तपस्विनी कन्या - श्री से गृहवान ने,
समुद स्मरण कर नारद के आशीष को,
मनोवचन से संस्तुत किया ऋषीश को।

सखियों के मुक्ता - निर्झर - से हास से
मेना का प्रासाद विपुल उल्लास से
रहता था नित भरा, सदा होती तथा
रुचिर उमा के तप औ परिणय की कथा।

इस प्रकार सखियों के हास विनोद में,
रुचिर प्रणय आलाप कथा के मोद मे;
छिपा विरह का क्लेश, शील लज्जावती,
बिता रही दिन प्रकट हर्ष से पार्वती।

उधर पहुँच कर शंकर ने कैलास पर,
मर्यादा का मान सहित विश्वास कर;
जान कुशलतम बन्धु धर्म औ ज्ञान में,
स्मरण किया सप्तर्षिवरों का ध्यान में।

तपोधनी वे प्रभा - वान नक्षत्र - से,
सप्त भुवन के सूर्य सहज एकत्र - से,
अरुन्धती के सहित शीघ्र प्रकटित हुये,
दिव्य दीप्ति से शुचि दिगन्त ज्योतित हुये।

पारिजात के रंजित पुष्प पराग से,
मद गन्धों से पूर्ण दिव्य दिङ्नाग-से,
नभ-गंगा के स्वच्छ जलों में स्नात वे,
दिव्य कान्ति से युक्त अमल अवदात वे,

मुक्तामय उपवीत रुचिर धारण किये,
स्वर्णिम वल्कल, रत्न-अक्ष-माला लिये,
आप्त-काम ऐश्वर्यों से युत सतत वे
कल्पवृक्ष-से हुये प्रव्रज्या निरत वे,

अश्वों को कर नमित झुका रथ की ध्वजा,
अर्पित कर आलोक-कुसुम की शुचि स्रजा,
रुचिर दीप्तियुत सप्त-वर्ण मधु पर्क से,
सादर अर्चित नभ में उज्ज्वल अर्क से,

पति के पद अंकों को सन्तत देखती,
अनुगति में ही निज पुनीत पथ लेखती,
तपः सिद्धि-सी अरुन्धती से युक्त वे,
हुये सुशोभित शाश्वत जीवन्मुक्त वे।

अरुन्धती को, मान्य मुनिवरों को तथा,
दे समान सत्कार, शम्भु ने सर्वथा
किया प्रमाणित, शील तपोव्रत धारिणी
महिलायें सम-गौरव की अधिकारिणी।

अरुन्धती को देख स्वपति के साथ में,
परिणय-आदर हुआ उदित भवनाथ में,
सत्पत्नी ही अखिल धर्म का मूल है,
और धर्म मे सदा श्रेय अनुकूल है।

कर शंकर का मान सविधि प्रमुदित मना,
करने लगे मुनीश प्रीति से वन्दना
"वेद पाठ औ सविधि यज्ञ के कर्म का,
आज हुआ फल प्राप्त अखिल तप धर्म का।

सबके उर में वर्तमान तुम हो सदा;
कृपा तुम्हारी नाथ! पूर्णतः कामदा,
प्रीति तुम्हारी देव अखिल वैभव - प्रदा,
भक्ति तुम्हारी सत्य - श्रेयदा सर्वदा

कर कृतार्थ, औ प्रीति सहित बहुमानकर,
किस सेवा के योग्य हमें निज जानकर,
किया अनुग्रह यह अपूर्व करुणा भरा,
तत्पर सेवा सदा आपकी शिव - करा।

जिससे जग मे हुई प्रतिष्ठा सिन्धु की,
उज्ज्वल तन्वी प्रभा मौलिगत इन्दु की
संवर्द्धित कर दशन किरण की कान्ति से,
बोले शंकर वचन शिवंकर शान्ति से —

"तत्वदर्शी मुनिवरो! तुम्हें अविदित नहीं,
शिव की कोई वृत्ति स्वार्थ के हित नहीं;
अष्ट मूर्तियाँ विश्व मध्य मेरी कथित,
हैं परार्थ मे सदा प्रकृति उनकी प्रथित।

असुरों के अत्याचारों से बहुमुखी,
देवों ने हो सब प्रकार अतिशय दुखी;
तज विलास कर सिद्धि हेतु तप साधना,
सेनानी के सृजन हेतु की याचना।

भूप हिमाचल सुता परम लक्षण-वती,
प्रीति हेतु कर रही कठिन तप पार्वती;
सफल बनाने दोनों की शिव-साधना,
हुई मुझे निष्काम परिग्रह कामना।

मर्यादा के सहित शुद्ध विधि शास्त्र की,
रक्षित करती सहित प्रीति शुचि पात्र की;
मर्यादा का बीज विश्व का धान्य है,
कन्या का कुल सदा लोक मे मान्य है।

दे विधिवत् बहुमान उन्हें आदृत बना,
भूप हिमाचल से कन्या की याचना
विनय सहित मेरे निमित्त जा तुम करो
वृत्ति-साम्य से तुम्हीं बन्धु मम मुनिवरो!

मन न प्रकृति के विप्लव से मम बाध्य है,
प्रकृति-नियम तो मुझे सहज ही साध्य है;
काम-दहन कर मर्यादा तप की बना,
हुई लोक हित-हेतु परिग्रह कामना।

धर्म और संस्कृति का कुल आधार है,
संस्कारों से साध्य शील आचार है;
उचित आत्म-अनुरूप सदा सम्बन्ध है,
मर्यादा मे जग-मंगल निर्बन्ध है।

उन्नत मन औ भाल, प्रतिष्ठावान हैं,
करते भुव का भार वहन हिमवान हैं,
शीलवान कुल-युक्त विरागी भूप हैं,
अतः हमारे सम्बन्धी अनुरूप हैं।

परिणय प्रसंग

जाकर औषधि-प्रस्थ हिमाचल राज से,
रानी मेना सहित सुबन्धु-समाज से,
करो प्रीति से कन्या की शुभ याचना,
हो कृतार्थ जिससे देवों की साधना।

मुनिवर के अनुरूप शील औ गुणवती,
आदरणीया अरुन्धती आर्या सती;
कर सकती इस क्रम में कुछ साहाय्य हैं,
नारी के अधिकार लोक के कार्य हैं।

संयमियों मे आदि स्वयं जगदीश की,
परिणय में लख प्रीति, प्रसन्न मुनीश की;
दूर परिग्रह व्रीड़ा भी सहसा हुई,
तपस्वियों की गृह-संगति मनसा हुई।

शंकर का अनुरोध गृहण कर शीष से,
लेकर विदा समोद जगत के ईश से;
व्योम मार्ग से हिमवत्पुर को वे चले,
लगते जिसके दृश्य दृगों को थे भले।

कर कृतार्थ धाता की रचना चातुरी,
वैभव मे कर अतिक्रान्त अलकापुरी;
सहज तिरस्कृत बना दिव्य अमरावती,
शोभित था वह नगर धन्य कर वसुमती

परिखा-से गंगाप्रवाह से था घिरा,
करती मानों वास स्वयं थी इन्दिरा,
मणि-शिखरों का बना सुदृढ़ प्राकार था,
ओषधियों का ज्वलित प्रकाश प्रसार था।

विविध पक्षिकुल कलरव जिनमे कर रहे,
थे विचित्र पुष्पों से उपवन भर रहे;
सिंहों को कर विजित नाग निर्भय बने,
बिल सम्भव थे अश्व जहाँ अनुपम घने।

किम्पुरुषों – से कलावान, औ रूप मे,
देव तुल्य, थे पुर जन नगर अनूप में
मुनियों से तप – शील, रूप मे अप्सरा
वनदेवी – सी वनितायें थीं नयपरा।

अर्चा के अनुकूल प्रशान्त प्रदोष मे,
गृह शिखरों मे लग्न घनों के घोष मे,
प्रमुदित उर की गिरा गगन मे गूँजती,
देवों को कन्यायें विधिवत् पूजतीं।

लिपटी जिन पर पुष्पवती सुर वल्लरी,
कल्प द्रुमों की शाखायें पुष्पों भरी;
मन्द पवन में अन्तरिक्ष में लहरती,
प्रकृत पताकाओं – सी चंचल फहरती।

ओषधियों के प्रभापूर्ण आलोक से,
रहते जीव प्रसन्न अहर्निश कोक – से;
अमा पथिक को थी न दिशा-भ्रम-कारिका,
निशातमों से थी न क्लिष्ट अभिसारिका।

वृक्ष लताओं मे चिर – काल वसन्त था,
चिर यौवन मय वयस सुरम्य अनन्त था;
मर्यादा औ तप से पावन प्रेम था,
धर्म मोक्ष से अर्थ – काम का क्षेम था।

कन्याओं के तपस्तेज सौन्दर्य से,
रहते असुर विभीत सदैव कदर्य-से;
पतिव्रता थीं धर्म-शील-युत नारियाँ,
शक्ति-रूप थीं अनवद्य सुकुमारियाँ।

सात्विक जीवन में न तमस् का लेश था,
असुरों का दृगशूल मात्र अवशेष था;
मणि-औषधि के दिव्य तेज से जग रहा,
वसुन्धरा के चूड़ामणि-सा लग रहा।

हिमवत्पुर को देख दिव्य मुनि वर्ग की,
मति में हुआ प्रतीत प्राप्ति हित स्वर्ग की
यज्ञादिक शुभ कर्म व्यर्थ ही वंचना,
श्रेष्ठ स्वर्ग से भू पर हिमवत्पुर बना।

वर्षा के उपरान्त मनोहर सूर्य की
माला सम स्पृहणीय प्रभा के पूर्य की
उतरे वे सप्तर्षि वेगयुत व्योम से,
रवि-से उज्ज्वल, किन्तु सुदर्शन सोम-से।

द्वारपाल लख रूप बहुत विस्मित हुये,
नम्र भूप ने पलकों से ही पग छुये;
कौतूहल मे युत दर्शन के व्याज से
सत्कृत हुये समोद समस्त समाज से।

विधि प्रयुक्त सत्कार सहित कर अर्चना,
भूप हिमाचल ने अतीव हर्षित-मना,
अरुन्धती युत मुनियों को वन्दन किया,
अन्तःपुर का नययुत पथ दर्शन किया।

वेत्रासन पर बिठा उन्हें सत्कार से,
कर आसन परि-ग्रहण स्वयं नय भार से;
बैठे भूपति स्वयं जोड़ कर अञ्जली
अभिवादन युत सहज वचन चर्चा चली,

"वर्षागम – सा मेघोदय के ही बिना,
फल – आगम-सा कुसुमोद्गम के भी बिना;
देव! आपका दरस बिना ही कल्पना
सहसा प्राप्त प्रहर्ष और विस्मय बना।

अधिष्ठान हो पुण्य सज्जनों का जहाँ,
बन जाता है तीर्थ लोक में बस वहाँ;
आत्मशुद्धि के हेतु आज से लोक का,
तीर्थ बना मैं हर्त्ता मन के शोक का।

विष्णुपदी के सिर पर पावन पात से,
और आपके चरण – नीर अवदात से;
दो से ही मैं पूत स्वयं को मानता,
मन की कर ने पाई आज समानता।

चरणार्पण से मम प्रदेश पावन हुआ,
दर्शन से मन, परिचर्या से तन हुआ;
आत्मा का आलोक आज भासित हुआ,
सेवा से कृतकृत्य आज शासित हुआ।

दिव्य आपके हुआ तेज से ध्वान्त का,
अपनय केवल नहीं गुहातम – प्रान्त का,
रज से भी पर तम मम अन्तःकरण का,
दूर हुआ पा पुण्य अनुग्रह चरण का।

पूर्णकाम है आप, प्रयोजन-कल्पना
अनवकाश है, अतः यही मम तर्कना,
करने पावन गेह, हरण सन्ताप का
हुआ पदार्पण आज अचानक आपका।

फिर भी कुछ आदेश उचित मेरे लिये,
प्रभुओं का विनियोग अनुचरों के लिये
है प्रसाद, मैं और अखिल मम सम्पदा,
अर्पित सेवा हेतु आपके सर्वदा।

सेवा के ही हेतु विभव और अर्थ है,
सेव्य आप, यद्यपि सब भाँति समर्थ हैं।"
नृप के वचन प्रशस्त शील औ नीति से
सुन मुनि गद्गद् हुये कृपा औ प्रीति से।

ऋषियों में अग्रणी गुरूपम अंगिरा,
प्रत्युत्तर मे बोले भूपति से गिरा;
"यह विनम्र औदार्य आपके योग्य है,
त्याज्य धर्म में अखिल अर्थ उपभोग्य है।

मन की उन्नति शिखरों के अनुरूप है,
तन से भी बढ़ हृदय आपका भूप है;
विष्णु-रूप-सा उन्नत और उदार है
हृदय चराचर भूतों का आधार है।

भूभृत् वर! तव स्नेहपूर्ण सहयोग से,
भू धारण कर रहा शेष मृदु भोग से;
पुण्य-प्रवाहा सरितायें तव कीर्ति-सी
करती लोक पवित्र, सरस चिर प्रीति-सी।

विष्णु पाद से श्लाघ्य पूर्व निःसृत यथा,
तव उन्नत – शिर सूत श्लाघ्य गंगा तथा;
शैल देह को अर्पित कर सब कठिनता,
भक्ति नम्र तव देह सदाराधनरता।

श्रेयभाक् उपदेश मात्र का मिस लिये,
हुआ आगमन यहाँ हमारा जिस लिये,
फल भागी हैं आप अखिल इस कर्म के,
कुल – मंगल के साथ कृतार्थी धर्म के।

अणिमादिक से युक्त, अलंकृत चन्द्र से,
वरुणादिक से सेव्य सुवंदित इन्द्र से;
अष्टमूर्ति से व्याप्त विश्व को कर रहे,
करुणा के मंगल से त्रिभुवन भर रहे;

जिनका पद आत्मा का ध्रुव परमार्थ है,
जिसे प्राप्त कर होता जीव कृतार्थ है;
तपोयोग से पालक शाश्वत धर्म के,
वही सदाशिव साक्षी जग के कर्म के,

करते भूपति तव कन्या की याचना,
वचन हमारा केवल संवाहक बना;
होती गिरा कृतार्थ अर्थ से संयुता,
होगी शिव से तथा तुम्हारी नृप सुता।

इष्ट देव को यथा समर्पित कर स्रजा,
सद् भर्त्ता को अर्पित कर के आत्मजा;
होते माता पिता पूर्ण कृतकृत्य हैं;
करके आश्रम सफल, साधते सत्य हैं।

अखिल चराचर जीवों के शिव हैं पिता,
हो कन्या तव जगमाता चिर वन्दिता,
चूड़ा मणि की किरणों से कर रंजना
उमा चरण की, देव करें शिव वन्दना।

उमा वधू औ दाता ऐसे भूप हैं,
शिव वर, याचक हम उनके अनुरूप हैं,
अलं आपको कुल वैभव का हेतु हो
यह सम्बन्ध पवित्र, विश्व का सेतु हो।

करते ऋषि मुनि जिनकी नित आराधना,
जग मंगल के हेतु परिग्रह कामना,
हुई उन्हें अभिजात आत्म अनुबन्ध से,
बनो विश्व – गुरु के गुरु इस सम्बन्ध से।"

इस प्रकार देवर्षि वचन को सुन रही,
फिर फिर लीला – कमल – पत्र – दल गिन रही
कर नत आनन – नयन विपुल लज्जावती
पास पिता के बैठी कन्या पार्वती।

पूर्ण काम भी नृप ने निज को मान कर,
मेना – मुख की ओर नयन सन्धान कर,
किया भाव का परामर्श, कन्यार्थ में
होते गृहिणी – नेत्र गृहस्थ यथार्थ में।

देख अयाचित सिद्ध स्वपति की कामना,
मेना भी अनुकूल हुई हर्षित – मना;
भर्त्ता के इष्टों मे अव्यभिचारिणी,
पतिव्रतायें होतीं पति – अनुसारिणी।

मेना के नयनों की प्रमुदित प्रेरणा
कर नयनों से ग्रहण, विपुल पुलकित मना
ले भूपति ने मंगल में समलंकृता
भिक्षा-सी मुनियों को अर्पित की सुता।

बोले 'शिव को अर्पित कर निज पार्वती,
आश्रम फल पा आज हुये हम चिर कृती।"
औ गिरिजा ने झुका चरण में शीश को,
विधिवत् किया प्रणाम विनम्र मुनीश को।

मुनिवर बोले "महादेव की भामिनी,
बन कर गिरिजा हुई विश्व की स्वामिनी;
हुई वन्दनीया तुम अखिल त्रिलोक की,
अन्त हुई अब निशा विश्व के शोक की।

सफल सुरों का आज तपः साधन हुआ,
पूर्ण हमारा आज यहाँ याचन हुआ;
सरल शम्भु का आज विश्व धारण हुआ,
आज विश्व हो मंगलयुत, पावन हुआ।

श्री भी लज्जित सहज तुम्हारी लाज मे,
हुई हमारी भी पूज्या तुम आज से;
बनी स्वामिनी आज स्वयं जगदीश की,
अर्पित करते हम अर्चा आशीष की।

तुम त्रिभुवन की करुणा मंगल मूल हो
जगदम्बा तुम भक्तों के अनुकूल हो;
शिव-सागर की वेला-सी चिर मंगला
रहो विश्व-परमार्थ-मन्त्र की अर्गला।

शीश – गता गंगा जग पावन कर रही,
भाल – गता शशिकला लोक – तम हर रही;
अंक गता तुम करो विश्व मंगल सदा,
रहें ईश अनुकूल हमारे सर्वदा।"

अर्चा – सा आशीष शीश से ग्रहण कर,
अरुन्धती की ओर विलज्जित गमन कर,
पतिव्रता के चरण मृदुल कर से गहे
मौन उमा ने, मेना के लोचन बहे।

रख वर – से युग पाणि उमा के शीश पर,
मृदु वचनों में स्नेह सिक्त आशीष भर,
विलज्जिता नव वधू उमा – को गोद में
बिठा, मग्न – सी गद्‌गद् हर्ष प्रमोद में

बोली विह्वल वचन मधुर स्वर में सती,
"मिला अनन्य सुहाग तुम्हीं को पार्वती;
बन विरक्त की भाग्यवती शुभ सम्पदा,
बन योगी की सिद्धि सनातन कामदा,

भव को शंकर बना विश्व मंगल करो,
स्नेह शान्ति से जगती का अंचल भरो;
रहे लोक का लक्ष्य तुम्हारा गृह सदा,
रहे सिद्धि का पथ तव जीवन सर्वदा।

सफल आज है रतिवन्ती की साधना,
रति के तप से, दग्ध काम जीवित बना;
उमे! तुम्हारी सुकृति लोक की रीति हो
करे काम को पूत, तपो – मय प्रीति हो।

शिव से संयुत शक्ति महादेवी सती,
रूप, शील, सौन्दर्य, स्नेह से कृतिमती;
असुर-उपप्लव में मर्यादा क्षेम की,
जय लक्ष्मी तुम बनो शील औ प्रेम की।

कन्या के वियोग से व्याकुल हो रही,
हर्ष, स्नेह, करुणा विभ्रम में खो रही,
अश्रुमुखी मेना माता की ओर को,
फेर स्नेह से सिक्त नयन की कोर को,

अरुन्धती ने आश्वासन स्वर में कहा,
"कन्या का वियोग यद्यपि दुःसह महा,
रानी! कन्या नहीं किसी की सम्पदा
उत्तम वर की वरणीया वह सर्वदा।

कर प्रसूत मैनाक पुत्र को विक्रमी,
धन्य हुई तुम यथा दिशा जनकर तमी;
कुल की कीर्ति समृद्धि तुम्हारा पुत्र है,
इह सुख-यश का स्रोत, प्रशान्ति अमुत्र है।

कन्यारत्न अपूर्व तुम्हारी पार्वती,
हुई न तुम्हीं कृतार्थ, किन्तु यह वसुमती,
पाकर शिव-सा श्रेष्ठ और दुर्लभ महा
अद्वितीय वर, प्राप्य न कुछ तुमको रहा।

सफल हुई तव गौरव-मय गृह साधना,
ऋषि मुख से की स्वयं सुता की याचना;
उन्नत कुल और मान तुल्य तव भाग है,
श्रेष्ठ सुता के शील-समान सुहाग है।

बन कर शिव की शीलवती अर्द्धांगिनी,
शक्तिमती शंकर की जीवन – संगिनी;
होगी मंगल मूल विश्व की पार्वती,
धन्य हुआ कुल और पिता माता कृती।

तप, संयम औ ध्यान – योग में प्रीति – सी,
बन विरक्ति में मधुर लोक की रीति–सी,
स्थाणुभाव में अन्तर्तम अनुभूति – सी,
अपरिग्रह में उत्तम विश्व – विभूति – सी,

बनकर शिव की शिवा तुम्हारी पार्वती,
होगी जगदीश्वरी अखिल – मंगल – मती;
उत्तम विधि से पूर्ण धर्म कर लोक का,
रहा न अब अवकाश शान्ति मे शोक का।"

अरुन्धती के वचन सान्त्वना से भरे
सुन, मेना के नयन कमल– दल –से झरे;
अंचल से दृग पोंछ, उमा को अंक मे
लेकर बोलीं "रत्नवती - सी रंक मैं

अर्पण कर निज रत्न अतिथि सत्कार मे,
हुई आज कृतकृत्य देवि! संसार में;
हुई पराई आज हमारी पार्वती,
आप हमारे हुये इसी से हम कृती।

हुआ हमारा आज भाग्य उत्कर्ष है,
उमड़ रहा यह मेरे उर का हर्ष है,
आँसू मेरे देवि! अर्घ्य हैं आपके,
अमित अनुग्रह नित अनर्घ्य है आपके।"

अरुन्धती की कर अनेक विध सत्क्रिया,
हुई शान्त जब मौन हिमाचल की प्रिया;
दे ममता को धैर्य विनय के व्याज से
मेना ने शुभ तिथि पूछी मुनिराज से।

कर विचार से निश्चित मंगल - तिथि भली,
चली सहित आमोद ब्रह्म-ऋषि मण्डली
भूप हिमाचल ने सबको अति तुष्टिदा
की आदर सत्कार सहित उनकी विदा।

ले आदर - युत विदा समुद कैलास को,
मनोवेग से गये उमेश निवास को;
नृप निकेत का मान निवेदित सब किया,
शिव ने भी सम्मान उन्हें समुचित दिया।

बोले शंकर हर्षित हो अति प्रीति से
"बन्धु! करो सब कार्य तुम्हीं अब नीति से,
बनो तुम्हीं अध्वर्यु प्रणय के याग के,
तुम ही भागी बनो पुण्य के भाग के।

विधि का सब सत्कार्य आपका भार है,
चरित आपका पावन शिष्टाचार है;
स्नेह सहित सम्पन्न उसे कर मुनिवरो,
जग मंगल की सिद्ध भूमिका शुचि करो।"

हो प्रसन्न मुनि गये शीघ्र निज धाम को,
शंकर करते स्मरण उमा औ काम को,
कठिन कल्प - से पल यापन करने लगे,
तपोधनी में तीव्र भाव नूतन जगे।

लेकर मुनियों को साथ पुलक भर तन में,
प्रासाद कक्ष से निकले हर्षित मन में,
गिरिराज हिमाचल और मेनका रानी,
थी अरुन्धती के संग उमा कल्याणी।

अवरोध – द्वार पर मुनियों ने कुछ रुक के
मेना का वन्दन किया विनय से झुक के,
बोले "कृतार्थ हम हुये कृपा से रानी!
शिव के वैभव से होगी उमा भवानी।

शिव के सेवक फिर होंगे अतिथि तुम्हारे,
सत्कार सदा ही सुलभ हमें अब सारे;
यह स्नेह, शील, सौजन्य राज मन्दिर का,
होगया हमें अब कुसुम कुटीर – अजिर का।"

यह कहकर मुनिवर बढ़े ओर उपवन की,
माथे पर ली मेना ने धूलि चरण की
शुचि अरुन्धती की, और अश्रुभर बोली,
"करुणा से जीवन ग्रन्थि हमारी खोली।"

चरणों पर पड़ती अंक उमा को भर के,
मंगल वर – सा कर मृदुल शीश पर धर के,
बोली गद्गद् स्वर, "तुमने तप से बेटी,
सौभाग्य – शील मे विश्व – विभूति समेटी।

तप से कर रूप कृतार्थ प्राप्त कर शिव को,
निर्दिष्ट किया शिव मार्ग भूमि औ दिव को;
शुचि स्नेह – शक्तिमय अचल अखण्ड तुम्हारा,
सौभाग्य बिन्दु हो जगती का ध्रुव तारा।"

देकर नव नव आशीष भाव भर भर के,
मेना रानी को विदा किसी विध करके,
मुनियों के पीछे क्षेममयी छाया-सी.
विरतों की तप से पूत अमल माया-सी।

उपवन पथ में आ अरुन्धती कल्याणी,
बोली भूपति से भाव भरी शुचिवाणी,
"राजन्! मेना-सी पा महीयसी रानी,
कृत-कृत्य हुये कुल-आश्रम के अभिमानी।

है विश्व मंगला कीर्तिमती तव कन्या,
दिव होगा इससे दिव्य, धरित्री धन्या;
शिव-चन्द्र-कला की अभिनव कान्ति बनेगी,
तमपूर्ण विश्व मे ज्योतिष्पन्थ रचेगी।"

बोले भूपति, "करुणा से शिव-शंकर की
औ अनुकम्पा से अभ्यागत मुनिवर की
कृत कृत्य हुये हम, पावन गेह हमारा
यह हुआ आपके पद अर्पण के द्वारा।"

इस भाँति परस्पर क्रम से अभिनन्दन के
आ गये द्वार पर अनायास उपवन के,
राजा के उर-सा ही विशाल औ गहरा
था रहा मानसर सन्मुख निर्मल लहरा।

बोले मुनिवर, "अब राजन्! विदा, विजय हो,
उन्नत विशाल ऐसा ही विश्व हृदय हो,"
कर जोड़ जोड़ अभिनन्दन में अनुरागे,
चल दिये उभय निज भिन्न पथों में आगे।

सत्कृति की स्मृतियों का ले सम्बल भारी
मुनि वर्ग चल दिया, शंकर का अनुकारी
आकाश मार्ग से, सहज योग के बल से,
उड़ चले मानसर से हंसों के दल - से।

आलाप - व्याज से लंघित कर उपवन को,
नृप फिरे अलक्षित उत्सुक राजभवन को;
थे संग सचिव औ अनुचर थे अनुगामी,
पाते सहर्ष सेवा नित स - हृदय स्वामी।

मुनि चले गये यद्यपि ले स्नेह - विदाई,
तप की विभूति सर्वत्र ज्योति - सी छाई;
वह अरुन्धती के स्नेह - शील की छाया,
अन्त.पुर मे छाई बन मनहर माया।

छाये उत्सव के पर्व नवीन निराले
खिल उठे सत्य बन स्वप्न दृगों मे पाले,
नव सुमनों से फूली उपवन की क्यारी,
आमोद हर्ष से थे प्रफुल्ल नर - नारी।

प्रतिध्वनि - सी मेना माता के अन्तर की,
कुल - कन्यायें सम्मिलित समस्त नगर की;
अन्तःपुर में गा उठीं सहर्ष बधाई,
औषधिप्रस्थ मे हर्ष - रागिनी छाई।

छाया अपूर्व उत्साह समस्त नगर में;
पुरवासी तत्पर हुये, हृष्ट अन्तर में,
उत्कृष्ट योजनाओं में प्रिय उत्सव की,
कवियों - सी सबको कांक्षा थी अभिनव की।

दूतों से आमन्त्रण उत्सव का पाते
उत्सुक सहर्ष प्रिय बन्धु, सुहृद्‌गण आते,
उल्लास हर्ष से प्लावित अन्तःपुर था
कर व्यग्र कार्य से और प्रफुल्लित उर था।

प्रहरी से सूचित एक अतिथि नव आता,
स्वागत का नव सद्‌भाव द्वार पर छाता;
अन्तःपुर होता हर्षित कल्पद्रुम – सा,
प्रमदावन में खिल उठता नवल कुसुम सा।

गुंजित वधुओं के मधु मंगल – वादन से,
कूजित कन्याओं के लीला गायन से,
पूरित शिशुओं के हर्षित कोलाहल से,
पुर पर्व – तीर्थ – सा शोभित था हलचल से।

वैवाहिक मंगल – विधियों से बहु, पुर के
गृह गृह में व्यग्र वधू-जन भरते उर के
अनुराग पूर्ण निज भाव चाव से कृति में,
अन्तर का था उल्लास भरा आकृति मे।

चित्रित कर द्वार – गवाक्ष, चौक थे पूरे,
मन की कांक्षा मे थे सब कार्य अधूरे;
सुषमा से सज्जित भवन 'गवाक्ष – नयन से
थे देख रहे अपरों में छवि – दर्पण – से।

सज्जा औ व्यापारों के संकुल क्रम से,
पौरों के निश्छल स्नेह, अयाचित श्रम से
अन्तःपुर से एकात्म, प्रमोद – विपुल – सा,
लगता समस्तपुर एक प्रफुल्लित कुल – सा।

हर्षित थे देव अपूर्व प्रीति से हर की,
विस्मित थे शोभा देख समस्त नगर की,
उत्सव का हर्षाऽऽलोक चतुर्दिक छाया,
जागरित हुई थी नन्दन की मधु माया।

भावी आशा से आश्वासित अन्तर मे,
बन बन्धुजनों - से देव पुनीत प्रहर मे,
गिरिराज हिमाचल के गुरु आयोजन मे,
करने आये सहयोग प्रहर्षित मन में,

अप्सरियों से युत देवों के दल आये
औषधिप्रस्थ मे नये कुतूहल छाये,
स्वागत सत्कार ग्रहण कर अमित विनय से
हो गये बन्धु - से कार्यों मे तन्मय - से।

मैनाक पुरस्कृत औ मेना से सत्कृत,
युवरानी द्वारा अन्तःपुर मे आद्दत,
फैली प्रांगण में ज्योतिमती अप्सरियाँ,
मानस मे ज्यों राका से दीप्त लहरियाँ।

बालाये होकर आ - चंचल अलिनी - सी,
वधुयें समेट कर अंचल निज नलिनी - सी।
हो मौन कुतूहल औ विस्मय के क्षण में
करतीं रहस्य आलाप विनम्र नयन में।

लख मन्द गान बोली हँसकर युवरानी,
'उत्सव को करे कृतार्थ स्वर्ग की वाणी,
अप्सरियों के स्वर नूपुर के निस्वन मे
थे गूंज उठे विस्मय से राज - भवन में।

उद्यान शिविर में हर्षित किन्नर गाते,
गन्धर्व नाचते, यक्ष समोद सजाते
पथ-द्वार स्वप्न का रूप सत्य में भर-सा
ओषधि-प्रस्थ शोभित था स्वर्ग अपर-सा।

बिखरी विभूति मानों त्रिभुवन की सारी,
थे दिव्य-रूप आनन्द-मग्न नर-नारी,
विस्मित विमुग्ध थे अतिथि देख छविमाया,
सबने सदेह-सा स्वर्ग सहज ही पाया।

साकार प्रीति-सी सबके उत्सुक उर की,
थी उमा बनी आत्मा-सी अन्तःपुर की;
सबके नयनों में था उसका ही सपना,
करते थे बहुविधि स्नेह व्यक्त सब अपना।

परितोष पिता को था कन्या-परिणय में,
मुद्रा से थे गम्भीर, प्रसन्न हृदय में;
पुत्रों से बढ़कर किन्तु उमा इस क्षण में
थी प्राणभूत-सी करुण पिता के मन में।

पाकर कन्या के अर्थ श्रेष्ठ वर माता,
मन में कृतार्थ थी, हर्ष न हृदय समाता;
करके विछोह का ध्यान, देख कर पीले,
होता था गद्गद् हृदय और दृग गीले।

घिर रहीं उमा की इच्छा की अनुकृति-सी,
सखियाँ धाता की चरम स्नेह-संसृति-सी,
हँस हँस विनोद से पल पल आतीं जातीं;
पुत्री को लख भरती माता की छाती।

मैनाक मौन बहु कार्यों में तत्पर था,
आश्वस्त पिता औ माता का अन्तर था,
लख निकट बहन की पावन परिणय वेला,
था हृष्ट हृदय में ममता द्रवित अकेला।

मंगल मुहूर्त्त में हर्षित पुलकित मन मे,
गा गा कर मंगल गीत रुचिर आँगन में,
पति – पुत्रवती सौभाग्य – शालिनी नारीं,
करती प्रसाधना उमा – अंग की प्यारी।

पीले उबटन से अंग – लता शुचि गोरी,
खिल उठी चाँदनी ज्यों केशर में बोरी;
शारदी प्रकृति मे नव वसन्त ज्यों आया,
राका पर मानों पड़ी उषा की छाया।

सज्जित कटि में दीचा विधि के नव शर से,
खिल उठी उमा नलिनी – सी नव रवि कर से;
संयोग शक्ति का श्री में था भयहारी,
शक्तिश्री – सी थी शोभित शैल कुमारी।

नारी की सुन्दर सज्जा को संस्कृति – सी,
अबला की दुर्बल लज्जा की ध्रुव धृति – सी;
जागरित हुई जो शक्ति योग से मन में,
प्रस्फुटित हुई वह अलंकार बन तन में।

गुरु तप से श्री में शक्ति समागम करके,
श्रद्धा मे कृति का बल संबल – सा भर के;
असुरों का करके दलन शान्ति स्थापन को,
हो रही समुद्यत शिव के शक्ति वरण को।

तप से कर संस्कृत रूप - स्नेह तन - मन का,
आत्मा में संचित कर बल आराधन का;
शुचि क्रिया - शक्ति से संयुत श्री कल्याणी
बन रही आज भव के अनुरूप भवानी।

तन में उबटन कर हलदी का तैलांचित,
कर गन्ध द्रव्य के अंगराग से किंचित
सुरभित तन को, अभिषेक वसन ले कर में
ले चलीं स्नान हित वधुयें पुण्य प्रहर में।

हर्षित अन्तर से पुलकित कोमल कर से
दे देकर बहु आशीष स्नेह के वर - से,
कंचन कलशों से मंगल स्नान कराया,
मंगल वादन का घोष चतुर्दिक छाया।

मंगल स्नानों से उज्ज्वल - तन अवदाता,
खिल उठी द्विगुण वह तपःपूत अभिजाता;
धारण कर उद्गमनीय वस्त्र सुकुमारी
खिल उठी उषा मे राका की उजियारी।

लम्बित केशों का जूट शीश पर बाँधे;
सद्यःस्नाता शुचि उत्तरीय को साधे,
बर्षातप - सी शुचि कान्ति वदन में धारे,
ले ललनाओं के कर के मृदुल सहारे

रखती श्रद्धा से गिन गिन चली चरण को,
जित शिव के मानों फिर से विजय करण को;
परिणीया भी वह शुद्ध शील - छवि - शीला,
थी तपस्विनी का धरती भाव लजीला।

अंगों में पुलकित, लज्जित किंचित मन में,
बैठी गिरिजा श्री-सी शृंगार भवन में,
सौभाग्यवती वधुयें थीं उसको घेरे
ले ले हाथों में रत्नाभरण घनेरे।

निर्व्याज रूप लख पूत उमा के तन का,
औ सरल भाव लख उसके भावुक मन का,
भावों के भ्रमरों में तरिणी सी डोलीं,
मन मे विस्मित, सस्मित वाणी से बोलीं —

'है रूप सहज शृंगार उमा के तन का,
छाया अंगों में ओज तपस्वी मन का,
सब अलंकार इसकी छवि पर बलिहारी,
मेना के घर में लक्ष्मी स्वयं पधारी।"

शृंगार पीठ पर आग्रह से आसीना,
किन किन भावों में कवि-बाला-सी लीना;
तापस-बाला-सी वह शृंगार-सदन में,
तप निरता रति-सी राजित काम-भवन में।

छवि-तेज-शील की सीमा-सी सुकुमारी,
तप-शुद्ध स्नेह-सी प्रभावती मनहारी,
आलोकित सारा भवन रूप से करती
सखियों के मन में भाव अनेकों भरती

भावों से विह्वल, पुलकित मोहित मन में,
ममता की करुणा भरे रुचिर आनन में,
अन्तर में श्रद्धा भरे वधू जन धरतीं —
अंगों में आभूषण, या पूजन करतीं!

आशीष समान बढ़ाकर पाणि सुकोमल,
कर स्पर्श जूट का खोले लम्बित कुन्तल,
राका शशि-से उज्ज्वल आनन को घेरे,
आ-क्षितिज घनों-से शोभित हुये घनेरे।

प्रातर्यामा के विगलित तारक-गण-से,
केशान्त-भाग से झरते मुक्ता-कण-से;
ले वारि बिन्दुओं को शिशुओं-सी कर में,
ललनायें भर मन मोद सुहास अधर में

मृदु गन्ध धूप के पास यत्न से करके,
ऊष्मा से किंचित आर्द्रभाव को हर के;
रचती अलकों में रत्न-कुसुम की श्रेणी,
दूर्वायुत पाण्डु मधूक-दाम से वेणी।

सुन्दर शिरीष के कुसुम सदृश, रत्नांकित
कंचन के कर्ण फूल कानों में लम्बित,
स्पन्दन की गति से मन्द मन्द थे हिलते,
रंजित कपोल की छवि से दूने खिलते।

मंजुल मृणाल-सी बाहों मे यत्नों से,
कंचन से निर्मित, जटित विविध रत्नों से;
उत्तम आभूषण सकुच सहित पहनाये,
छवि से शोभित हो अलंकार कहलाये।

थे किये जिन्होंने मान भंग नित स्मर के
उत्पल-से युग चरणों को रंजित कर के,
अरुणाभ अलक्तक से बोली सुकुमारी,
"इन चरणों पर हो नित शंकर बलिहारी।"

बोली अपरा झुक एक सखी के ऊपर,
"हो धन्य शशिकला इन चरणों को छू कर;"
आशीष ग्रहण कर लज्जित नम्र निराला
निर्वचन उमा ने मारी सस्मित माला।

बोली अपरा अंचल में मृदु मुसकाती,
"इन चरणों पर त्रिभुवन की श्री बलि जाती;
शिव शीषगता गंगा की निर्मल धारा
हो पूत पदों के नित प्रच्छालन द्वारा।

होते कृतार्थ दृग जिनके दर्शन भर से
अभिजात कान्तिमय आयत इन्दीवर – से;
उन नयनों मे मंगल – मति से बस अंजन
आली ने अंजित किया – न मान प्रसाधन।

"अकलंक कान्ति से जिसने शशि को जीता,
शशिकला करेगी विजित शीघ्र परिणीता;
दे रही उसे क्यों दो दो आलि! दिठौने,
जादूगरनी को लगते कभी न टौने।"

पर्याप्त प्राय शृंगार उमा का करके,
सौभाग्यवती के मन में मंगल भर के;
उज्ज्वल मस्तक पर बिन्दु रुचिर सिन्दुर का
आंका, भर उसमे राग समुत्सुक उर का।

करके शृंगार उमा का पुलकित होतीं
सखियाँ विह्वल – सी पल पल हँसती रोतीं,
हो रहीं धन्य सौभाग्य – रूप से मन में,
थी एक अलक्षित करुणा पर आनन मे।

अपरूप रूप सौभाग्य बिन्दु से अंकित
खिल उठा अयुत गुण, कर सखियों को विस्मित,
किस पुण्य योग में मंगल मंगलकारी
आया राका के शशि का बन सहचारी।

अपरूप कान्ति से तप.पूत यौवन की,
कर रही अलंकृत छवि को आभूषण की;
उडुगन – से थे राका के रूप – निलय के,
बुद्बुद – से छवि – सागर में रूप – उदय के।

बहु विध रत्नों के आभरणों से सज्जित
कर रही प्रफुल्लित कल्पलता को लज्जित,
नक्षत्र तथा ग्रहमयी निशा सुकुमारी,
होती विहंगयुत सरिता – सी बलिहारी।

अंगों की अमित निसर्ग रूप छवि खिलती,
आभरणों की आभा उसमें ही मिलती;
कुसुमों – से करते देहलता को मण्डित
अंगच्छवि से थे होते स्वयं अलंकृत।

मृदु नर्म हास से सखियों के सकुचाती,
परिपूर्ण उमा की सज्जा से सुख पाती,
किस शीलवती ने मृदु कर सहज बढ़ाया,
सिर पर हरिताम्बर उसको रुचिर उढ़ाया।

आधे – घूँघट की छाया में – सी हलकी,
सौभाग्य शील की छवि आनन से झलकी;
आ – नमित क्षितिज की कोरों से शिशु रवि की,
उद्वेलित होती ज्यों आभा – सी छवि की।

धीरे से एक सखी ने सहज घुमा के,
आ-नमित वदन के सम्मुख मौन उमा के,
दर्पण रख दीर्घ सुदीर्घ नयन से देखा,
लज्जित मुख पर भी दौड़ गई स्मिति-रेखा।

लखकर अपनी सज्जित छवि को दर्पण में,
स्मिति से लज्जित निज हुई उमा भी मन में,
प्रथमालोकन को अभिमुख आनन हर-का,
हो आया उसको स्मरण, दहन वह स्मर का।

लेकर अतीत की स्मृतियों की मधु छाया
औ भव्य कल्पनाओं की मोहन माया,
रजनी की नत पलकों मे मधुरस पागे
तारों-से सपने उमा-नयन मे जागे।

भावों में आत्मविभोर भान-सा भूली,
अन्तर मे, लेकर रुचिर कल्पना-तूली,
अंकित करती उस योगव्रती के सपने,
आभूषण लखती चकित दृगों से अपने।

लख चकित उमा को एक सखी यों बोली,
(स्मिति ने विनोद मे रस-विभूति-सी घोली)
'योगी विरक्त वनवासी तापस त्यागी,
इन आभरणों से होंगे अब बड़ भागी।"

वर्जित कर उसको अपर सखी यों बोली,
"श्री भी इसके हित लेती अक्षत रोली,
सीमा निसर्ग छवि की है उमा हमारी,
साकार हुईं नारी-विभूतियाँ सारी।"

"सीमा निसर्ग सुन्दरता की, क्या इसको
आभरणों की आकांक्षा, जग में जिसको
हो मिला अल्प सौन्दर्य, उसे ही मन में
होती आकांक्षा अलंकार की तन में।

आदिश्री – सी यह उमा मूर्ति – सी छवि की,
नैसर्गिक कविता – सी यह जग के कवि की;
इसका कुदृष्टि से समुचित गोपन करने
यह अलंकार - आरोप किया है हमने।

हो रहे अलंकृत अलंकार ही छवि से
इसके अंगों की, नक्षत्रों - से रवि से;
राका ज्योत्स्ना – सी आभा में आनन की,
हो रहे लीन ये आभा – से उडुगण की।

है सत्य वेष वनिताओं का समलंकृत
होता पति के प्रेमालोकन से आदृत,
उपकरण मात्र हैं किन्तु रूप के भूषण,
अनलंकृत मुख ही प्रमुख ज्योति का पूषण।

मुख की छवि से भी अधिक भाव अन्तर का,
बनता आकर्षण मर्म – पारखी वर का;
सद्भाव, स्नेह औ शील शुद्ध बस मन का,
उत्तम आभूषण है ललना – जीवन का।

तप से शंकर को प्रेम प्रमाणित करके,
रस में विभूति पावन आत्मा की भरके,
यह स्नेह, शील औ छवि की मूर्ति अनन्या,
करके कृतार्थ कुल, हुई विश्व में धन्या।

राका शशि से उद्वेलित रत्नाकर भी
सकता मर्यादा भंग न कर अणु भर भी,
तो एक कला से अंचित इसकी छवि को
क्या दीप्त करेंगे ये दीपक-से रवि को।

नैसर्गिक सुन्दरता की सीमा-वेला,
छू सकता यौवन-ज्वार मात्र अलबेला;
तट के सीपों-शंखों-से रत्नाकर के,
ये अलंकार हैं इस निसर्ग सुन्दर के।

वय सन्ध्या में कैशोर तथा यौवन की,
सन्ध्या की दीपशिखा-सी द्युति भी तन की,
था स्नेह कान्त का बढ़ती और निखरती,
होती दीपित औ जग आलोकित करती।

तप से शुचि स्वर्ण-प्रदीप देह का जिसका
निखरा, औ अक्षय स्रोत स्नेह-का जिसका
अधिकार बना, छवि-दीप-शिखा वह जग की,
होगी दृग-अंजन और ज्योति शिव-मग की।

यह पुण्य आरती दिव्य तेज की शिव के,
ज्योतित मन मन्दिर करे भूमि औ दिव के,
यह प्रेमयोग गौरी का तप औ नय से
होगा नारी का दर्पण शुद्ध हृदय से।

रत्नांकित आभूषण निज भाव-सुमन-से
कर रूप शिखा पर अक्षत-से अर्पण-से,
हमने भी छवि देवी की अर्चा कर ली;
सपनों-से शुचि सुहाग की झोली भर ली।"

इस भांति चल रही रूप शील दर्शन की
मीमांसा परिषद् में शृंगार भवन की;
जब तक आ निकली उधर मेनका रानी,
ललनाओं को लख बोली वह कल्याणी।

"देकर सुहाग का स्नेह इसे तुम सबने,
कर दिये सत्य कितने हृदयों के सपने;
जायेगी यह कर सूना गेह हमारा,
होगा तुम सबका स्नेह सदैव सहारा।"

कुल कामिनियों का कर उर से अभिवादन,
लखकर कन्या का रुचि परिपूर्ण प्रसाधन
विस्मित नयनों मे भाव अनिर्वच झलके,
पलकों पर दो आँसू ममता - से छलके।

हरिताल - आद्र - द्रव लेकर निज अङ्गुलि - से
सम्पुटिक उसे कर मंगलमय मनसिल से,
शुभ तिलक लगाया उठा उमा के मुख को,
माता के उर के कौन जानता सुख को।

यौवन उद्गम से अनु - प्रवृद्ध क्षण क्षण में,
जो भव्य मनोरथ था मेना के मन में;
लख आज उसे भी सफल, प्रसन्न हृदय से
हो रही सुशोभित सुन्दर शील विनय से।

मेना के दृग थे भरे प्रभात कमल - से,
हो रही आकुलित दृष्टि हर्ष के जल से;
वह लगी बाँधने गद् गद् - सी अन्तर में,
मंगल का कंकण मृदुल उमा के कर में।

आकुलित – दृष्टि, औ विह्वल – सी अन्तर में,
अर्पित करती शुचि कंकण स्थानान्तर में
धात्री ने करुणा – स्मिति को रोक अधर में
बँधवाया समुचित शान्त उमा के कर में।

मंगल – द्रव्यों की ग्रन्थि सहित शुचि कंकण
यौवन – राका में करता रुचिमय अंकन
पावन सुहाग की मंगलमय ऊषा का,
बनकर सर्वोत्तम अलंकार भूषा का।

मंगल क्षण में वारण अनिष्ट का करने,
छवि पर कुदृष्टि का अन्तराय – फल हरने,
उत्सुक जननी ने बाँधा दिव्य दिठौना,
आया कर मे या अम्बर का मृग छौना।

इस एक ग्रन्थि में बंधी नियति दो उर की,
जीवन – विभूति प्राणों के अन्तःपुर की,
यह बन्धन ही है मुक्ति उभय जीवन – की,
मर्यादा प्रेम अनन्य पुण्य यौवन की।

यह पुण्य सूत्र यौवन – सागर की वेला,
मर्यादित इससे मन की ऊर्मिल खेला;
इसका धारण है मन्त्र प्रकृति के नय का,
इसका उल्लंघन स्वागत महाप्रलय का।

धारण कर उसको विधि से आज भवानी,
नारी की नय की मर्यादा कल्याणी
माता से मन्त्रित बनी अखिल त्रिभुवन में;
कल्याण सदा नय का परिणय जीवन में।

कुल-कृति-विधियों में दक्ष धर्म-विधि-शीला
माता ने छू कन्या का पाणि-लजीला,
कुल देवों को बहु अर्चा सहित मनाया,
साग्रह कन्या से वन्दन मौन कराया।

ममता श्रद्धा के विवश अनुग्रह द्वारा,
फिर लज्जित उसको देकर स्वयं सहारा;
क्रम से सतियों का पद-वन्दन करवाया,
आशीष विनीत उमा ने सबसे पाया।

"हो प्रेम अखण्डित तुम्हें प्राप्त निज पति का"
कोई बोली "हो मार्ग सदा सन्मति का,
हो वीर पुत्र दुष्टों का मर्दन कारी"
बोली हँसकर मृदु, सबला अपरा नारी।

'तप से कर रूप कृतार्थ धन्यकर कुल को,
है प्राप्त किया सौभाग्य अपूर्व अतुल को;
नय और शील से सफल युग्म-जीवन हो"
बोली अपरा 'तुम नारी का दर्पण हो।"

'छाई त्रिलोक मे कीर्ति पिता की रवि-सी,
पति प्रभा व्याप्त त्रिभुवन मे इन्दुच्छवि-सी;
सन्ध्या-ऊषा-सी रंजित नव जीवन मे"
बोली अपरा "तुम हो वन्दित त्रिभुवन मे।'

लेकर विनम्र आशीष शीष पर सबका,
मन मे ही वन्दन किया उमा ने भव का;
ललनायें वर्षाकण-सी सागर-जल में,
हो गई लीन उत्सव के कोलाहल में।

सर्ग १०

शिव समाज प्रयाण

उधर कुबेर शैल पर हर के, मनहर धाम,
थी अपूर्व जीवन की शोभा नव अभिराम,
नव स्वर से था गुंजित, नीरव शान्त प्रदेश,
फैल रहे थे उत्सव बनकर प्रिय सन्देश।

शिव के सिद्ध समाधि योग का स्थल एकान्त,
रहते चपल गणों से जीवित जिसके प्रान्त,
अचल समाधि लीन योगी-सा रहता मौन,
जगा अपूर्व पर्व-सा उस पर सहसा कौन?

कर आलाप अनर्गल करते काल समस्त,
यापन, जो गण आज हुये क्यों इतने व्यस्त;
गिरि कन्दर में करते थे जो समुद निवास,
किसके हित वे शिविर लगाते गण सायास?

केवल इन्दु कला का जिस पर सदा प्रकाश
रहता, उस पर नक्षत्रों से युत आकाश
आज उतर आया क्यों, सहसा शत शत दीप,
कुंज शिविर शिखरों पर जागे, स्वच्छ समीप?

वर याचन को छोड़ कदाचित जिसके पास,
कभी न झाँके थे जो सुरगण, आज निवास
दल बल से कर रहे यहाँ, निज गृह-सा मान,
नूपुर निस्वन से गुंजित है किन्नर-गान।

छोड़ उमा औ अरुन्धती को जिसके कूल
नारी के तन की छाया भी पड़ी न भूल,
ललनाओं के हर्ष लास से वह तप धाम,
गूँज रहा वन दिव्य गृही का गृह-अभिराम।

वरुण, सूर्य, शशि, आदि इन्द्र का देव - समाज ,
अनाहूत-सा आया, मानों निज गृह आज ;
हिलमिल नर, मुनि, गण, अमरों के उत्सुक वृन्द ,
करते सेवा - साज स्वजन - से सब सानन्द ।

अल्हड़ गति में आज गणों की नव उत्साह ,
नन्दीश्वर के मन मे उमड़ा मोद अथाह ;
आज नवीन ओज से करता वृष हुंकार ,
नव उमंग से विकल फणी भरते फुंकार ।

आत्मा के मुखरित आमन्त्रण - सा संवाद ,
पाकर नभचर चर से, उर मे भर आह्लाद ,
सरस्वती औ लक्ष्मी से युत अति अभिराम ,
आये ब्रह्मा और विष्णु थे करुणा धाम ।

आसन से उठकर शंकर ने उनका आप ,
कर स्वागत सत्कार, किया मृदु स्नेहालाप ,
सुरपति औ सप्तर्षि कर रहे थे मनुहार ,
सुर - गण - युत मैनाक कर रहे थे परिचार ।

किन्नरियों औ अप्सरियों को लेकर साथ ,
सरस्वती औ लक्ष्मी का ले अंचल हाथ ;
अरुन्धती कर रही स्नेह से थीं सत्कार ,
वाणी श्री के सहित स्वयं ही थी साकार ।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रेम से थे एकत्र ,
कुशल और आनन्द विश्व में थे सर्वत्र ;
सरस्वती औ लक्ष्मी को जो एक अभाव ,
रहा, प्रकट वह हुआ पर्व बन सहज दुराव ।

शैल शिखर पर महामेघ के छत्र समान,
फैला पंख, विराज रहा था गरुड़ महान;
भानु समान किरीट विष्णु का दीप्त विशाल,
पूर्ण सोम-सा सौम्य कान्तिमय आनन भाल।

अंग दीप्त था शुचि राका के व्योम समान,
उदित शुक्र-सी वक्ष देश मे मणि छवि मान;
शोभित थी नक्षत्र-राजि-सी उर पर माल,
शंख चक्र औ गदा-पद्म युत बाहु विशाल।

खिले मानसर में थे अगणित छवि के सेतु,
शतदल राजकमल लक्ष्मी की सेवा हेतु;
एक विशाल कन्दरा में कर युग दृग बन्द,
लक्ष्मी का वाहन करता था आत्मानन्द।

सरस्वती का राजहंस हिम दीप समान,
मान सरोवर मे तिरता था मुक्त महान;
करती मौन शिखर को गुंजित थी झंकार,
वीणा की कर मुक्त हृदय के रस-स्वर-द्वार।

बन शिव के अनुरूप पुरोहित अपने आप,
स्वयं स्वयंभू करते विधिवत् कार्य कलाप;
सिद्ध चतुर्विध वाणी का कर पूर्ण अभेद,
पाठ चतुर्मुख से करते थे चारों वेद।

खड़े इन्द्र उत्फुल्ल ~~पुरोहित~~ वदन से चँवर संम्हाल,
वरुण हर्ष से करुण खड़े ले अर्घ्य अराल,
खड़ा आरती-सा लक्ष्मी की हर्षित सोम,
था आमोद प्रसार कर रहा पावन होम।

सप्त मातृकायें भर उर मे स्नेह अपार,
सजा रहीं थी परिणय विधि का सब सम्भार;
वर के सब अनुरूप प्रसाधन, अपने हाथ
सज्जित कर हर - सम्मुख रक्खा, नय के साथ।

दिव्य मातृकाओं का मन में आदर मान
किया स्पर्श भर से उसका हर ने बहुमान,
कर द्वारा मंगल मंडन श्री शिर पर धार,
किया स्नेह औ मंगल का शिव ने सत्कार।

विस्मित ललनाओं को मन मे देख उदास,
इंगित मे लक्ष्मी - वाणी का मृदु परिहास;
बोले मर्म वचन चतुरानन करने शान्त,
सकल आगतों के मन उन्मन विस्मय-भ्रान्त —

'अलंकार युत अखिल प्रसाधन का उपचार,
ललनाओं की लज्जित श्री का शुभ शृंगार;
नर तो है स्वरूप से ही वर, छवि साकार.
पौरुष और पराक्रम उसके चिर शृंगार।

ललनाओं की छवि का गोपन कर शृंगार
करता वर्द्धन और विश्व का मंगलचार;
स्फुटित मुक्त अंगों से नर का तेज महान,
बल - विक्रम करता जगती में विनय - विधान।

आत्मा का आलोक पुरुष का शुद्ध स्वरूप,
मति का विशद विवेक सदा कृति के अनुरूप;
धर्म और धृति मय जीवन में कर्म सलील,
विक्रम और विनय का नय में शोभन शील।

पूर्ण वशित्व भाव ही मन का मृदु अभिमान,
तप संयम का तेज देह की छवि द्युतिमान;
प्राणों का बल और वीर्य ही शस्त्र प्रधान,
मर्यादा का मान, धर्म का उर में ध्यान।

न्याय और नय का रक्षण ही प्रिय परमार्थ,
असुर दलन मे भुज मूलो का दर्प कृतार्थ;
प्रलय मेघ के वज्रघोष - सी गिरा गभीर,
देती हृदय आततायी का नभ - सा चीर।

अन्यायी का हृदय अद्रि-सा सहज विदार,
जो दुष्टों पर करती निर्भय वज्र प्रहार;
करती नारी - शिशु - नय - वय का जो सत्कार,
वही गिरा है पुरुष कण्ठ की मुक्ताहार।

रण मे गर्जन करते हैं नर; किन्नर गान,
करते हैं गन्धर्व नृत्य, नर युद्ध प्रयाण;
किम्पुरुषों का अलंकार मृदु कलाकृतित्व,
संयम, शक्ति और नय मे नर का अस्तित्व।

शीलवती नारी की तेजस् तपमय शक्ति,
बनती नय विक्रम युत नर की पावन भक्ति;
स्नेह, त्याग, तप, शील पुरुष का सहज उदार
अलंकार, सन्तति का जीवन - नय - अनुकार।

श्रुतियों में गृहीत जीवन का पावन ज्ञान,
कुण्डल रुचिर सुवर्ण रत्नमय शोभासान;
उन्नत, सुदृढ़ और सुगठित युग वृषभ - स्कन्ध,
और प्रबल भुजमूल पुरुष कर का भुज - बन्ध।

दीप्त तेज से तथा गर्व से उन्नत भाल
रत्न किरीट स्वयं है नर-वर का चिर काल;
त्रिकुटी पर तप और ज्ञान की केन्द्रीभूत
प्रतिभा की शुचि ज्योति तिलक हैं उज्ज्वल पूत।

नारी की अर्चा का पावन पीठ महान,
बल से उन्नत वक्ष शिला-सा शोभावान;
अलकार है उसका निर्भय विक्रम दर्प,
बलि जाते नर के पौरुष पर शत कन्दर्प।

नारी, शिशुओं, सुजनों के हित कुसुम समान,
सरस और कोमल अन्तर से जो श्रीमान;
जो अनीति के लिये वज्र से अधिक कठोर,
वही वीर नर पालन करते नय युग ओर।

नारी, शिशु औ सुजनों के हित, उर के बीच
स्नेह और करुणा की धारा बहती, सींच
सद्भावो के अंकुर, पादप, पुष्प, प्रवाल,
दुष्टों के हित जलती उर में भीषण ज्वाल।

नारी, शिशु औ सुजनों के हित जिनकी छाँह,
बनती आपद के सागर में हरि की बाँह;
अत्याचारी दुष्टों के हित तन की कान्ति,
बनती प्रलय काल के रवि की भीषण भ्रान्ति।

नारी, शिशु औ सुजनों के हित जिनका स्नेह,
बनता मंगल का आश्वासन निस्सन्देह;
दुर्दमनीय अनाचारी को जिनका रोष,
बनता पापों के प्रतिफल का चिर सन्तोष।

नारी, शिशु और सुजनो के हित जिनकी दृष्टि,
बनती लोक-क्षेत्र में सुखमय मंगल-वृष्टि;
दुष्ट आततायी के हित बंकिम दृगपात,
बनता अनय-समायोजन में उल्कापात।

किम्पुरुषों की कला काम-का अर्चन मात्र,
दुर्बल आत्मा का आच्छादन सज्जित गात्र;
नहीं कामिनी का आराधन कला पुनीत,
पौरुष के अनुरूप नरो का नर्तन-गीत।

मेघ-मन्द्र-स्वर नर का गायन भी गम्भीर,
नर्तन की पदगति से कम्पित धरणी धीर;
कठिन करों के आघातो से मदुल अतीव,
हो उठते पाषाण प्राण पा सहज सजीव।

चित्र कला है ललनाओं का ललित विलास,
मृदुल अँगुलियाँ करतीं रुचि से मृदु विन्यास
पलकों पर वर्णों की छवि का विविध विचित्र
स्वप्नों की रंजित छायायें बनतीं चित्र।

जीवन के कुछ मृदुल क्षणों मे सस्मित लास्य
मर्म सर्ग का, नहीं प्रकृति या रति का दास्य;
विषम काल मे प्रस्तुत रहते ऊर्जित प्राण,
अट्टहास युत ताण्डव के हित रुद्र-समान।

किन्नर औ गन्धर्व गणों के कोमल गात्र
रंजित चीनां[illegible] धारण के रुचिमय पात्र;
साधु वीर नर को वल्कल औ गज का चर्म,
है उपयुक्त वसन औ तन का वाञ्छित वर्म।

अबलों का आश्वासन, सुजनों का विश्वास,
असुरों का हृत्कम्पन, दुष्टों का भय त्रास,
शिशुओं की श्रद्धा, नारी की भक्ति अपार,
अपना विक्रम-नय नर का निरुपम शृंगार।

हर तो हैं परमेश्वर नर के चिर आदर्श,
हुये प्रसाधन धन्य प्राप्त कर उनका स्पर्श;
उनका दिव्य स्वरूप प्रकृति का चिर शृंगार,
नाग त्रिशूल आदि ही छवि का शुभ सत्कार।

विश्व विभूति समान भस्म ही गन्ध-निधान
अंगराग है भव के तन का शुचि रुचिमान;
राका के नभ-सी उज्ज्वल औ चिर अविकार,
देह, रूप, बल, तप नय की प्रतिमा साकार।

तपस्तेज से दीपित शिव का उज्ज्वल भाल,
अपना स्वयं किरीट प्रभा से युत चिर काल;
फैल रही ब्रह्माण्ड ज्योति-सी गंगाधार,
त्रिभुवन की अर्चा चमरों का शुचि संचार।

दिन मे भी अनुपहित कान्तिमय चिर अकलंक,
चूड़ा मणि है दिव्य शम्भु का बाल-मयंक;
पिंग तारका युत त्रिकुटी का लोचन लाल,
है चिर मंगल तिलक शम्भु का शुचि हरिताल।

मणिओ से उज्ज्वल फण फैला कर द्युतिमान,
फणिधर शोभित शम्भु शीश पर छत्र समान,
सिंह-चर्म ही रोचनांक युत दिव्य दुकूल,
है त्रिभुवन का राजदण्ड यह लौह त्रिशूल।

योगासन ही सिंहासन है भव का भव्य,
पाद पीठ है शिखर शिला ही शुचि चिर नव्य;
अक्षमालिका ही है उर का मुक्ताहार,
कर-मुद्रायें रत्नमुद्रिका की अनुहार।

धरणी के धारक अनन्त-से चिर निर्बन्ध,
बल-विक्रम के सीमांकन-से दृढ़ भुजबन्ध
अलंकार हैं बाहुमूल के भुजग महान,
उनकी फण-फुंकार ओज की स्फूर्ति समान।

अपरिग्रह ही अखिल लोक की मृदु अनुभूति,
एक कमण्डलु जग की मंगल मयी विभूति;
मंगल-वाचन अखिल विश्व का डमरु-निनाद,
मौन ध्यान मे संसृति के शुभ का संवाद।

है सर्वोत्तम अलंकार शिव का ध्रुव योग,
रमण प्रकृति की गति मे नर का घातक रोग;
योग, भोग की मर्यादा है संयम युक्त,
होती इससे प्रकृति-बन्ध से आत्मा मुक्त।

नर का वैभव नहीं ग्रहण है, पर है त्याग,
बलि-सेवा है स्नेह, नहीं रति औ तन-राग;
ज्ञान, शौर्य औ शील उचित नर के शृंगार,
नहीं देह को, आत्मा को भजता संसार।

लोक-बेद की मर्यादा के पालन हेतु
दुर्गम भव सागर तरने को बनने सेतु,
कर लेता यदि मुक्त पुरुष नय अंगीकार,
विनय महत् आत्मा का अनुपम है शृंगार।

मंगल विधि की मर्यादा का सूत्र ललाम,
बाँध महालक्ष्मी! कर लो तुम सार्थक नाम;
सरस्वती तुम आत्म कण्ठ से मंगल गान
समारम्भ कर, धन्य करो वीणा-सन्धान।

बन यह सूत्र मुक्त मानव का मंगल-बन्ध,
करे सदा सम्पन्न स्नेह का शुचि सम्बन्ध;
नर का गौरव हो नारी का चिर बहुमान,
नारी का अभिमान पुरुष का शौर्य महान"

ब्रह्मा का आदेश मान कर निज बहुमान.
किया महालक्ष्मी ने कर मे सूत्र-विधान.
सरस्वती ने दिव्य कण्ठ से मंगल गीत
गाया, वीणा-ध्वनि दिगन्त में हुई पुनीत।

किया स्वस्ति वाचन ब्रह्मा ने लेकर नीर,
गिरि कानन में गूँजा स्वर प्लुत मन्द्र गभीर;
दिया विष्णु ने कर अन्तर-सा नम्र उदार,
कर विधि पूर्ण उठे शिव मंगल-से साकार।

ले अवलम्ब नन्दिकेश्वर की भुज का पीन,
सिंह-चर्म-युत वृषभ पृष्ठ पर हो आसीन,
उद्यत हुये प्रयाण हेतु शिव मन्द सहास,
मानों जंगम हुआ हर्ष प्रेरित कैलास।

श्वेत वृषभ आसीन शम्भु का सहज प्रयाण,
करता ऊर्जित सत्व राशि पर श्रेय विधान;
धीर मन्द गति शील वृषभ का गुरु हुंकार,
करता था जय हेतु सत्व में बल संचार।

उतर रहा था शैल शिखर से शोभावान
शंकर का दल वृषभ - नाद - युत मेघ समान;
कृष्ण - मेघ - से मृदुल लहरते फण - युत नाग,
घन में विद्युत लेखा - सा विधु उठता जाग।

चला नवीन मेघमाला - साअनुचर वर्ग,
वन भू का वरदान विरचने नूतन सर्ग;
करने धन्य धरा को दे मगल वरदान,
मानों किया सदेह स्वर्ग ने ही अभियान।

करता सूचित वसुन्धरा का सत्वोत्कर्ष,
अम्बर को छू रहा धरा का ऊर्जित हर्ष;
उतर रही कैलाश शीश से ध्वनि से पूर्ण,
कमलों से परिपूर्ण सुरसरी गति से तूर्ण।

चलीं मातृकायें शंकर के पीछे सात,
दिव्य वाहनों पर अपने, छवि से अवदात;
नभ नलिनी - सी हर्षित उर मे भर अनुराग,
मुख का पुण्य प्रभा मण्डल - सा पूर्ण पराग।

माताओं के पीछे स्वर्ण प्रभा - सी कान्त,
चली महाकाली कपालिनी भीषण शान्त;
यथा नील - घन - माल बलाका से अवदात,
चली विपुल विद्युन्मालाओ के पश्चात्।

अनुगामिनी सदाशिव के पथ की अभिराम,
बनकर चली सर्ग की अनुगत प्रलय प्रकाम;
पुण्य पूर्णिमा की अनुगामिनि बन अवदात,
चली अमा आलोक - गर्भ - सी उज्ज्वल - गात।

हो उत्फुल्ल हर्ष से स्वर में भर आह्लाद,
किया गणों ने युगपत् मंगल तूर्य निनाद;
गुंजित हुये प्रतिध्वनि से सब देव विमान,
सेवा अवसर जान सुरों ने किया प्रयाण।

यत्न पूर्ण त्वष्टा से निर्मित दिव्य महान
आतपत्र ले सहस करों में रवि रुचिमान,
चले पार्श्व मे प्रतिपद महगत शिव के साथ;
कर उन्नत कर और विनय से अवनत माथ।

उदय - शील राका की उज्ज्वल औ छविमान
सत्व - सूत्र - सी किरणों के घन - निचय समान
लेकर चमर रुचिर हाथों में पूर्ण अतन्द्र,
अनुचर्या कर रहा निरन्तर हर्षित चन्द्र।

प्रथम, विधाता राजहंस पर हो आसीन,
विष्णु गरुड़ - आरूढ़ शान्तिमय मुद में लीन,
आकर हर के सम्मुख बोले जय जय कार,
हवि से वह्नि समान बढ़ा हर का सत्कार,

सुनकर हर्षोन्मत्त गणो का तूर्य निनाद,
उमड़ा उत्सव सदृश सुरों का उर - आह्लाद;
असुरो के उत्पातो के वे दुर्वह त्रास,
भूल गये पा भव्य विजय का दृढ़ विश्वास।

नन्दीश्वर से नम्र निवेदित हो सुर वर्ग,
करके सब ऐश्वर्य लक्षणो का उत्सर्ग,
इन्द्र पुरस्कृत, करने प्राञ्जलि भेंट प्रणाम,
हुआ उपस्थित सन्मुख शिव के शोभाधाम।

शिरःकम्प से कमलासन का कर सम्मान,
किया विष्णु का प्रीति वचन से फिर बहुमान;
और इन्द्र को मन्द-स्मित से किया कृतार्थ,
कृपा दृष्टि ही हुई सुरों के हित परमार्थ।

सम्मुख आ सप्तर्षि वर्ग ने शुभ आशीष,
जय पूर्वक जब दिया, किया हर ने नत शीष;
कहा विनय से 'सफल आपके क्रिया कलाप,
हैं अध्वर्यु विवाह-यज्ञ के मेरे आप'

उत्सव की आनन्द-सरित मे लहर समान,
अनायास बढ़ते थे पथ पर सब अनजान;
गन्धर्वों के मधुर गान की लय में लीन,
सिद्ध-स्वरो-से बढ़ते थे पद स्वयं प्रवीण।

कठिन दीर्घ पथ अनायास कर गिरि का पार,
शिव समाज आ गया नगर के सज्जित द्वार;
परम्परा-सा वारि वीचि की प्रिय संवाद,
अन्त पुर तक फैल गया बन उर-आह्लाद।

लेकर बन्धु समाज साथ में निज गिरिराज,
तत्पर हुये सत्क्रिया में विधिवत् निर्व्याज;
दोनो ओर शील-वैभव की विपुल विभूति,
बनी एक के हेतु अपर की थी अनुभूति।

देवों और पर्वतो के दल उभय अपार,
मिले पुलक पूर्वक आप्लुत कर पुर का द्वार;
जल-डमरू के मित प्रदेश में ज्यो भर ज्वार,
महा सिन्धु दो मिलें ऊर्मि-से बाहु पसार।

भूपति के उदार गौरव का मौन प्रभाव;
कर अलक्ष्य ही लक्षित, तजकर सकल दुराव;
करने धन्य धरा को देकर नव्य प्रकाश,
उतरा हो नक्षत्र राशि से युत आकाश।

किया त्रिलोक वन्द्य हर ने जब नम्र प्रणाम
भूप हिमाचल को बे लज्जित हुये प्रकाम;
शिव की महिमा और तेज से नत अनजान,
अपने शिर को गिरिपति पहले सके न जान।

ब्रह्मा और विष्णु दोनों को विनमित माथ
कर, आदर से जोड़े नृप ने दोनो हाथ;
'बोले आज त्रिमूर्ति मिलन से हुये कृतार्थ,
अखिल जीव, जगती ने पाया चिर परमार्थ।

ब्रह्मा और विष्णु को करके दोनो ओर,
मन्द गमन कर रहे धराधिप हर्ष विभोर;
उमड़ रहे थे पीछे पर्वत - देव - समाज,
ज्वार - समुद्र समान समुत्सुक औ निर्व्याज।

फेनिल उज्ज्वल दीप्त तरंगों - से छविमान,
एक दूसरे से अनुसृत - थे देव - विमान;
फेन और बुद्‌बुद् के उर्मिल वृन्द समान,
बन्धु वर्ग जा रहे अन्यगति से गतिमान।

मन्द चरण थे औ चंचल दृग चारों ओर,
गन्ध विकल भ्रमरों - से विस्मय हर्ष विभोर;
अनायास अक्रम - सा करते मृदु आलाप,
एक दूसरे को विलोकते, भूले आप।

दिव्य अपूर्व विचित्र अनोखा, परम अनूप,
महिमामय प्रभविष्णु शम्भु का शोभन रूप;
पुनः पुनः कर आकुल नयनो का विनियोग
श्रद्धामय, विस्मय से प्रवणित थे सब लोग।

ब्रह्मा विष्णु शम्भु की आभा अमित विलोक,
विस्मित एक अपूर्व भाव से थे पुर लोक;
सरस्वती औ लक्ष्मी को लख दृग साक्षात,
मन्त्रबद्ध से हुये अचल तज पक्ष्म निपात।

काली के भीषण स्वरूप में देख अनूप,
एक अपूर्व क्रान्ति मंगलमय औ अपरूप;
विस्मित औ विमुग्ध थे पुर जन यद्यपि भीत,
करता था मनहरण उभय दल का संगीत।

इन्द्र, वरुण औ सूर्य, चन्द्र की लख अभिराम
रूप कान्ति, प्रमुदित थे पुरजन पूर्ण प्रकाम;
तप.पूत मुनियों के मुख की निर्मल कान्ति,
देती थी दर्शन से मन को अद्भुत शान्ति।

सागर तट पर शंख सीप - से, मन्द झकोर
पा प्रवाह के, नगर द्वार के दोनों ओर,
पंक्ति - बद्ध - से उत्सुक पुरजन दर्शन हेतु.
कौतूहल सागर मे चंचल दृग नौ - सेतु।

पय.पूर के अनुगत जैसे दोनों तीर,
चले उभय तट मिलित वर्ग के मन्थर धीर;
पुरजन, बाल, वृद्ध उत्सुक - मन चंचल - अक्ष,
अवलोकन कर रहे चतुर्दिक चले समक्ष।

होकर कौतूहल से चंचल पथ के बाल,
अन्यमना वृद्धों के रस में बाधा डाल,
देख अपूर्व रूप कोई कह उठते 'कौन'?
दर्शन में विमुग्ध - दृग प्रवयस रहते मौन।

देख देवताओं के तन की उज्ज्वल कान्ति,
होती द्रष्टाओं के मन में सहसा भ्रान्ति;
चन्द्रप्रभा से धौत समुन्नत शुचि हिम शृंग,
आये हों कैलास - आद्रि के धर नव अंग।

देख अप्सरा किन्नरियों का मोहन रूप,
लीला विभ्रम छवि छलना का दृश्य अनूप;
हुये विमोहित युवक एक क्षण संयम भूल,
रहे वृद्ध भी किंचित गत स्वप्नों में भूल।

महा विनोदी कलाकार के रंजित चित्र,
सज्जित शंभु गणों का लखकर रूप विचित्र,
कौतूलत से पूर्ण बाल हँसते सोल्लास,
युवक, वृद्ध सब करते आपस में परिहास।

मन्द गति - क्रम से करते दर्शन आलाप,
अनायास आ गये युगल दल अपने आप;
अनायास कर वन्य मार्ग सहसा अति क्रान्त,
आ पहुँचे क्रीड़ा उपवन में सब अश्रान्त।

पा सागर का तीर यथा गंगा की धार,
होती आकुल - मन्द तरंगित ज्यों विस्फार;
युगल दलों के मृदु प्रवाहमय युग जन स्रोत,
हुये समाकुल मन्द हर्ष से ओत - प्रोत।

हुआ तरंगित कोलाहल का कुछ उत्कर्ष,
उठा उर्मि के मुक्तहास - सा फेनिल हर्ष;
गंगासागर - से उपवन में अतिथि प्रवाह
करने लगा प्रवेश अलक्षित, भर उत्साह।

पूर्व व्यवस्थित था जिसमें सब भाँति सुपास,
क्रीड़ा उपवन बना शम्भु - दल का जनवास,
बने सुसज्जित कक्ष अनुक्रम युक्त निवास,
हुये कुंज - सर - वृक्ष वाहनों के आवास।

उद्वेलित हो उठा हर्ष से युत उल्लास,
अमरावती समान सुशोभित था जनवास;
विचर रहे बहु अतिथि जनो से शोभावान,
नन्दन कानन सम प्रतीत होता उद्यान।

ब्रह्मा विष्णु समेत शम्भु का सकल सुपास,
कर निज कर से हुये तुष्ट भूपति सोल्लास;
बन्धु जनों का धर्म बन गया सहज उदार,
अतिथि जनों का यत्न सहित सेवा सत्कार।

करते थे हिमवान - नगर के युवक सुशील
अमरों की परिचर्या पल पल समुद सलील;
किन्नरियों की वृद्ध कर रहे मृदु मनुहार,
चंचल बाल अप्सराओ का द्रुत परिचार।

स्वर्ण - कमल - से खिले शुभ्र सर में छविमान,
सरस्वती के राजहंस को मुक्त प्रदान
करतीं पुलकित पुर बालायें हो समवेत,
कर उल्लास विकीर्ण ज्योति - सा हास समेत।

उन्नत एक शिखर पर घन-से पंख पसार,
विद्युत-गर्भ मेघ मण्डल-सा कर विस्तार
भय-विस्मय का, गरुड़ विष्णु का बैठा मौन,
विस्मित बालक सभय पूछते सबसे "कौन?"

एक वृक्ष के नीचे लख कर वृषभ विशाल,
होते कौतूहल से पुलकित पुर के बाल;
सस्मित बालायें वृद्धों से आग्रह-युक्त,
प्रश्न पूछतीं 'किसका वाहन वृषभ विमुक्त?'

पर्वत पुर के अतुल विभव का लख परिमाण,
करते देव-अप्सरा गण थे कीर्ति बखान;
इन्द्र-वरुण पुरजन के नय का करते गान,
ब्रह्मा-विष्णु महीप-विनय का करते मान।

किन्नरियाँ-अप्सरियाँ करतीं विस्मित बात
कन्याओं के शील-विनय की शुचि अभिजात;
और उमा के उज्ज्वल तप की कर शुचि गाथ,
होतीं थी वे मधुर स्वप्न में स्वयं सनाथ।

सरस्वती, लक्ष्मी, काली थीं परम प्रसन्न,
शील, विभव औ शक्ति देख पुर की सम्पन्न;
बोलीं "शिव के इस परिणय में हो समवेत,
विश्व बनेगा अखिल हमारा एक निकेत।"

सेवा शुश्रूषा के सुख में मृदु चुपचाप,
काल अलक्षित बीत गया करते आलाप;
हुई दिवा की साँझ, साँझ में आई रात,
और रात में खिला अलक्षित दिव्य प्रभात।

फैल गया सम्वाद गन्ध-सा वायु मे,
पुर के प्रचलित शत पन्थों की स्नायु मे
संवेदन की पुलक चेतना-सी खिला;
मनवाञ्छित वर-सा जन जन को ज्यो मिला।

स्वप्नों को आकार सत्य का शुभ मिला,
आशाओ का स्वर्ग-कमल मन में खिला;
दिव्य राग की कान्ति मुखों पर छा रही,
श्वासों मे पराग की प्रसृति समा रही।

खिले प्रात मे वदन लोक के पद्म-से,
नव श्री विकसित हुई समुद प्रति सद्म से;
उमड़ रहा था वातायन से गान में
अन्तर का उल्लास हर्ष-सा प्राण मे।

अन्तिम वय मे अनायास परमार्थ से,
हुये वृद्ध जन मानों सहज कृतार्थ-से;
वय-विकास मे युवको को अवसर मिला
कर्म-कीर्ति का, कांक्षा से साहस खिला।

इन्द्र-धनुष-सा बाल-स्वप्न रंगों भरा
मानो रंजित आज कर रहा था धरा;
ललनाओं की हुई मनोरम कल्पना
धन्य, सत्य को कामरूप सुन्दर बना।

अन्त पुर मे उमड़े उत्स प्रमोद के,
भरे हास मे निर्झर बहु आमोद के;
स्वर्ण-दीप-सी भरे नवल शुचि स्नेह से,
कन्यायें खिल उठीं हृदय से, देह से।

खिली वदन पर कान्ति हृदय के हर्ष की,
चहल पहल में उत्सव के उत्कर्ष की;
मुखरित हुआ सुभाव प्रफुल्लित आप मे,
व्यंजित हुआ उमंग - भरे आलाप मे।

विहग वृन्द के कल कूजन से जागती,
क्षितिज - प्रभा से प्रिय का आगम आँकती,
आकुल राका - सर के रंजित ज्वार मे,
रोमांचित प्रभात की मन्द बयार मे,

सखियो से आलज्जित हर्षित पार्वती,
हुई संकुचित - सी पुलकित शुचि नयवती,
बाल कमलिनी - सी अरुणोदय काल मे,
भरे हृदय की सुषमा अधर - प्रवाल मे।

भरी प्रेम के प्रचुर प्रफुल्ल पराग से,
रंजित सुषमापूर्ण अमल अनुराग से।
प्रथम किरण से नलिनी - सी मेना खिली,
हर्ष - पुलक करुणा - सीकर से मृदु मिली.

करते करते बात विविध बारात की,
औ उत्साह - उमंगों में अज्ञात की,
महिमा वर्णन करते द्रुत तेजस्करी,
कुल - बालो के नयनों में निद्रा भरी।

गगन प्रसूनों से अंकित कर शर्वरी,
वर की चर्चा रुचिर कल्पना से भरी
करते, निर्भर भव्य भाव मे खो गईं,
कन्यायें भर स्वप्न नयन में सो गईं।

ललनाओं की नींद स्वप्न - सी भागती,
विहगिनियो - सी पल पल सोती जागती;
ले शिशुओं को अंक सुला कर गोद मे,
करती रुचिरालाप नर्म - मय मोद में।

उत्सुकता मे हर्ष और उल्लास की,
मादकता मे मृदुल नर्म परिहास की;
और उमा के गौरवमय इतिहास की,
अर्चा में रुचिपूर्ण भव्य आभास की;

आलापो में अनायास अज्ञात ही,
हुई व्यतीत विनिद्रित मानों रात ही;
हुआ समुत्सुक प्रात, अचानक सब जगे,
समारोह के कार्यों मे तन्मय लगे।

उधर प्रात के साथ मुदित जनवास मे,
हुआ उदित उत्साह रुचिर परिहास मे;
देव और गण हर्ष और नय मे पगे,
सज्जा की सेवा मे तत्पर हो लगे।

दिव्य वेष में सज्जित देव कुमार थे,
उपवन मार्गों मे कर रहे विहार थे;
वासक - सज्जा - सी अप्सरियाँ डोलतीं,
किन्नरियाँ कुंजों मे पिक - सी बोलतीं।

अद्भुत वेषो मे सज गण थे फिर रहे,
उल्लासों की लहरों मे थे तिर रहे;
एक अपर से बढ़ विचित्र विन्यास थे,
एक दूसरे का करते उपहास थे।

बजा अचानक तूर्य द्वार उद्यान के,
हुये समुद्यत जन शिव के वर-यान के;
बाजे विविध अनेक विपुल बजने लगे,
सज्जित भी सब लोग पुनः सजने लगे।

किन्नरियाँ औ अप्सरियाँ यौवन भरी
चलीं, पवन में लहराती ज्यों वल्लरी;
सुनकर उनके नूपुर की झंकार को,
दौड़े गण तज तत्क्षण मुक्त विहार को।

समय जान कर उचित देवदल आ मिले,
संध्या के विचित्र नभ में शशि-से खिले;
कर गुरु को संकेत सप्त ऋषि मण्डली,
ले पूजा उपचार, ओर शिव की चली।

इन्द्र, वरुण, शशि, सूर्य आदि को साथ ले,
छत्र दण्ड चमरादिक निज निज हाथ ले
आये दल में; विष्णु विधाता से घिरे
प्रकट हुये शिव, पलक उठे, मस्तक गिरे।

अरुन्धती ने सन्मुख की शुचि आरती,
पीछे लक्ष्मी विश्व विभव थी वारती;
सरस्वती थी मौन विरव वीणा धरे,
काली के अधरों से स्मिति-मंगल झरे।

मुनियों ने जयनाद तार स्वर से किया,
प्रतिरव ने उद्घोष गगन में भर दिया;
परम दिव्य बारात सदा-शिव की चली,
समाचार सुन पड़ी नगर मे खलबली।

दर्शन को नर - नारी सब उत्सुक हुये,
उदासीन भी वृद्ध सहज भावुक हुये;
राज - मार्ग के उभय ओर रस से सनी,
आँखों की अनन्त माला - सी थी तनी।

चंचल बाल - समूह साथ थे चल रहे,
संयम से विलोक युवकों के दल रहे;
सुन कोलाहल चंचल हुई कुमारियाँ,
घिरीं गवाक्षो पर उत्सुक हो नारियाँ।

उत्सुकता मे कार्य छोड़ कर हाथ के,
दौड़ीं दर्शन हेतु पार्वती - नाथ के;
तन की सुधि भी भूली मन के वेग में,
मन ने गति दी चरणो को नय - नेग मे।

सहसा सम्भ्रम से गवाक्ष की ओर को,
चली वेग से, कोई अंचल - छोर को
एक हाथ से खींच, स्कन्ध पर डालतीं,
और अपर से कबरी शिथिल सँभालतीं।

रंजन - हित जो था प्रसाधिका - हाथ में,
अग्रपाद को खींच वेग के साथ में;
आर्द्र अलक्तक की रेखा - सी खींचती,
चली राग से कोई धरती सींचती।

दक्षिण दृग में अंजन अंजित कर रही,
(स्वर - धारा में श्रवण - तरी सत्वर बही)
छोड़ निरंजन वाम नयन को, हाथ में,
लिये शलाका दौड़ी मन के साथ में।

कोई झटपट वस्त्र विधारण कर रहीं,
बाँध कंचुकी उत्तरीय थी धर रहीं;
अधोवसन की नीवी फिर फिर बाँधतीं,
अन्यमना-सी चली हाथ से साधतीं।

करके धारण वस्त्र, आभरण रत्न के
पहन रहीं थी कोई आकुल यत्न से;
एक हाथ का कंकण कर मे ही लिये,
दौड़ी कोई वातायन पर दृग दिये।

रचती कोई मणि रत्नो की मेखला,
लिये हाथ मे चली अधूरी शृंखला;
पद पद पर हो स्खलित रत्न-मणि गिर गये,
वातायन पर सूत्र देख बोली 'अये!'

कोई शिशु को करा रही पयपान थी,
किन्तु दे रही वातायन पर कान थी;
निकट देख रव दौड़ी, ले शिशु गोद मे,
ढाँक सकी न पयोधर उत्सुक मोद में।

यौवन के मधु-गन्ध-मदिर-रस-संप्लुता,
अङ्ग अङ्ग में इन्दीवर-दल-सी युता;
थे पुतली के भ्रमर विचंचल हो रहे,
कमलांकित-से थे वातायन हो रहे,

अप्सरियो को देख युवा परवश रहे,
देख गणो को बाल वृन्द थे हँस रहे;
देव-विभव की चर्चा करते वृद्ध थे,
भूप भाग्य पर हर्षित श्रेष्ठ समृद्ध थे।

इन्द्र, वरुण, रवि, शशि से सेवित ईश को,
विष्णु - विधाता बीच देख जगदीश को;
रूप अपूर्व, विचित्र वेष से विस्मिता
बोली ललनायें विमुग्ध हो नन्दिता—

"उचित उमा का इनके हित तप सर्वदा,
पाई फल - सी आज अखिल सुख - सम्पदा;
इनकी दासी बन भी जन्म कृतार्थ हो,
अंक - शयन से अधिक कौन परमार्थ हो।

रच दो रूप अपूर्व ईश औ पार्वती,
रूप सृष्टि से हुआ विधाता भी कृती;
रचता यह संयोग न यदि सम - मान का,
होता निष्फल श्रम सब रूप - विधान का।

तप से अर्जित रूप अपरिमित ओज का,
देख विलज्जित मन भी हुआ मनोज का;
करने पूर्ण विदेह - मुक्ति की साधना,
देह - त्याग की हुई काम को कामना।

पाकर इनकी प्रीति परम गौरवमयी,
मेना हुई कृतार्थ, उमा जग में जयी;
क्षिति - धारण से उच्च भाल गिरिराज का,
हुआ उच्चतर पा यह गौरव आज का।

इस प्रकार औषधिप्रस्थ की नारियाँ,
करती शिव की कीर्ति कथा सुकुमारियाँ;
सुनकर वचन अदृश्य श्रवण सुख पा रहे,
राजमार्ग पर चले सनय शिव जा रहे।

सुन शिव का आगमन, राजप्रासाद मे,
कौतूहल जग उठा, उमड़ आह्लाद मे
वधुयें औ वृद्धायें तज निज काम को,
घिरीं गवाक्षों पर लखने शिव-धाम को।

चूड़ामणि-सी निज उत्सुक आह्लाद की,
बैठ चन्द्रशाला में निज प्रासाद की,
नारद मुनि के साथ कर रही बतकही
मेना शिव की व्यग्र प्रतीक्षा कर रही।

विश्वावसु को देख प्रथम विस्मित हुई,
सुन नारद के वचन तनिक लज्जित हुई;
"यह देवों के गायक हैं, यह शिव नहीं,
देवदास को महादेव कहते नहीं।"

आये क्रम से तब कुबेर, यम; इन्द्र भी,
शोभापूर्ण अपूर्व सूर्य औ चन्द्र भी;
उन्हें निरख कर पल पल हर्षित हो रही,
मुनि-निषेध से मेना विस्मित हो रही।

'रानी! शिव के किंकर ये सब आ रहे,
महादेव के अनुचर आगे जा रहे;
सुन सुन नारद वचन मेनका सोचती
उत्सुक दृग से हर्ष-अश्रु मृदु मोचती—

"इन से भी बढ़ तेज-रूप मे जो सुने,
कैसे होंगे वे शोभनतम शिव मुने!
इनके भी पति गौरी को पति बन मिले,
कन्या के सौभाग्य, पुण्य कुल के खिले।

आये ब्रह्मा ऋषि, मुनि औ गुरु से घिरे,
तेजपुंज की ओर सहज लोचन फिरे;
"यह शिव नहीं" वचन नारद ने फिर कहे,
"इनके पीछे विष्णु और शिव आ रहे।"

श्यामल तन पर पीताम्बर की कान्ति से,
फुल्ल-कमल-से मुख की निर्मल शान्ति से
युक्त, विभूषित-अंग, विष्णु के रूप को,
कोटि काम से अधिक अमेय अनूप को

देख मुग्ध-सी मेना मन मे हो रही,
शिव के सुन्दर स्वप्नो मे थी खो रही;
स्वप्न भंग कर तब नारद बोले "अये!
देखो ये शिव स्वयं सामने आ गये।"

अद्भुत रूप, विचित्र वेष लख ईश का,
किया प्रताड़न कर से उसने शीश का;
और ज्वलित नयनो से दो आँसू बहा,
क्रुद्ध कण्ठ से मेना ने मुनि से कहा।

"नारद तुमने यह क्या छल मुझसे किया!
विधि ने किन कर्मों का फल मुझको दिया!!"
वात-हता-लतिका-सी मूर्छित हो गिरी,
आशंकित हो कुल ललनायें आ घिरीं।

व्यजन और जल-सीकर के उपचार से,
कर मन का आश्वास अनेक प्रकार से
नारद औ ललनायें मानों प्राण में,
प्राण ढाल, रानी को संज्ञा-दान मे

सफल हुये; वह दुष्ट स्वप्न से - सी जगी,
क्षुब्ध - मना हो बहु प्रलाप करने लगी;
लख नारद को निकट प्रथम उसने कहा,
"नारद ! तुमने किया प्रथम यह छल महा।

तुमने ही विष बीज वपन यह था किया,
बन जिसने विष - बेल वंश - वन छा लिया;
नृप ने भी कर इन अद्भुत की अर्चना,
औ कन्या ने तप कर की यह वंचना।

कहाँ गये वे मुनि मायावी छल भरे,
औ उनकी वह पत्नी धूर्ततमा अरे!
अथवा क्या अपराध उन्होंने ही किया,
कन्या ने ही जब अनर्थ याचन किया।

देव और दिग्पाल सुलभ थे सब अरे!
उनको तज ये अद्भुत तप द्वारा वरे;
नष्ट हुई कुल - कीर्ति हाय ! मैं क्या करूँ ?
कन्या का वध करूँ, स्वयं अथवा मरूँ !"

कर विक्षुब्ध प्रलाप, मग्न सन्ताप में,
हो उठती उद्वेग - मयी वह आप मे;
भ्रमर - गता तरिणी - सी विह्वल हो रही,
ताड़न कर सिर - वक्ष, पीटती थी मही।

नारद ने बहु भाँति समाश्वासन किया,
तिरस्कार से रानी ने शासन दिया;
"मायावी मुनि भण्ड ! अधिक अब मत कहो,
करके कुल का नाश दूर ही तुम रहो।"

द्वारागत वर का कर स्वागत हर्ष से,
कर उनका सन्तोष प्रेम उत्कर्ष से
सत्कृति के हित छोड़ बन्धुओ को वहाँ,
आये नृप आहूत, विकल मेना जहाँ

क्षोभ - ताप से निज अन्तर में जल रही,
और प्रचण्ड प्रलाप अनर्गल कर रही;
नृप के पीछे विष्णु और ब्रह्मा चले,
होते सदय उदार देव औ नर भले।

नृप ने आकर नय की मधु धारा बहा,
विनय मधुर स्वर से रानी से यो कहा--
"ऐसी विकल अधीर प्रिये ! क्यों हो रहीं,
गौरव औ नय - शील क्षोभ में खो रहीं।

अन्त.पुर में और द्वार पर सामने,
दिव्य महान अनेक कीर्ति - गौरव - सने
कौन कौन ये अतिथि तुम्हारे गेह में,
आये देखो, हो न स्वस्थ मन - देह में!

यह प्रमाद और अनय न तुमको सोहती,
मर्यादा और नय से तुम मन मोहती;
उठो, स्वस्थ हो इन सबका स्वागत करो,
मोद और मंगल से अपना मन भरो।"

सुन कर पति के वचन प्रेम - नय से भरे,
होकर -सी कुछ शान्त शीश पर कर धरे,
बोली मेना. "राजन् तुमने क्या किया,
स्वयं कूप मे कन्या का क्षेपण किया।

अखिल विश्व में ये ही अद्भुत वर मिले,
जिनसे कुल के भाग्य-सुमन सत्वर खिले;
रूप, बन्धु, कुल, अलंकार, गृह सम्पदा.
सब कुछ अद्भुत हास योग्य है सर्वदा।

वाहन वृष औ वेष अपूर्व विचित्र है,
अनुचर अद्भुत, दृश्य न औ न पवित्र हैं;
क्या विलोक कर इन्हें व्याह दूँ पार्वती.
डाल कूप में कन्या को होगे कृती।"

बोले ब्रह्मा समय जान कर शान्ति से,
"विकल हो रहीं रानी! केवल भ्रान्ति से;
महादेव की महिमा अपरम्पार है,
रक्षित शिव से शुभे! अखिल संसार है।

जो हैं जग के मूल, विश्व के ईश हैं,
जिनके मंगल अखिल सहज आशीष हैं;
लोक-बन्धु जो, जिनका विश्व निवास है,
उनका कुल, गृह, वित्त! अनर्थ प्रयास है।

महादेव से बढ़कर और न देवता,
वरती जिनको उमा पुण्य दीर्घव्रता;
रानी! तजो प्रमाद तत्व दर्शन करो.
कर शिव का सत्कार सफल जीवन करो।"

बोली मेना "वचन पितामह! आपका,
है उपचार न मेरे उर सन्ताप का;
किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ आज मैं हो रही,
लख कन्या का कर्म, शोक में खो रही।"

लख ब्रह्मा को मौन विष्णु ने तब कहा,
शील और सौजन्य धार स्वर मे बहा;
शान्त प्रसन्न वदन से वाणी निसृता,
श्री से संयुत हुई सहज मंगल - भृता।

"पितरों की मानस कन्या तुम गुणवती,
पत्नी धीर हिमाचल की गौरवमती,
माता तुम मैनाक पुत्र की जयवती,
पुण्यवती तुमसे कृतार्थ यह वसुमती।

इस मंगल के समय शोच अपनय करो,
धर्ममयी तुम मत्य धर्म की जय करो;
कन्या का तप नहीं नयवती व्यर्थ है,
संराधन में शिव के वही समर्थ है।

देख रूप यह शिव का मत विस्मय करो,
अद्भुत उपकरणों से मत तुम भय करो;
शिव का रूप विरूप अपूर्व रहस्य है,
अद्भुत भी वह परम पवित्र प्रशस्य है।

शिव त्रिलोक के शाश्वत मंगल धाम है,
कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता शिव निष्काम है,
ब्रह्मा के आराध्य, वन्द्य मेरे सदा,
सुर, नर, मुनि के परम साध्य शिव सर्वदा।

पाकर जिनको होता विश्व कृतार्थ हैं,
सबके आत्मस्वरूप अखिल परमार्थ हैं;
शिव से ही यह प्रकृति सदैव सनाथ है,
संस्कृति का पथ शिव-साधन के साथ है।

गौर देह यह सत् की सात्म समष्टि है,
रवि, शशि, ग्रह, नक्षत्र उसी की सृष्टि हैं;
सत्वोद्‌धृत तम तुल्य जटा का जूट है.
सत्व - सरणि सी रही सुरसरी फूट है।

सत्व - विभासित रज है लोचन तीसरा,
दर्प काम का तन - समेत जिसने हरा;
प्रकृति - देह को सहज दग्ध कर काम की,
संस्कृति से पवित्र कर रति अभिराम की।

तपःज्योति - सी अमृत मयी शुचि निर्मला,
संजीवनी लोक - मस्तक की शशिकला;
नीलकण्ठ बन, रहे विश्व के शिव सदा,
विषधर शिव के अलंकार हैं सर्वदा।

वाहन वृषभ पवित्र और निर्भीक है,
प्रकृति - नयन का शिव के शक्त प्रतीक है;
विजय घोष जीवन का शृंगी नाद है,
हरता डमरु - निनाद प्रसुप्ति प्रमाद है।

आत्म - शक्ति का अस्त्र अमोघ त्रिशूल है,
त्रिगुण - प्रकृति के अनुशासन का मूल है;
शिव संस्कृति के चिर अच्युत आधार हैं,
मानव - नय के ध्रुव आदर्श उदार हैं।

शिव सेवा से गण भी हैं गुण सीखते,
देव और नर भी हैं उपकृत दीखते;
शिव का सन्मय पन्थ लोक - कल्याण है,
असुर अनय से सुर, नर, मुनि का त्राण है।

रानी ! शिव की शक्ति तुम्हारी पार्वती,
विश्व मंगला बनकर होगी कृतिमती
जगदीश्वरी वन्दनीया सब लोक की,
धन्य हुई तुम, तजो वृत्ति यह शोक की।"

अश्रु वृष्टि से स्वच्छ नील नभ-से धुले,
किस निद्रा से नयन मेनका के खुले;
सुनकर सुन्दर वचन विष्णु के नय-भरे,
दीर्घ श्वास के साथ कहा केवल "हरे!"

ब्रह्मा विष्णु समेत द्वार सब आ गये.
मेना लेकर भाव शान्त उर में नये,
अन्त पुर में आई सुख से निर्भरा,
अर्चा का उपचार कराया सत्वरा।

रत्न-पीठ पर बिठा शम्भु को मान से,
किया द्वार उपचार, अपरिमित दान से;
विधि मन्त्रों की प्रति ध्वनि से रनिवास मे.
जागे मंगल गान अमित उल्लास मे।

कमल दलों-से पथ मे लोचन बिछ रहे,
दृग-पथ से थे उर चरणों में खिंच रहे;
प्रांगण में शिव गिन गिन कर पग धर रहे,
दर्शक उर में दृगपुट से छवि भर रहे।

कल्पकुंज नन्दन के थे जिससे लजे,
मण्डप में विधि सहित विविध सुषमा सजे;
नम्र जनों से नीत सदाशिव आ गये,
अखिल जनों के हृदय हर्ष से छा गये।

ज्वलित वेदिका सन्मुख शिव आसीन हो,
मानो तप कर रहे ध्यान में लीन हो;
सखियों से आनीत सिद्धि-सी पार्वती,
वाम पार्श्व में हुई सुशोभित नयवती।

सदय पुरोहित ने नय-विधि के साथ में,
दिया उमा का कर शंकर के हाथ में;
स्विन्न हुये कर-चरण उमा के स्पर्श से,
हुये रोम पुलकित शंकर के हर्ष से।

युग-दुकूल के छोर ग्रन्थि में धर्म की
बाँध, विप्र ने मर्यादा गृह-कर्म की
मुद्रित की विधि मन्त्रपाठ से क्षेम के,
विधि से पावन हुये भाव ध्रुव प्रेम के।

ग्रन्थि-बद्ध हो दम्पति ने तब प्रीति से,
कीं प्रदक्षिणा सात अग्नि की नीति-से,
तेज और छवि करते ज्योति परिक्रमा,
रहे सर्व-दिन क्षेम-प्रेम औ नय-क्षमा।

द्विज निदेश से लाजाओं का लाज से
किया विसर्जन गिरिजा ने; मृदु व्याज से
धूम-शिखा का घ्राण किया आनन फिरा,
सन्ध्या-घन सा धूम अरुण मुख पर घिरा।

कहा विप्र ने "वत्से ! परिणय कर्म का,
साक्षी वह्नि विशुद्ध, सदा तुम धर्म का
करना प्रिय आचार स्वपति के साथ में,
रख मन में समभाव, कृति-कला हाथ में।

करके नत से नम्र उमा ने शीश को,
किया ग्रहण आदेश - पूर्ण आशीष को;
वर्षागम का पवन मेघ - जल - आनता
करती उत्सुक ग्रहण यथा तन्वी लता।

ध्रुव दर्शन के हेतु प्रेम से प्रेरिता,
मौन उमा ने अखिल जनों से हेरिता
उठा कथंचित् नत पलको की कोर को,
देखा लज्जित उत्तर नभ की ओर को।

इस प्रकार द्विज ने विधि पूर्वक नीति से,
परिणय विधि कर पूर्ण नियम औ प्रीति से,
उमा और शंकर को दी मृदु प्रेरणा,
करने पूज्य पितामह की पद - वन्दना।

"वीर पुत्र की जननी हो जगवन्दिता,"
वधू हुई ब्रह्मा से यों प्रतिनन्दिता;
वाचस्पति भी किन्तु स्वयं जगदीश को,
पा न सके वागर्थ उचित आशीष को।

सरस्वती ने मधुर कण्ठ के नाद से,
नव दम्पति को उर के आशीर्वाद से
नन्दित किया "प्रणय का नय से मान हो,
लय - स्वर - संगति पूर्ण प्रेम का गान हो।"

सन्मुख हुये विनम्र विष्णु के दम्पती,
हर्षित हर औ मृदुल विलज्जित पार्वती,
बोले विष्णु प्रसन्न गिरा गौरव भरी,
"हो त्रिलोक की तुम सदैव अभयंकरी।"

बोले हर से मृदु नर्मद परिहास में,
"सफल हुआ तप आज योग उल्लास में;
अब अनुराग अपूर्व पूर्व वैराग्य हो,
भव का विभव भवानी का सौभाग्य हो।"

लक्ष्मी ने अधरों से मधु की वृष्टि कर,
किया तिलक अनुरूप प्रणय की सृष्टि पर,
"नय औ तप से पूत सनातन प्रेम से,
सुन्दर शिव बन सत्य मिल गये क्षेम से।"

विष्णु और ब्रह्मा की कर के वन्दना,
लक्ष्मी औ वाणी की ले शुभ कामना;
बहु ललनाओं से निर्देशित द्वार से,
चले उमा-शिव लज्जित मृदु मनुहार से।

मौन उमा को सखियाँ कौतुक से भरीं
अन्त:पुर ले गईं, विवश बन अनुचरी;
ललनाओं ने भर उत्साह उमंग में,
कुल देवों के पूजन के अनुषंग में

शिव के दर्शन किये नयन-भर प्रीति से,
किया मधुर आलाप विनय की रीति से;
हर्ष और करुणा से उर-लोचन भरे,
विधि-उपचार किये मेना ने धृति धरे।

पलकों में भर ध्यान ईश का पार्वती,
सखियों में विश्राम कर रही श्रमवती;
शिव ने स्वजनों सहित लौट जनवास में,
उमा-ध्यान में पाया सुख आयास में।

सर्ग १२

कैलास प्रयाण

होते ही उदय उषा का, राजमहल मे
सब जाग उठे आकुल उर की हलचल में;
हो रही विदा की थी तन्मय तैयारी,
करुणा से गद्गद् थे पुर के नरनारी।

सबको प्रिय था सम्बन्ध परम सुखकारी,
सुर, नर, मुनि को था हर्ष हृदय में भारी;
मन का उल्लास न समा रहा था तन मे,
उर की करुणा उमड़ी थी आर्द्र नयन में।

अर्पित कर कन्या उत्तम जामाता को
होता अपूर्व सन्तोष पिता माता को;
फिर भी कन्या की विदा हर्ष से करते,
नयनो मे कम्पित उर के ज्वार उमड़ते।

हो होकर शील, विनय, कृति पर बलिहारी,
करतीं बचपन की याद उमा की नारी;
करके चर्चा तप की औ फिर परिणय की,
होती अद्भुत गति उनके विकल हृदय की।

बालक कहते, "क्या उमा चली जायेंगी,
फिर यहाँ न मिलने कभी लौट आयेंगी।"
कन्याओं के मुख थे उदास हो जाते,
बालक सहसा नयनों मे जल भर लाते।

उर में उमंग औ भर कर नीर नयन मे,
फिरतीं थीं मेना व्यस्त व्यग्र आँगन मे;
कन्या परिणय से थीं कृतार्थ वे मन में,
विह्वल-सी थीं वे किन्तु विदा के क्षण मे।

प्रासाद कक्ष मे अवनत लोचन, करके,
गिरिजा बैठी थी उर का गोपन, करके;
सखियाँ करके परिहास हँसाती जातीं,
स्मिति से कर स्वागत मौन उमा रह जाती।

उन्मन - सी बैठी किन भावों में भूली,
थे झूम रहे स्वप्निल पलकों में शूली;
भूली विदेह - सी अन्यमना सुधि तन की,
विस्तम्भित प्रतिमा - सी विस्मित यौवन की।

मेना ने आकर शीश स्नेह से चूमा,
गृह ओर उमा का वनचारी मन घूमा;
हो उठी विकम्पित सहसा वात - हता - सी,
झर पड़ी मातु को भेंट प्रभात लता - सी।

मैनाक - हिमाचल थे प्रसन्न निज मन में,
हो उठते पर अधीर - से थे क्षण क्षण मे;
गम्भीर मौन मे करुणा विवश छिपाते,
आलाप अल्प कर पुनः मौन हो जाते।

वाञ्छित वर पाकर नृप कृतार्थ थे मन में,
कन्या वियोग का दुख फिर भी आनन में
था झलक रहा, लख वीर पुत्र के मुख को,
गिरिराज धीर मे छिपा रहे निज दुख को।

देकर सेवा - सहयोग, बोल मृदु वाणी,
मेना को धीरज बँधा रही युवरानी;
पल पल अंचल से नयन पोंछती जाती,
सब साज विदा के मेना स्वयं सजाती।

मैनाक सहित औ अनुगत बन्धु जनों से,
मन में उदास, उत्फुल्ल किन्तु वचनों से,
करने को भेंट विदा की शिव के दल से,
जनवास पधारे गिरिपति भाव - विकल - से।

बोले वाणी से "मौन हमारी वाणी,
कर सकती व्यक्त न कृपा देवि! कल्याणी;
आशीष आपका बने काव्य जीवन का,
यह पावन परिणय बने भाव्य जन जन का।"

ब्रह्मा से बोले, "भाग्य महान हमारे,
इस मिस से ही जो आप हिमाद्रि पधारे;
हो क्षमा हुई त्रुटि सेवा में यदि कोई,"
चतुरास्य हास में नीति नृपति की खोई।

कर जोड़ विनय से नृप लक्ष्मी से बोले,
'नयनो के उर के शतदल सहसा खोले
तव कृपा किरण ने" श्री की मधु स्मित रेखा,
नृप के अन्तर में बनी कृपा की लेखा।

नृप ने विनम्र हो हाथ विष्णु के जोड़े,
"हैं बड़े भाग्य, यद्यपि साधन हैं थोड़े;"
हँस कहा विष्णु ने "पाकर वर वैरागी,
वैभव - साधन सब हुये नृपति! बड़भागी।"

गुरु सहित सप्त ऋषियों का वन्दन करने,
हिमवान गये चिर नय का अभिनय करने;
बोले, "अनुकम्पा हुई आपकी भारी,
उर से कृतज्ञ हैं पर्वत के नर नारी।"

गुरु और अंगिरा युगपद हर्षित बोले,
"गुरुतर सत्यों से स्वप्न सभी के तोले,
तन, नयन और मन हुये कृतार्थ हमारे,
सत्कार्य सुरो के सम्भव होगे सारे।"

बोले विनम्र नृप आकर अरुन्धती से,
'हम देवि! हुये कृत-कृत्य कृपा महती से;"
तब अरुन्धती ने कहा स्नेह के स्वर से,
"नृप! वैभव सफल हुये शंकर-से वर से।"

विधिपूर्ण अतिथियों का करके अभिवन्दन,
इन्द्रादिक से सत्कृत नृप बैठे स्यन्दन;
सुत सहित हिमाचल राजमहल मे आये,
हो रहे विदा के करुणापूर्ण बधाये।

सखियों ने कर शृंगार उमा का सारा,
कर और स्कन्ध का दिया सप्रेम सहारा;
करुणा से कम्पित कल्पलता-सी झरती,
चल दी विह्वल-सी उमा मन्द पग धरती।

प्रासाद द्वार तक शिथिल-चरण जब आई,
सखियों से लेने अन्तिम करुण विदाई,
फिर फिर कर लिपटी, दृग से आँसू बहते,
पर रुँधे कण्ठ से बना न कुछ भी कहते।

बोली सखियाँ "हो अचल सुहाग तुम्हारा,
आदर्श जगत मे हो अनुराग तुम्हारा;
निज गृह-नन्दन मे कल्पलता-सी फूलो,
इन किंकरियों को उमे! न सुख मे भूलो।"

माता से भेंटी उमा अंक मे धर के,
करुणा से नत शिर. उसे बाहु में भर के;
मेना अंचल से पोंछ दृगों का पानी,
बोली ममता से गद्गद् स्वर कल्याणी।

"बेटी ! मैंने चिर पुण्यों का फल पाया,
यह शुभ मुहूर्त जो आज सामने आया;
नय, शील, स्नेह औ सेवा से कल्याणी,
करना अपूर्व सौभाग्य कृतार्थ भवानी।

नत मस्तक पर अंकित कर अक्षत रोली.
शिव से ममता की मूर्ति मेनका बोली;
"सबकी आँखो की पुतली उमा हमारी,
हम पर ही होगी इस पर कृपा तुम्हारी।"

सज्जित स्यन्दन की ओर अधर पग धरतीं,
ले चलीं उमा को सखियाँ आँसू झरतीं;
कर पकड़ उमा को धीरे से बैठाया,
आनन पर उर का भाव उमड़ कर आया।

मैनाक वीर ने सादर मधुर विनय से,
शिव को बैठाया स्यन्दन में अनुनय से;
शिव के आग्रह से बैठ पार्श्व मे उनके,
संकेत किया वाहक को साथ सगुन के।

हींसे हय औ चल दिया दिव्य रथ आगे,
सबके नयनों मे भाव अनिर्वच जागे;
रह गई देखती सखियाँ शिखा सुरथ की,
उठ रही हृदय में कथा अन्त से अथ की।

अंचल से आँसू स्वयं पोंछती जाती,
कुल वधुओं को मेना फिर फिर समझाती;
बैठी स्यन्दन में, संग नृपति - नारद थे,
करुणा से सबके हृदय - कण्ठ गद्गद् थे।

जनवास द्वार पर उतरे शिव स्यन्दन से,
रुक गये विष्णु औ विधि के अभिवन्दन से;
मैनाक हिमाचल औ नारद अनुगत थे,
थे सब प्रसन्न, पूरित सबके अभिमत थे।

रथ में बैठी थी मेना और भवानी,
अभिवन्दन को आईं लक्ष्मी औ वाणी;
बोली मेना से "धन्य भाग्य है रानी!
यह विश्व - मंगला कन्या तव कल्याणी।"

बोली मेना "हैं भाग्य महान हमारे,
जो आप सभी कर कृपा सप्रेम पधारे;
पर्वतपुर हुआ कृतार्थ पद्मपद - रज से,
एकत्र विश्व की सब विभूति - सजधज से।

अवलोक हुये कृत - कृत्य सभी नर नारी,
प्रतिपद पर तीर्थ हुई यह भूमि हमारी।"
नन्दीश्वर ने संबोधन तूर्य बजाया,
युगपत् प्रयाण का सबने साज सजाया।

ब्रह्मा होकर आरूढ़ हंस पर आये,
आसीन गरुड़ पर विष्णु मन्द मुसकाये,
नन्दीश्वर ने जब शिव का वृषभ सजाया,
कर का अवलम्बन देकर उन्हें बिठाया।

वाणी-श्री ने युग कर का दिया सहारा,
रथ से गिरिजा को मेना सहित उतारा;
भर अंक उमा को वृष पर सहज बिठाया,
मेना के उर का भाव दृगो में आया।

अति मन्थर गति से मन्द चरण धर धर के,
आये सब सुन्दर तट तक मानस सर के;
रुक गये एक क्षण अन्तिम विदा विनय को,
असमंजस बनता सदा वियोग प्रणय को।

कर जोड़ मेनका बोली गद्गद् स्वर से,
"मेरी सबसे यह विनय आज अन्तर से;
अवमान किया जो मैंने स्वागत क्षण मे,
कर देना कृपया क्षमा, न रखना मन में।

हो उठा विकल वह महामोह था मेरा,
छाया दृगपथ मे था अज्ञान अँधेरा;
था लोक-दृष्टि ने अद्भुत रूप न जाना,
शिव-तत्व अलौकिक था न अतः पहचाना।

हिमपुर ने बढ़कर भाग्य स्वर्ग से पाये,
एकत्र अतिथि सब दिव्य लोक के आये;
जीवन कृतार्थ है आश्रम का फल पाया,
इस पुण्य पर्व ने त्रिभुवन धन्य बनाया।

बोले ब्रह्मा औ विष्णु प्रेम से हँसते,
"रानी ! पूजन तो हम पर सदा बरसते;
यह तिरस्कार अत्यन्त अलभ है हमको,
तुमसे ही मिलता, धन्य तुम्हारे भ्रम को।

सेवा - सत्कृति के सुख मे वह भी भूला,
सम्मान बढ़ा दूना, मन मुद से फूला;
वह तिरस्कार भी आदर करके माना,
तुमसे बढ़कर किसने हमको पहचाना।

पितरों की कन्या औ गिरिपति की जाया,
मैनाक सरीखा पुत्र यशस्वी पाया;
पाकर गिरिजा - सी विश्व मंगला कन्या,
औ शिव - सा वर, तुम हुईं लोक में धन्या।"

गिरिराज हिमाचल नत शिर प्राञ्जलि बोले,
"हम सबके अन्तर्द्वार आपने खोले;
हमने जीवन का फल दर्शन से पाया,
आनन्द सरोवर मानस मे लहराया।

मन के उज्ज्वल हंसों ने जिसमे पाया
तन की सीपी मे मुक्ति - भोग मन भाया;
तम - प्रकृति आज हो गई परिष्कृत सारी,
पा आत्मा की आलोक - प्रभा - उजियारी।

कर जोड़ आपसे अन्तिम विनय यही है,
सेवा मे कोई त्रुटि यदि कहीं रही है
तो उसे दयाकर आप क्षमा ही करना,
हम दीनो पर अब सदा कृपा ही रखना।

हम थे न आपके योग्य विभव के बल से,
कन्या के तप औ पुण्य भाग के फल से
हमने तो यह सौभाग्य सहज ही पाया,
अब लोक - मंगला बने विश्व की माया।"

बोले ब्रह्मा, 'नृप! सत्कृति, शील, प्रणय से,
नभ-तुल्य समुन्नत शीष विशाल हृदय से,
कर धन्य हमें है कीर्ति कृतार्थ तुम्हारी,
संस्कृत विभूति का बने विश्व अनुचारी।"

कर जोड़ जोड़ कर वारम्बार विनय से,
दुख और हर्ष से द्विविधा-पूर्ण हृदय से,
गिरिराज हिमाचल और मेनका रानी,
लौटे बरबस कर विदा सुता कल्याणी।

पथ मे दोनो के पैर न पड़ते आगे,
दृग फेर फेर कर थे उत्सुक अनुरागे;
थे भरे हृदय, दृग आर्द्र, कण्ठ गद्गद् थे;
दर्शन-वचनो मे बहते करुणा-नद थे।

मैनाक पुत्र के साथ बैठकर रथ मे,
करते रह रह कुछ बात कथंचित पथ में,
गृह और उमा के पथ की तीनो आये;
उनके ही मन के भाव भवन मे छाये।

पौरों-स्वजनों से पूरित राज भवन भी,
उत्सव की हलचल पूर्ण, प्रसन्न वदन भी;
लगता था बिना उमा के सूना सूना,
स्मृतियो से बढ़ता दुःख हृदय का दूना।

हो गये विदा आगत जन धीरे धीरे,
उच्छ्वास भवन भी भरता सीरे सीरे;
नित और शून्यता भी बढ़ती ही जाती,
मैना पल पल नयनों में जल भर लाती।

अभ्यास बन गया शनैः अभाव सुता का,
सन्तोष बन गया विरह सुहाग - युता का;
आमोद बनी चर्चा उसके बचपन की,
और भव्य कल्पनायें परिणत जीवन की।

कर पार पन्थ पर्वत का परिचित क्रम से,
पहुँचा शिव - दल कैलास अल्प ही श्रम से;
फिर से उत्सव का पर्व शिखर पर छाया,
विश्राम सभी ने विपुल हर्ष में पाया।

योगी का शान्त समाधि - पीठ, उत्सव की
फिर गूँज उठा वाणी से जन - कलरव की;
जगमगा उठा नव जीवन की हलचल से,
प्रतिफलित हुये किस साधन के शुभ फल - से।

गिरिजा के हेतु गणों ने उटज बनाया,
बैठी कुटीर मे तीन लोक की माया;
शुचि सरस्वती औ लक्ष्मी चिर कल्याणी,
वैभव में पोषित पर्वत सुता भवानी।

कर प्रीतिमयी चर्चा भव के वैभव की,
औ कीर्ति कथा हिमवत्पुर के उत्सव की;
करती आश्वासन नित गिरिजा के मन का,
औ मुक्त मधुर संकोच लाज - बन्धन का।

लक्ष्मी सरस्वती खोल भाव - मंजूषा,
नव वधू उमा की करतीं बहु शुश्रूषा;
कर औ नयनों के नय से सहज भवानी,
करती बहु वर्जन, अल्प ग्रहण कल्याणी।

शिव-बन्धु-जनो-से विधि, हरि, मुनि, सुर गण ने,
आत्मीय भाव से गिरि-उपवासी जन ने;
उस तपोभूमि मे गृह का भाव जगाया,
जनपद, पल्ली, ग्रामो मे उत्सव छाया।

चिर योगी वटु-से सदा कठोर विरागी,
शिव भी अन्तर से हुये अल्प अनुरागी;
वटु ने विस्मय से गृह-आश्रम अपनाया,
वह उमा तापसी बनी वटुक की जाया।

कर चार दिवस एकान्त-शान्ति को गुंजित,
दर्शित कर जन-जीवन की महिमा पुंजित;
रच भव्य भूमिका शिव के गृह जीवन की,
सब अतिथि गये निज धाम प्रीति दे मन की।

वाणी औ श्री की विवश विदा के क्षण में,
वन्दना उमा ने की भर नीर नयन मे;
दोनो ने हँस आशीष दिया "कल्याणी!
उद्धार करे त्रिभुवन का सुत सेनानी।'

शिव औ विधि-हरि युगपद अभिनन्दन करते,
नय-सहित परस्पर फिर फिर वन्दन करते;
ब्रह्मा बोले 'इस पुण्य-शील परिणय से,
प्राकृत गति होगी संस्कृत शुचि शिव नय से,,

प्रस्तुत प्रयाण को मुनियों से शिव बोले,
"तुमने संस्कृति के मार्ग विश्व में खोले;
चिर-बन्धु हमारे, रखना कृपा सदा ही,
स्वागत का अवसर देना यदा कदा ही।।"

छू अरुन्धती के चरण विनम्र भवानी,
बोली " श्वश्रू की प्रीति इन्हीं से जानी "
आशीष मिला " बेटी, मैं फिर आऊँगी,
सुत के आगम का समाचार पाऊँगी,

कर विनय सहित अभिवन्दन सबका क्रम से,
शिव ने सब को दी विदा सनय आश्रम से,
अप्सरा, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, गणों को,
सुर वृन्द तथा जनपद के पार्श्व जनों को।

बैठी कुटीर में उमा प्रशान्त अकेली,
करती सेवा आलाप विनम्र सहेली;
घिर आई हैम शिखर पर सन्ध्या छाया,
तम में झलकाती सत - रज की मधु माया।

सेवा का दे उपहार मधुर वचनो से
करके नय का निर्देश विनम्र गणो से;
शिव एक अपूर्व भाव लेकर आनन मे,
आये पुलकित मन में, रोमांचित तन में।

बोले गिरिजा से शंकर पुलकित मन मे,
" पाया अपूर्व आनन्द आज जीवन मे;
साकार सिद्धि - सी आज योग की पाई,
त्रिभुवन - विभूति तन धर कुटीर में आई।

सत्कार करूँ उसका किस निधि के द्वारा,
है विदित विश्व मे वैभव - जात हमारा,
वृष, डमरु, कमण्डलु, शूल, अक्ष की माला,
है यही प्रिये ! ऐश्वर्य समस्त निराला।

तुम रत्नमण्डिता हो गिरिराज - दुलारी,
हम भस्म - विभूषित योगी यती भिखारी;
जग गये कृपा से सूने भाग हमारे
हो गये प्रीति से सफल विराग हमारे।

पर अन्त हुआ सुख जो पितृ - गृह में भोगा,
वन वधू भिक्षु की अब प्रिय रहना होगा।"
"सौभाग्य यही है" गिरिजा सस्मित बोली,
बोले शिव 'नारी मन से कितनी भोली!

निश्छल अखण्ड यह प्रेम सुपावन मन का,
औ रूप - विभव यह तप पूत यौवन का;
सौभाग्य सहज मेरे सूने जीवन का,
वरदान मुक्ति को मंगल के बन्धन का।

छवि के साँचे मे सर्ग लोक के ढालो
तप सदृश सृष्टि के श्रेय स्नेह से पालो;
यह आभूषण का तन से भार उतारो
यह भूति लोक के चकित दैन्य पर वारो।

छवि से निसर्ग हों नयन कृतार्थ हमारे,
हों मुक्त स्नेह के पथ चरितार्थ तुम्हारे;
यह तप से निर्मल देह निसर्ग प्रकृति की,
हो नित विधायिनी आत्मा की संस्कृति की।

विस्मय, लक्ष्मी को दिखा स्वर्ग की माया,
नर ने युग युग से उसको सहज भ्रमाया,
ये स्वर्ण - शृंखलायें धारण कर तन मे,
नारी बनती बन्दी नर के बन्धन मे।

हैं अलंकार बस रूप मोल में पाये,
इनमें ही अपने प्राण सदा उलझाये;
निज शक्ति भूल कर कोमलता के छल से,
दुर्बलता को अपनाया अन्तस्तल से।

शृंगार नहीं, ये भार रूप औ छवि के;
उपकार नहीं, ये हैं विकार नर-कवि के;
कर इन्हें दीन को दान स्वच्छ कर तन को.
करके स्वरूप का ध्यान शक्ति दो मन को।

जीवन संस्कृति का माप सदा ही नारी,
नर की नय का ध्रुव निकष सर्वदा नारी;
नर भ्रष्ट हुआ कर आराधन बस तन का,
उन्नत होगा कर मान हृदय से मन का।

दुर्बल नारी को बना भार ही अपना,
खोया नर ने सुन्दर जीवन का सपना;
वन्दिनी बनाकर नारी को बन्धन में,
खोई स्वतन्त्रता नर ने भी जीवन में।

संयम से संस्कृत प्रकृति-रूपिणी नारी,
संसृति की शोभा-शक्ति सनातन सारी;
तप औ संयम के अन्तर से अनुरागी
नर ही बनते आनन्द-विजय के भागी।

की तप संयम से तुमने नियत भवानी
नारी के नय की मर्यादा कल्याणी;
मेरे तप का वरदान सदृश तुम आईं,
मैंने तुम में निज आत्म-पूर्ति चिर पाई।

बोली गिरिजा, गौरव के भार नमित-सी,
विश्रम्भ वचन में लज्जित औ सस्मित-सी;
"तुमने ही जीवन मार्ग मुझे दिखलाया,
तुमसे ही तो आदर्श योग का पाया।

यदि नर की छाया नहीं जगत मे नारी,
जीवन पथ में फिर भी नर की अनुकारी;
तप, संयम औ संस्कृति के बनकर नेता,
नर वीर बनेंगे सुन्दर विश्व प्रणेता।

नारी जीवन का साध्य नहीं कुछ अपना,
नारी के मन का नहीं स्वकल्पित सपना;
कामी जीवन का बनकर साधन नारी,
नर की नृशंसता पर बरबस बलिहारी।

कामान्ध पुरुष नारी का गौरव भूले
रत प्रकृति भोग मे, मत्त लक्ष्य निज भूले;
मद के कर्दम मे उलझे चरण नयन से,
वंचित संस्कृति के शिखरों के दर्शन से।

नर को संयम से कर संस्कार प्रकृति का,
करना होगा निर्माण मार्ग अनुसृति का;
हो भोग भार से मुक्त निर्मला नारी,
होगी संस्कृति - पथ मे नर की सहकारी।

तुमने ही करके दाह मदन के तन का,
देवों को दे आदेश तपःसाधन का,
आत्मा से प्रबल प्रकृति के अनुशासन का,
उत्तम पथ किया प्रशस्त मनुज-जीवन का।

धर सहज स्कन्ध पर पाणि प्रसन्न उमा के,
मृदु नत आनन की ओर सुदृष्टि घुमा के;
पुलकित उर से सस्मित शिव-शंकर बोले,
श्रुतियों मे रस औ भाव सुधा-से घोले।

"हैं सत्य तुम्हारे वचन सदैव भवानी,
तुमने संस्कृति की परिभाषा पहचानी;
है विश्व प्रकृति की सुन्दर प्रतिमा नारी,
बनती योगी की आत्मा की सहकारी।

संस्कार प्रकृति का कर योगी नर-नारी,
विरचेंगे घर घर सेनानी बलधारी;
जो बल विक्रम से मर्दन कर असुरो का,
भय त्रास दैन्य मेटेंगे विश्व-पुरों का।

चिर योग-सिद्धि-सी पाकर तुम्हें भवानी,
शिव धन्य, विश्व की शक्तिश्री कल्याणी!;
इस सृष्टि शिखर पर जीवन पर्व मनाओ,
आओ जगती मे नूतन ज्योति जगाओ।"

कहते कहते शिव हुये ओज से ऊर्जित
उठ लिया पाणि मे पाणि उमा का कम्पित;
उमड़ा जीवन का ज्वार विमल बेला की
मर्यादा में, इच्छा से मधु-खेला की।

आकांक्षा-सी इच्छा के इंगित भर से,
जीवन सागर की लहरी-सी शशिकर से,
अभिनन्दन से शंकर के नर्मद कर के,
उठती-सी आई उमा भाव-स्मित भर के।

नक्षत्रों - से सन्तुलित परस्पर नभ में,
सर्वांग संक्रमित थे द्रुत तेज - प्रसभ में;
स्वर की समलय से एक राग - सा जीवन,
दो प्राणों का बन गया एकगति नर्तन।

उस मध्य निशा में ध्रुव कैलास शिखर की,
ज्योत्स्ना में उज्ज्वल वासन्ती शशधर की,
हो उठी सजग किस ललित लास्य की माया,
अग - जग के प्राणों में संवेदन छाया।

अन्तर का रस बन रूप ओज - सा झलका,
था दीप्त हो रहा आनन पल्लव दल का
द्विगुणित, आभा से उज्ज्वल शुचि शशधर की,
हो रही रूप - रस - लीन प्रकृति भूधर की।

तरु झूम रहे थे मन्थर मन्द पवन में,
लहरा कर लिपट रहीं लतिकायें तन में;
पल्लव - दल कर - मुद्राओं से नर्तन की
कर रहे भंगिमायें व्यंजित कानन की।

नभ के कुसुमों - से सुमन विकच कानन में
खिल खिल कर फैला रहे सुगन्ध पवन में,
मानस सागर में नवहंसों के जोड़े,
तिरते, लहरों पर अधर अंग को छोड़े।

उस स्निग्ध प्रकृति के स्वच्छ शिखर के ऊपर,
हो रहे लास में लीन उमा औ शंकर;
थी अंग - भंगिमा एक राग के स्वर - सी,
उठ रही प्रगति से प्रतिपद दिव्य लहर - सी।

फण मिला मिला कर ललित लास्य की लय से,
थे सर्प - मिथुनमिल रहे आज निर्भय - से;
दोनों के सिर पर छत्र मनोज्ञ बनाते,
मणि - मुकट उभय के सिर पर उभय लगाते।

हो रहे दीप्त थे दिव्य तेज से आनन,
थे झलक रहे अंगों में शुचि - श्रम के कन,
झँप रहे पलक थे भाव विभोर नयन के,
रस में तन्मय थे अणु अणु युग तन - मन के।

हो रही शिथिल थी पद गति धीरे धीरे,
ले रहे दीर्घ निश्वास युगल थे सीरे;
तन मन में आलस था मधुरस - सा छाया,
हो रही विमोहित मधुर काम की माया।

हो रति - सी तन्मय उमा भान - सा भूली,
परवश - सी होकर शम्भु स्कन्ध पर झूली;
भर युगल बाहु के दृढ़ मधु आलिंगन में,
शिव ने पाया विश्राम विश्रब्ध शयन में।

रस औ भावों में लीन, एक हो मन में,
तन से भी तन्मय मधुमय आलिंगन में,
किस भव्य सर्ग के दृग में स्वप्न सँजोये,
तृण शय्या पर युग योगी सुख से सोये।

तप योग आज बनकर संयोग सृजन का,
बन रहा अभय वर - सा संस्कृत जीवन का।
शिव और शक्ति का वीरपुत्र वरदानी,
होगा संस्कृति की जय का चिर सेनानी।

बैठे थे शंकर कुटीर मे ध्यान लगाये,
देख रही थी उमा, पलक में सपने छाये;
चंचल तकली घूम रही श्वासो की गति - सी,
विरच रही थी सूत्र सृष्टि का विश्व नियति - सी।

शुचि प्रभात का सूर्य प्रथम कैलास शिखर पर,
शिव वन्दन कर रहा चरण पर धर सहस्र कर;
ऋषि, नर, गण, वटु उठे छोड़ कर निशा शयन को,
चले स्नान, तप, ध्यान, समिध औ सुमन-चयन को।

गूंज उठे तरु लता-कुंज कल खग-कूजन से,
पूत हुये सब धाम प्रात शिव के पूजन से;
जीवन का आनन्द कर्म बन गिरि पर छाया,
नित्य कर्म मे श्रेय-धर्म बन प्राण समाया।

स्वर विधि से श्रुति पाठ कर रहे वटु व्रतधारी,
धर पशुओं पर भार चले उत्सुक व्यापारी;
मल्लयुद्ध और शस्त्र कला की शिक्षा शाला,
दिखा रही थी बल विक्रम का दर्प निराला।

सम्बल, दण्ड और वंशी ले निज निज कर मे,
निकल पड़े पशुपाल वृन्द ले वन्य डगर मे;
जीवन के आवेग भरे पशु वृन्द भगाते,
परिचित वन को चले गीत कुछ नूतन गाते।

थे आसीन अखण्ड ध्यान मे अविचल शूली,
कर्म निरत थी उमा स्वत्व-सा तन्मय भूली,
बाल सूर्य का आतप पलपल बढ़ता जाता,
शिव आनन का तेज प्रतिक्षण बढ़ता जाता।

अन्तर्वर्ती मौन उमा का सहज लजीला,
मृदुल केतकी गर्भ सदृश मुख पीला पीला
रक्त हो रहा अरुण प्रभा से हलका हलका,
मानों उर का राग छ तनिक आनन पर झलका।

लेकर सौरभ - सार विविध गिरि के कानन से,
एक पवन का झोंका आया वातायन से;
पुलक कम्प से तार उमा के क्रम का टूटा;
सिद्धयोग से उधर शम्भु का बन्धन छूटा।

छोड़ दीर्घ निश्वास ईश ने लोचन खोले,
योग प्रसन्न वदन गिरिजा से सस्मित बोले;
"आत्म लाभ हित पुरुष योग में रहता रत है,
विश्व क्षेम हित किन्तु प्रकृति सक्रिय अविरत है।"

"है स्वरूप ही भव्य पुरुष का" गिरिजा बोली,
व्यंग - सत्य मे सुधा रुचिर मधु स्मिति ने घोली;
'प्रकृति - कर्म आधार विश्व की चिर संसृति का;
किन्तु योग ही पीठ श्रेय की शाश्वत धृति का।

सिद्ध योग ही कर्म पुरुष का मंगल - कारी,
विना योग के कर्म प्रकृति का प्रलयंकारी;
कर्म प्रकृति का योग पुरुष का जब बन जाता,
तभी योग का क्षेम कर्म में अन्विति पाता।

परम योग को पूर्ण सिद्ध कर तुम अविकारी,
किस विभूति के लिये बने नियमित तपधारी?
साधन अथवा साध्य योग तप है जीवन का?"
हुआ प्रकट - सन्देह प्रश्न में उसके मन का।

बोले शिव "है याद प्रथम वह भेंट तुम्हारी,
और याद है तीव्र तर्क वह शैल कुमारी!;
नहीं दूर है. कभी पुरुष विभु विश्व प्रकृति से,
रह सकता स्वरूप में संस्थित योगज धृति से।

बिना योग के भोग रोग का कारण बनता.
योग प्रकृति के अन्ध वेग को धारण करता;
करता अन्वय योग प्रकृति गति में मंगल का,
योग एक प्रतिकार प्रकृति से संभव छल का।

योग साधना है स्वरूप का स्मरण निरन्तर,
रहता इससे अमल सदा साधक का अन्तर;
योग मोह के मेघ-पटल को खण्डित करता,
आत्मा का आलोक प्रकृति को ज्योतित करता।

हरा योग-बल से ही मैंने दर्प मदन का,
योग-तेज से किया दहन उसके मृदु तन का;
कर आत्मा से अन्वय उसकी शुद्ध प्रकृति का,
किया प्रशस्त श्रेय-पथ संसृति की संस्कृति का।

काम दहन के समय श्रवण कर शासन मेरा,
और निरख कर अचल योग का आसन मेरा,
उत्साहित हो पुनः तुम्हारे तपश्चरण से,
जय-हित तप कर रहे देवता अब तन मन से।

देना हमको उन्हें एक विजयी सेनानी,
संयोजन कर जो बल-विक्रम-कौशल-मानी
देव-सैन्य का नयन करे पथ पर चिर जय के,
रचे विश्व में पर्व श्रेय के सूर्योदय के।

तप: स्नेह से प्रिये तुम्हारे उसकी आशा,
बना रही है सार्थ साधना की परिभाषा;
हुआ भोग भी श्रेय, योग के शुचि अन्वय में,
राग बना रस आत्मा के आनन्द - उदय मे।

शक्ति - मूर्ति तुम शीघ्र बनोगी जिसकी माता,
सेनानी वह वीर बनेगा जग का त्राता;
जब तक तुम को भार सृजन का उसके वहना,
आत्मनिष्ठ ही उचित मुझे है तब तक रहना।

नित्य योग है धर्म पुरुष का यों साधारण,
योग मार्ग से श्रेय शक्ति का होता साधन;
श्रेय शक्ति से ही संस्कृति के अन्त:पुर का,
सम्भव रक्षण, और दलन उन्मत्त असुर का;

नव यौवन में योग शक्ति का संचय करता,
औ परिणय मे प्रकृत - विषय में मंगल भरता;
प्रकृति - शक्ति के गर्भ काल में भी बन योगी.
पाता शक्ति - कुमार वीर निर्भय नीरोगी।

और योग ही कर सकता है शिशु का पालन,
श्रेय शक्ति के पथ में शिशु का पद - संचालन;
दे सकता सहयोग योग के ही शासन का
प्रकृति शक्ति को अवसर विजयी वीर सृजन का।

होता कर्म कृतार्थ योग के ही संगम से,
होता अन्वित श्रेय भोग में योग - नियम से;
श्रेय - शक्ति को परम्परा की बना प्रतिष्ठा,
है संस्कृति का कवच कर्म में योगज निष्ठा।

योग कर्म में सहज श्रेय का अन्वय करता,
और श्रेय में शक्ति वीर्य की निर्भय भरता;
श्रेय कर्म का प्रेम और सेवा में फलता,
दर्प शक्ति का अनय दुष्ट - असुरों का दलता।

दीर्घ योग में सेनानी के पुण्य सृजन के,
तुम तन्मय हो रहीं योग से तन के मन के;
आत्मनिष्ठ हो सफल बनाऊँ योग तुम्हारा,
उचित, प्रेम से दूँ स्वकर्म में तुम्हें सहारा।

कर कठोर तप - नियम प्राण का, तन का, मन का,
कर सकती है प्रकृति - शक्ति ही योग सृजन का;
है नर का सहयोग योग का चिर उपकारी,
हो सकती कृत कृत्य प्रेम से नर के नारी।

नहीं प्रेम है मुक्त - भोग इन्द्रिय औ मन का,
किन्तु त्याग सेवा से संयुत तप जीवन का;
यही प्रेम का योग श्रेय गति का सहकारी,
बनती नर की शक्ति योग से निर्भय नारी।

प्रेम योग के सहित सृजन का योग तुम्हारा,
सफल करेगा प्रिये! पुण्य गृह धर्म हमारा;
धर्म योग यह सिद्ध देव - नर का नय होगा,
इसी योग से लोक अनय से निर्भय होगा।

चिति ही आश्रय विषय आत्म - निष्ठा का नर की,
आत्म योग को छोड़ न साधन किसी अपर की
उसे अपेक्षा; सृष्टि - योग के हित नारी के,
किन्तु अपेक्षित साधन प्राकृत निधि सारी के।

यह पर्वत की प्रकृति पूर्ण सब उपकरणों से,
हुई प्रथम कृतकृत्य तुम्हारे ही चरणो से;
इसके विपुल साधनों को अब तुम अपनाओ,
कर इसका उपयोग योग निज सफल बनाओ।

यह प्रभात का पवन शुद्ध शीतल हितकारी,
गन्ध भार से मन्द, मोद का मृदु संचारी,
नर्म व्याज से मर्म स्पर्श प्राणों का करता,
जीवन का शुचि सार श्वास के पथ से भरता।

यह पर्वत का करुण हृदय भू सिंचन करता,
मुक्ता-द्रव-सा दृग कोटर से निर्मल झरता;
गंगा की सहस्र धारों मे शतपथ बहती;
अमृतधार-सी यह निसर्ग की करुणा महती।

यह पर्वत की भूमि कठिन मुनियों के तन-सी
खिलतीं पुष्पित कुंज लतायें कोमल मन-सी,
पारस पद के पुण्य परस से होगी सोना,
श्री से चिर वैकुण्ठ बनेगा कोना कोना।

गूँज रहा शुचि गगन विहंगों के गानों से,
कुंज द्रुमों की मरमर औ सरि की तानों से;
घन गर्जन में ध्वनित वृषभ-रव कम्पन कारी,
सरि वीणा पर पृथु मृदंग-स्वर-सा संचारी।

प्राची में खिल रही उषा की प्रभा निराली,
शत वर्णों में सजी धरा के उर की थाली;
एक ज्योति के बहु रूपों-से खिले सजीले,
निर्झर, औषधि, सुमन, रत्न छवि से गर्वीले।

यह प्रात का भ्रमण सहज व्यायाम तुम्हारा,
स्वास्थ्य - मनोरंजन दोनों का एक सहारा;
होगा दोहद सुखद गर्भ को स्फूर्ति मिलेगी,
सहज प्रसव में मूर्त्त योग की भूति खिलेगी।"

सुन शंकर के वचन उठी गिरिजा कुछ श्रम से;
स्वामी का अनुसरण किया मन्थर पद - क्रम से;
नन्दीश्वर ने उन्हे द्वार पर शीष नवाया,
दोनों का आशीष ईश के मुख से पाया।

करते मधुरालाप चले दोनो नग - पथ मे,
हुआ विश्व का श्रेय सहज अन्वित मन्मथ मे,
लक्ष्य तुल्य शिव परम पुरुष पथ दर्शन करते,
प्रकृति स्फुरण से चरण उमा के अनुगम करते.

बीज सृष्टि का लिये गर्भ मे मूर्त प्रकृति - सी,
देख रही थी उमा मुग्ध हो निज अनुकृति - सी;
प्रतिबिम्बित - सी विश्व - मनस से नभ दर्पण मे
खिले उमा के भाव - सुमन बहु छवि - कानन मे।

शिखर शीष पर सान्द्र मेघ कुन्तल - से छाये,
मन्द वायु मे मुक्त सहज उर्मिल लहराये;
प्राची ने खिल रही प्रफुल्लित मुख की छाया,
हुई चतुर्दिक स्फुटित प्राण की मंजुल माया।

चपल दृगो के शत - रूपों - से बिम्बित सर में
इन्दीवर दल खोल प्रभा के पुण्य प्रहर मे,
धवल अपांगों की विद्युत - से विस्मित होती,
देख रही निज रूप प्रकृति, मन हर्षित होती।

पुष्पांकित हरिताभ - वसन - सी दिव्य वनानी,
लहराती थी प्रात पवन में शोभा - सानी;
जीवन का स्वर शुद्ध पवन निस्वन में भरते,
मुक्त - हास - से निर्मल निर्झर कल कल झरते।

अखिल विश्व-छवि की समष्टि की चिन्मय प्रतिमा,
उमा बन रही आदि पुरुष शंकर की महिमा;
देख उमा को और प्रकृति को विस्मय करते,
चलते शिव रस और दया से मृदु पद धरते।

परम पुरुष की पटरानी पावन माया - सी,
शिव के दिव्य देह की चिर उज्ज्वल छाया - सी;
करती मधुरालाप उमा निज अन्तर्ध्वनि - सी,
मन्द चरण चल रही संग जग - श्रेय - सरणि - सी।

प्राणों का सुख सरस बन रही सुषमा वन की,
उतरी थी मानो अवनी पर श्री नन्दन की;
नयनों का निर्मल प्रसाद करती हरियाली,
कुसुमो के वर्णों की उत्सव छटा निराली।

हैम वायु का स्पर्श अंग को पुलकित करता,
सुमनों का आमोद मोद मन मे था भरता;
खग कुल का कलरव श्रवणों का रंजन करता,
शिव का सुन्दर संग प्राण मे मधु रस भरता।

जीवनमयी प्रसन्न प्रकृति के सुख सेवन मे,
थी प्रसन्नता पूर्ण, खिन्न गिरिजा के मन मे;
प्राणों का उल्लास हर्ष बन मुख पर छाया,
नयन, वदन में द्विगुण समादर - श्री ने पाया।

देख रही हर्षित नयनो से वन की सुषमा,
स्वयं बन रही दिव्य प्रकृति की अनुपम उपमा,
कण कण का छवि, - शक्ति सार - अन्तर मे भरती,
विषम पन्थ मे उमा चरण दृढ़ धृति - से धरती।

देख उमा को श्रान्त अल्प भी मग के श्रम से,
गिरि निर्झर के तीर ओर गर्वित पद क्रम से
बढ़कर, शिव ने किया आचमन पावन, जल का,
श्रम - सीकर - सा स्नेह उमा का मुख पर झलका;

कर शिव का अनुसरण उमा भी तट पर आई,
शीतल जल के स्पर्शन से पथ – श्रान्ति मिटाई;
बैठे एक समीप शिला पर शंकर ज्ञानी,
करते स्निग्ध दृगो से गिरिजा की अगवानी।

मन्थर पद से निकट पार्वती जब तक आई,
शिव ने सहज विनोद हेतु सुसमाधि लगाई;
करके पूर्ण निरोध श्वास कुम्भक मे खींचे,
बैठे अविचल ईश नयन युग अपने मींचे।

मन्द चरण से उमा अलक्षित सम्मुख आई,
लखकर योगासीन ईश को मृदु मुसकाई;
भरकर आदि स्वरूप शम्भु का स्निग्ध दृगो में,
जोड़ पाणि युग, धरे प्रणत युग पलक पगों मे।

रोमांचित हो मृदुल स्पर्श से शंकर जागे,
उमा हृदय मे खिले पूर्व अनुभव अनुरागे;
श्वास सहित हो चकित, शम्भु ने लोचन खोले,
औ विस्मित - से वचन उमा से शंकर बोले—

"तुम त्रिलोक की सुषमा - सी साकार अकेली,
बन योगी के हेतु मधुर अज्ञात पहेली;
फिरती किस अभीष्ट के हित निर्भय निर्जन मे ?
शंका होती तुम्हें देखकर मेरे मन मे।

चिन्तामणि - सी दीप्त रूप की अद्भुत ज्वाला,
देववधू, गन्धर्व, अप्सरा किन्नर बाला;
तुम हो कौन रूप औ रति की अद्भुत माया,
किन पुण्यो से इस निर्जन ने तुमको पाया ?

करने को तप भंग अप्सरा - सी तुम आईं,
अंग - स्पर्श मे नहीं तनिक भी तुम सकुचाईं;
अबला हो तुम क्षमा, किन्तु बोलो सुकुमारी,
कौन कामना आज करूँ मैं पूर्ण तुम्हारी।

मैं स्वभाव से सिद्ध योग का अविचल सेवी,
किया काम का दहन दृष्टि से मैने देवी;
विस्मय, तुमको देख दया ही मेरी जागी,
अविकारी भी चित्त हुआ किंचित् अनुरागी।

बन समाधि - उपसर्ग रूपसी अनुपम नारी,
आई योग - विभूति रूप धर कर मनहारी;
फिर भी मै प्रसन्न हूँ यह सौभाग्य तुम्हारा,
निश्चय कोई पूर्व पुण्य दे रहा सहारा।

मैं प्रसन्न हूँ, विदित विश्व मे अवढरदानी,
अवसर है लो माँग आज अपनी मनमानी;
कल्प वृक्ष से आज सभी वाञ्छित पाओगी,
कल्प लता भी सहज विश्व की बन जाओगी।

आत्म - भाव से आज अभय है मेरा तुमको
होता कुछ न अदेय प्रफुल्लित कल्पद्रुम को ;
करो न कुछ संकोच ग्रन्थि निज उर की खोलो .
दृग के, उर के भाव मधुर वाणी से बोलो।"

सुन नटवर के वचन कुशल गिरिजा मुसकाई ,
"अपने को दूँ या कि तुम्हे दूँ आज बधाई ?"
स्नेह और अधिकार भरे स्वर के उप - क्रम से ,
अन्तर मे उल्लास भरी बोली संभ्रम से।

"है मेरा सौभाग्य, सफल है योग तुम्हारा ,
जो इस निर्जन - ओर दृष्टि ने आज निहारा ;
था यह निर्जन प्रान्त अभी तक सूना सूना ,
इस सुयोग से हुआ आज यह जाग्रत दूना।

नहीं देव गन्धर्व अप्सरा किन्नर बाला ,
मिला मानवी को पुण्यो से रूप निराला ;
इस वसुधा के चूड़ामणि की कान्ति - कुमारी ,
मैं हिमगिरि - के महाराज की राजदुलारी।

है उन्नत कैलाश शिखर पर मन्दिर मेरा ,
करती हूँ तपयोग सहित एकान्त बसेरा ;
उदासीनता से उन्मन निज निर्मल मन को ,
करने रंजित निकली थी मैं विपिन - भ्रमण को।

निज मन्दिर के योग्य देवता - से तुम पाये ,
इसीलिये चरणों मे मैंने पलक झुकाये ;
रूप और श्रद्धा से यदि तुम भी अनुरागे ,
तो कृतार्थ मैं, भाग्य तुम्हारे भी अब जागे।

बनवासी तप-लीन हुये तुम सहज उदासी,
हो समाधि में आत्मलीन केवल सँन्यासी;
मिली सिद्धि साक्षात् योग है सफल तुम्हारा,
है अपूर्व संयोग योग का मिलन हमारा।

काम-देह का दहन दृष्टि से ही तुम करके,
हुये पूर्ण कृत कृत्य योग मे विक्रम भर के;
रतिवन्ती-सी पर आत्मा मे अमर मदन की,
खोज रही अनुरक्त योग मे गति जीवन की।

धन्य आज जो अनायास ही तुमको पाया,
तप पुण्य एकत्र रूप धर अद्भुत आया;
तुमको पाकर पूर्ण कामनायें सब मेरी,
सदा चाहती रहना इन चरणों की चेरी।

इन चरणों मे अखिल इष्ट पाया जीवन का,
चिन्तामणि-सा पुण्य दिव्य अद्भुत दर्शन का;
अब न रहा कुछ शेष याच्य अन्तर का मेरा,
इस प्रभात मे मिटा प्राण का अखिल अँधेरा।

दर्शन से वर मिला, और क्या माँगू मुख से,
और कौन-सा अर्थ अधिक इस अनुपम सुख से;
मिला सभी कुछ मुझे देव! इस आत्मार्पण मे,
तुम्हें मिलेगे सकल इष्ट सस्नेह ग्रहण मे।

आओ मेरे देव! दिव्य मन्दिर मे आओ,
अपने गौरव सहित प्रीति मम सफल बनाओ;
हुआ योग तो पूर्ण सफल आज आगम से मेरे,
होंगे वैभव सहित प्रीति के मेरी चेरे।

इस एकान्त योग मे जितना संकट पाया,
उससे शतगुण तुम्हें मिलेगी सुख की माया;
एकाकी निष्कर्म, उदासी औ संन्यासी,
होगे कृती महान दिव्य मन्दिर – अधिवासी।"

कहते कहते फूटी मधुर हँसी की धारा,
दिया ईश ने सुदृढ़ हाथ का मृदुल सहारा;
और उमा को दिव्य शिला पर सहज चढ़ाया,
वाम पार्श्व मे प्रीति सहित सोल्लास बिठाया।

धूसर वृष – सी भीम शिला पर बैठे, मन के
मुक्त वेग से विहर रहे वन औ जीवन के
किन प्राचीन नवीन पथो मे वार्ता – क्रम से,
रस अनुभव कर रहे, रहित गति, धृति औ श्रम से।

शिला कक्ष से उत्स हर्ष के कितने फूटे,
मुक्त हास के कितने निर्मल निर्झर छूटे;
त्याग – राग की वहीं सरस धारायें कितनी,
टूटी मन के भावों की कारायें कितनी।

पूर्व क्षितिज पर देख भानु को ऊपर चढ़ते,
और विलोक प्रकाश – ताप को क्रमशः बढ़ते,
मानों सुन्दर मधुर स्वप्न से सहसा जागी,
बोली विस्मित उमा मुग्ध मन मे अनुरागी

"हम अभिनय मे लीन रहे घर को भी भूले,
यदि मन हो स्वच्छन्द सभी तारों को छू ले;
लौटेंगे घर या कि यहीं घर नूतन होगा,
चिर योगी को कभी विश्व मे बन्धन होगा।"

"हम योगी हैं घर ही है सर्वत्र हमारा,
अखिल भुवन है भवन भवानी सदा तुम्हारा;
संग तुम्हारे सदा भवन ही-सा लगता है,
गृह का दीपक इन आँखो में नित जगता है।

फिर भी यदि, कैलास तुम्हारा प्रियतम पुर है,
तो चलने को संग भृत्य यह अति आतुर है;
कह शंकर ने, उतर, पाणि का दिया सहारा,
और उमा को शिला पृष्ठ से सहज उतारा।

जीवन और जगत की बहुविधि चर्चा करते,
पर्वत पथ मे चले उभय गिन गिन पग धरते;
बार बार आकर सम-से निज रम्य भवन मे,
फिर आते आलाप-सरणि से वे त्रिभुवन मे!

निज जनपद की गण-संस्कृति के परिष्करण की
सरल प्रशंसा सुनकर मुख से शिव के मन की;
मन मे हर्षित हुई उमा हो पुलकित तन मे,
होती किसको प्रिय न प्रशंसा निज जीवन मे!

बोली पुलकित उमा मन्द स्मिति से शंकर से,
"होती सस्कृति सिद्ध सदा गौरी के वर से;
स्वामी का अनुसरण सदा करते अनुचर हैं,
जन सस्कृति मे गुंजित प्रिय! प्रतिध्वनि के स्वर हैं।"

समझ उमा का मधुर व्यंग शकर मुसकाये,
लज्जा, प्रीति, विनोद उमा के मुख पर छाये;
बोले शंकर, "प्रिये सत्य है हँसी तुम्हारी,
है संस्कृति की शक्ति सर्वदा संस्कृत नारी।

संस्कृत नारी स्वयं शील - संस्कृति - गौरव के
शुभ प्रभाव से त्याग, स्नेह, सेवा औ धृति के;
कर सकती है संस्कृत, तप से पावन नर को,
जैसे तुमने किया प्रिये! संस्कृत शंकर को।

श्रेष्ठ जनो के जीवन जनता के दर्पण हैं,
करते नित अनुसरण उन्हीं का सरल सुजन हैं;
सत्पुरुषो की श्रद्धा बनकर संस्कृत नारी,
करती सरल जनो को संस्कृति का अधिकारी।

है संस्कृति का पाठ व्यर्थ वर्षा के जल-सा,
रहता जड़ ही असुर हृदय नित स्थाणु-उपल-सा;
नहीं सरस हो सद्भावो के सुमन सजीले,
खिलते उसमे कभी सहज करुणा से गीले।

सदाचार औ सद्भावो से निर्मल निखरी,
रहती संस्कृति ओस कणो-सी बिखरी बिखरी;
बर्बरता की अल्प पवन से विचलित होती,
व्यष्टि-बिन्दुयें हो विचूर्ण धरनी मे सोती।

यद्यपि उसकी अमर आर्द्रता नभ मे रहती,
किन्तु बिन्दु तो सदा नाश की चोटें सहती;
दर्प-दुन्दुभी बजती नभ मे असुर विजय की,
औ अलक्ष्य अज्ञात अमरता संस्कृति-लय की।

संस्कृति के ये बिन्दु न होकर संचित सारे
जब तक सिन्धु रचेंगे, हो अवनी से खारे;
प्रलय मेघ बन नहीं करेंगे करका वर्षण,
कर न सकेंगे तब तक सुर असुरो का तर्पण।

बिना शक्ति के शिव होता है शव - सा निर्बल,
बिना संघ के संस्कृति का क्या होता सम्बल?
संघ - शक्ति के ही अभाव में सुर गण सारे,
अपमानित हो बार बार असुरों से हारे।

क्रिया - शक्ति - सी तुम्हीं बनाती शिव को शंकर,
शक्तिमान ही शंकर बनते हैं प्रलयंकर;
मातृशक्ति से ही प्रसूत होकर सेनानी,
सुर - संस्कृति का त्राण करेगा हे कल्याणी!"

कहते कहते शिव ने ओर उमा की देखा,
मुख पर लज्जा की, अधरों पर स्मिति रेखा
दौड़ गई, सहसा पुलकित हो गिरिजा बोली—
"रहने दो बस, आती तुमको सदा ठिठोली।"

"नहीं ठिठोली प्रिये! सत्य शाश्वत जीवन का,
साधन जग मे नहीं अन्य है असुर दमन का;
देवों का अनुरोध हो रहा शीघ्र सफल है,
शिव की मंगल शक्ति बन रही उनका बल है।"

"देवों का अनुरोध बना मेरे हित स्वामी!
अमर अनुग्रह, हैं प्रसन्न प्रिय अन्तर्यामी;
देवकार्य सौभाग्य सहज मेरा बन आया,"
बोली गद्‌गद् उमा, हर्ष था मुख पर छाया।

बीत गया अज्ञात पन्थ यों वार्ता क्रम में,
मिला हर्ष आमोद उमा को गति के श्रम में;
अविज्ञात आ गये निकट आश्रम के अपने,
सहज काम्य स्थल पर ले आते जैसे सपने।

जनपद के जन वृन्द, द्वार पर नन्दीश्वर के
बैठे निकट समुत्सुक थे, गौरीशंकर के
दर्शन के हित, भेंट विपुल ले फल फूलों की,
औ पर्वत के सुधा समान कन्द-मूलो की।

संग उमा के देख आरहे शिवशंकर को,
हो प्रसन्न सब लगे देखने एक अपर को;
खड़े हो गये ले ले फल फूलों की झारी,
गिरि-वासी सब बाल वृद्ध उत्सुक नर-नारी।

करने को स्वीकार प्रणति श्रद्धामय सबकी,
पदगति सहसा रुकी उमा से अनुगत भव की;
हुये प्रफुल्लित अर्पित कर निज भेट चरण मे,
दृग में जल था, पुलक अंग मे, श्रद्धा मन मे।

दे सबको आशीष ईश गिरिजा से बोले,
"ये मन के उपहार जायँ किस मन से तोले?"
नन्दीश्वर की ओर दृष्टि साकूत फिराई,
क्षण भर मे ध्वनि तूर्ण तूर्य की पड़ी सुनाई।

चतुर्दिशा से दौड़े दौड़े गण दल आये,
और सभी उपहार शीष पर सहज उठाये;
चले कुटी की ओर तीव्र गण आगे आगे,
बोले मौन जनों से शिव मन में अनुरागे।

"आओ आओ बन्धु वर्ग! तुम भी तो आओ,
लाये ही तो भेंट कुटी तक तो पहुँचाओ;"
मुक्तहास में सहज प्रकट कर उपकृति सारी,
चले उमाशंकर के पीछे सब नर नारी।

देख रहीं पथ भरे मौन उत्सुकता दृग में,
पल संचय कर रहीं विपुल फूलों से स्रग में,
जया और विजया ने कर अभिवन्दन नति से;
किया गणों को और जनों को इंगित मति से।

प्रीति पार्श्व दे समुद उमा को भीतर लाईं,
स्नेह, विनोद, हास से पथ की श्रान्ति मिटाई;
जान उमा का भाव जया ने, गिन गिन मन में,
किये कन्द, फल, मूल गणों को वितरित क्षण मे।

ले बहुमूल्य रत्न औषधियाँ संस्कृत कर में,
की विजया ने भेंट जनों को, मधुर अधर में
भरे मन्द स्मिति; एक कण्ठ से सब उठ बोले,
"भक्ति पन्थ में नहीं पण्य थे हमने खोले।"

विजया बोली "है अमूल्य श्रद्धा अन्तर की,
यह प्रसाद औ प्रीति मात्र है परमेश्वर की।"
दर्शन से कृत-कृत्य, तुष्ट हो कुशल वचन से,
लौटे जन अपने जनपद को प्रमुदित मन से।

बोली हंसकर जया "देवि द्विगुणित हितकारी,
उषा-भ्रमण की नीति, प्रीति से पूर्ण तुम्हारी।"
औ विजया ने कहा "भ्रमण का उत्तम फल है,
होता निर्मल चित्त, प्रसव को मिलता बल है।

भ्रूकुटि भंग कर उमा सहज लज्जित मुसकाई,
फलाहार को भेंट जया ने सनय बढ़ाई;
औ विजया ने कहा 'प्रसाद देवि! स्वामी का,
समुद ग्राह्य है काम-फलद अन्तर्यामी का।'

सर्ग १४

कुमार जन्म

प्रेम और विनोद के सद्भाव मे समुदार,
हुआ दुर्वह भी उमा को सुवह दोहद भार;
अलस तन मे भी रहा मन धीर और प्रसन्न,
हुईं अनुदित कामनाये अयाचित सम्पन्न।

स्नेह पूर्वक शिव रहे करते सकल सत्कार,
प्रेम से सखियाँ रही करतीं विहित परिचार;
मिल रहे थे उमड़ उर मे प्रीति औ विश्वास,
कालक्रम से आ रहा था पर्व अविदित पास।

पुंसवन के बाद फिर कब हुआ शुभ सीमन्त
रवि उदय को कब हुआ आकुल निशीथ दिगन्त,
नित्य गिनकर भी किसी को कब हुआ आभास
हो गये अविदित उमा के पूर्ण शुभ नव मास।

एक दिन प्राची क्षितिज पर उदय होता सूर्य,
शिव कुटी के द्वार पर बज उठा प्रमुदित तूर्य;
वायुगति से सूचना पहुँची सभी के पास
हो उठा उल्लास से पुलकित अखिल कैलास!

प्रात ही पा दूत से प्रिय हर्ष का संवाद,
पार्श्व के पल्ली पदो के जन सहित आह्लाद,
वस्त्र आभूषण सहित ले कन्द, मधु, फल, फूल,
चल पड़े समवेत हो कैलास के अनुकूल।

ऊर्ध्व गामी जन सरित-सी कर रही कलनाद,
घाटियो की सरणियों में भर विपुल आह्लाद,
बढ़ रही थी वेग से कैलास गिरि की ओर,
विदित होता मुखर मुख, पर दीखता कब छोर।

वेग से गम्भीर होता घोष आया पास,
खिल उठा कैलास-मुख पर भूमि का उल्लास;
बढ़ चला वह शिव कुटी की ओर होता मन्द,
नयन में, स्वर मे, उमड़ता था अमित आनन्द।

नन्दिकेश्वर ने सरणि मे बढ़ विनय के साथ,
किया स्वागत नायकों का जोड़ दोनों हाथ;
बस गया था, एक नूतन नगर-सा तत्काल,
घिरा योगी के चतुर्दिक विपुल मायाजाल।

ध्यान मे पा सिद्धि के आनन्द-सा सन्देश,
स्वयं ही सप्तर्षि आये ले प्रहर्ष विशेष,
मिला आज अरुन्धती को कौनसा वरदान!
प्रेम से गद्गद् हुये थे आज निर्मल प्राण।

प्राप्त कर भृंगीश से आदर सहित सन्देश,
हर्ष और उत्साह से पुलकित हुये अमरेश;
खिल उठा अमरावती में एक नूतन रंग,
पुनर्जीवित हो गया मानों सदेह अनंग।

देवगण गन्धर्व किन्नर स्वप्न से सब जाग,
मुदित मन में कर रहे शंसित त्रिदिव के भाग;
कल्पना के सिन्धु मे जग उठा सुख का ज्वार,
खुल गये कब से मुँदे-से स्वर्ग के उर-द्वार।

देखकर अमरावती के आज खुलते द्वार,
रहे सब विस्मय कुतूहल सहित मौन निहार;
हो गया अविलम्ब सबको विदित सुख संवाद,
प्रति ध्वनित उर में हुआ गम्भीर घण्टा नाद।

बढ़ चला कैलास पथ मे इन्द्र का गजराज,
औ चला उल्लास युत पीछे समस्त समाज;
छा गये कैलास पर घन तुल्य देव-विमान,
देखते जन गण समुत्सुक ऊर्ध्वमुख अनजान।

द्वार पर स्वागत किया नन्दीश ने सुविनीत,
शक्र को शिव के निकट ले चला आज अभीत;
प्रणति पूर्वक शम्भु से बोले पुलक सुरराज,
"देव! पूर्ण हुईं हमारी कामनायें आज।"

जया ने अभिवन्दना कर शची की सोल्लास
अप्सराओं युत, कुटी में किया पूर्ण सुपास;
विनय युक्त अरुन्धती से कर शची आलाप,
कह रही थी हुये "देवों के दलित सन्ताप।"

छा गया गिरि पर पुनः विस्मय सहित उत्साह,
देखते अभ्यागतों की सब समुत्सुक राह;
श्री तथा वाणी सहित हरि-विधि पधारे आज,
स्वयं स्वागत हेतु आये शिव, सहित सुरराज।

विष्णु-विधि औ शम्भु ने युगपत विनीत प्रणाम,
परस्पर प्रमुदित किया, खिल उठे तीनों धाम;
हर्ष, नय और शील की मुखरित त्रिवेणी-धार,
बढ़ चली करने तरंगित शिव-कुटी का द्वार।

जया और शची झुकाकर विनय पूर्वक माथ,
वन्दना कर ले गईं श्री और गिरा को साथ;
मातृकाओं ने बिठाया सहित मान समीप,
गिरा बोली "जगा जग का दिव्य स्नेह प्रदीप।"

शची ने सविनय कहा ' जागे त्रिदिव के भाग,
बना त्राण त्रिलोक का शुचि तप पूत सुहाग;
सफल देवो की चिरन्तन साधना है आज,
गिरी असुरों के अनय पर आज नभ से गाज।"

गिरा ने गम्भीर स्वर से कहा मन्द सहास,
" भाग्य है तप - साधना का कृति - विनिर्मित दास,
सुर - नरों का: तेज ऊर्जित योग से निर्व्याज,
तीव्रता मे सघन, बनता व्योम - पाती गाज!

भाग्य को करता न विधि औ व्योम सहसा दान,
योग से भू - स्वर्ग करते स्वयं भाग्य विधान;
समागत शिव पार्वती का तेजवन्त कुमार,
साधना फल का त्रिजग के समन्वित अवतार।"

कहा श्री ने अधर में भर कर सरल मुसकान,
" भारती करती नियति का नित अपूर्व विधान;
गिरा ही करती समन्वित तेज का निर्माण,
सुनो सोहर मे उसी की आज पहली तान।

शक्ति - शिव के साधना - मय योग का अधिकार,
भूमि पर बनकर अनय का अ - प्रतिहत प्रतिकार।
गिरा के वरदान - सा यह दिव्य - जात कुमार,
विश्व की श्री का करेगा श्रेय से शृंगार।"

हो रहा शिव कक्ष में भी था मधुर संलाप,
हास से उठता कभी था व्योम - मंडल काँप;
कहा हरि ने " हो गया हलका हमारा भार,
कर रहे शिव स्वयं पालित अब अखिल संसार।"

कहा विधि ने "क्षीरनिधि में शेष-शय्या बीच,
शयन अब निश्चिन्त करिये आप दृग दल मींच;
नाभि-निःसृत कमल पर तज सृजन का सब खेद,
पढ़ेंगे निश्चिन्त हम भी अब अहर्निश वेद।

सृष्टि क्रम में हो गया था कुछ दुरित उत्पन्न,
हो रहे सुर - मुनि मनुज थे अत. अधिक विपन्न;
आज पूरित हुआ मेरा श्रेय - सृष्टि - विधान,
सृष्टि के संस्कार पथ का हुआ चिर निर्माण।

दो महान विभूतियों के कठिन तप का तेज,
सृष्टि की मंगल सरणि को रहा आज सहेज:
योग से अन्वित प्रकृति औ पुरुष का शुचि प्रेम,
बन रहा संत्रस्त जग का आज शाश्वत क्षेम।"

विष्णु बोले 'अब हमारा तीर्थ है कैलास,
धर्म केवल शेष उत्सव और यह परिहास।"
इधर अधरों से बिखरता मुक्त मुक्ताकोष,
उधर गूँजा अंगिरा के शंख का निर्घोष।

मध्य कक्षा में कुटी की सजाकर सब साज,
बढ़ाकर जन औ गणों का कुतूहल निर्व्याज,
नामकरण कुमार का शुचि शास्त्र के अनुसार,
रच रहे ऋषिराज थे विधि और लोक विचार।

स्कन्ध पर धर कर उमा के प्रेम से मृदु हाथ,
ला रहीं थीं श्री तथा वाणी सँम्हाले साथ;
हो रही शिशु - रत्न से दीपित उमा की गोद,
खिल रहा सबके हृदय में था अपूर्व प्रमोद।

बिठा आसन पर उमा को पार्श्व मे शुचि वाम,
भारती ने कहा सस्मित "कहाँ मंगलधाम ?"
कहा विधि ने ईश से "सबके सदा आराध्य,
आज तुमको भी हुआ कुछ स्नेहविधि का साध्य।"

विनय पूर्वक पार्वती के बैठ दक्षिण भाग,
किया सब विधि-कर्म शिव ने सहित नय-अनुराग;
अंगिरा ने कहा शिव से "धरो नाम विचार",
कहा शिव ने "नाम इसका स्वयं सिद्ध कुमार।"

कहा विधि ने "यह त्रिजग के क्षेम का नव छन्द,
देव-सेनानी बनेगा विदित विजयी स्कन्द;"
विष्णु बोले स्मिति सहित 'हर कर धरा का भार,
विश्व मे होगा विदित यह कार्तिकेय कुमार।"

भारती ने कहे शिव से वचन मन मे तोल,
'ब्रह्मचारी को मिला शिव ! रत्न प्रिय अनमोल;"
कहा श्री ने सहज स्मिति से "योग की अनुभूति,
विश्व के सूने हृदय की बनी पूर्ण विभूति।"

कहा शिव ने, "भारती के वचन का वरदान,
गूँजता तापस भवन में आज बनकर गान;
और श्री की कृपा का वह प्रीति पूर्ण प्रसाद,
आज होता उल्लसित बन लोक का आह्लाद।"

स्नेह औ नय का परस्पर मोदमय व्यवहार,
कर रहा था शिव कुटी मे हर्ष का विस्तार;
हो रहे सब देव, गण, जन अमित हर्ष-विभोर,
फैलता आलोक-सा आनन्द चारों ओर।

शील से मिल पुण्य संगम रच रहा अनुराग,
मधुर वाणी विरचती पद पद अपूर्व प्रयाग;
बना तीर्थ त्रिलोक का वह विजन - सा कैलास,
अल्प दिन का वास भी वह हुआ कल्प निवास।

नामकरण निमित्त से जो हुआ उत्सव हर्ष,
स्नेह, नय औ शक्ति का उससे हुआ उत्कर्ष.
स्नेह ही आनन्द है, औ शील नय का मान,
स्नेह का ही संघ है शिव - शक्ति - पूर्ण - विधान।

प्रेम औ नय से विदा ले सभी बारम्बार.
गये निज निज धाम को जब अतिथि दिव्य उदार,
शून्य - सा लगने लगा कैलास का वह प्रान्त,
पूर्व जन से पूर्ण भी होता विदित एकान्त।

दीप - सा करता कुमार कुटीर में आलोक,
स्नेह से बढ़ता, मिटाता शून्य उर का शोक;
रुदन का रव शून्यता एकान्त की कर भंग,
पूर्ण करता था सभी के स्नेह का उत्संग।

खिला था कैलास तरु पर एक अनुपम फूल,
हो गई जिसकी सुरभि से धन्य गिरि की धूल;
फैलता जिसका चतुर्दिक पुण्य गन्ध पराग,
जग रहा पावन हृदय मे था अमित अनुराग।

मिला था कैलास गिरि को एक अनुपम रत्न.
हुआ जिससे सफल शिव का तप.पूर्ण प्रयत्न;
सूर्य से बढ़कर त्रिजग में सर्वदा आलोक,
कल्पमणि - सा कर, हरेगा विश्व का जो शोक।

जिस तपोमय तेज से हो भस्म तनु से काम,
हुआ शुद्ध स्वरूप से वह अतनु अति अभिराम
शक्ति की शिव साधना से हो सहज साकार,
अवतरित भू पर हुआ बन कर अपूर्व कुमार।

छा रहा था कुसुम - तन में पुण्य प्रेम - पराग,
दिव्य तप का तेज दृग में रहा उज्ज्वल जाग;
मृदुल अंगों में छिपी थी शक्ति कौन अनन्त,
अग्नि कण में गुप्त रहती यथा ज्वाल दुरन्त।

मातृकायें मानतीं थीं स्नेह का अधिकार,
निरन्तर सेवा तथा उत्सुक अनन्त दुलार;
चाहतीं थीं अंक से ही अंक में परिचार,
भूमि पर पर्यंक से सकतीं न तनिक उतार।

कहा शिव ने "देवि जीवन का यही चिरमन्त्र,
चाहता प्रति जीव रहना सदा पूर्ण स्वतन्त्र;
अंक-बन्धन से न शिशु का करो रुद्ध विकास,
मोह बनकर प्रेम हरता प्रगति का उल्लास।"

बना शिव सन्देश सुत को मुक्ति का वरदान,
शेष बन्धन एक था बस स्नेह का स्तन पान;
दोल की क्रीड़ा तथा पर्यंक का विश्राम
अधिक अंक - दुलार से आनन्द थे अभिराम।

मुक्त क्रीड़ा से बिखरता भुवन में आनन्द,
रुचिर रोदन - हास - रव मे गूँजते मधु - छन्द;
सरल दृग की श्यामता मे विश्व का विश्वास,
स्वप्न - स्मिति में स्वर्ग के आलोक का उल्लास।

इस प्रकार कुटीर में कर पूर्ण चातुर्मास,
निष्क्रमण उत्सव हुआ गिरि पर सहित उल्लास;
खिल रहा कैलास पर था प्रभा पूर्ण वसन्त,
विलसती श्री चतुर्दिक रस रूप मयी अनन्त।

पुण्य प्राची-अंक में प्रिय बाल सूर्य समान,
दीप्त स्कन्दकुमार, करता सृष्टि को छविमान;
देखता उत्सुक दृगों से विश्व पूर्ण नवीन,
वर्ण औ छवि पर प्रकृति की मुग्ध विस्मय लीन।

शुचि वसन्त विभावरी में देख निर्मल चन्द्र,
लघु करो से यत्न करता ग्रहण हेतु अतन्द्र;
लोक परिचय की सरणि का सूत्र बन आलोक,
नयन करता ज्ञान-पथ मे, तीर्थ पर बस रोक।

लोरियो का शब्द बनता श्रवण का मधु गीत,
स्पर्श-दर्शन वस्तुओ का ज्ञान रुचिर पुनीत;
अन्नप्राशन से हुआ आरम्भ रुचिमय स्वाद,
विश्व का परिचय बना नित नवलतर आह्लाद।

लगा घुटनो से विचरने कुटी मे स्वच्छन्द,
मोद भर माता-पिता के हृदय में प्रिय स्कन्द;
पास आते पुत्र की सुन हर्षमय किलकार,
उमड़ता उनके हृदय में प्रेम पारावार।

सहज लीला में जगा कर नया नित्य विनोद,
स्कन्द भरता हृदय मे सबके अपूर्व प्रमोद;
विविध क्रीड़ायें कुतूहल पूर्ण औ स्वच्छन्द,
भर रही मन में, भवन में, विपिन में आनन्द।

दिव्य दर्शन से जनों के हुये चक्षु कृतार्थ,
मुनिवरों को प्राप्त होता मूर्त्त-सा परमार्थ,
उमा-शिव को जान पड़ता तपःफल का सार;
पुत्र संस्कृति की प्रतिष्ठा का रुचिर आधार।

कामना का स्नेह से कर मधुर रस-संस्कार;
दो हृदय की ग्रन्थि बनती मुक्ति का अधिकार;
योग-तप से काम बनता पूत होकर प्रेम,
प्रतिफलित हो पुत्र में बनता जगत का क्षेम।

आप्तकाम प्रकाम होकर काम हो निष्काम,
स्नेह सेवा से सहज अभिषिक्त अति अभिराम,
देह के दौर्बल्य से बन हृदय की अनुभूति,
विश्व की मंगलमयी बनता मनोज्ञ विभूति।

दग्ध तप के तेज से वह काम की प्रिय देह,
शुद्ध स्वर्ण समान पा रुचि-कान्ति निस्सन्देह;
शक्ति-शिव की प्रीति का बन कीर्तिवन्त कुमार,
बना नवयुग की अवनि का श्रेयमय शृंगार।

योग तप का गर्व, जिसको सहित स्नेह निहार,
पार्वती की प्रीति पर शिव सहज देते वार;
और कहते "योग केवल मार्ग का है क्षेम,
लक्ष्य जीवन का सदा है किन्तु पावन प्रेम।"

लोक सेवा की सरणि का सूत्र केवल पुत्र,
सफल कर इह जन्म, करता सहज धन्य अमुत्र;
प्रेम का अवतार भू पर है सदेह कुमार,
सहज लीला से करेगा विश्व का उद्धार।

विविध लीला देख सुत की मुदित होते तात,
और पुलकित मातु होती देख नव उत्पात;
चार कर-पद से भवन मे मुक्त रुचि संचार,
उपक्रम करता ग्रहण का प्रति पदार्थ निहार।

हाथ मे ले देख उसको पलट बारम्बार,
छोड़ देता भूमि पर कर हर्ष से किलकार;
ध्वंस पूर्वक विश्व-परिचय, ज्ञान-शक्ति-विकास,
कर रहा था, रच सृजन का कीर्तिमय इतिहास।

सहज क्रीड़ा औ कुतूहल का सहज व्यायाम,
ज्ञान-शक्ति विकास पूर्वक दे मधुर विश्राम;
नींद मे निर्माण करता स्वप्न के संसार
भव्य जग का रूप जिनमे रहा भाव निखार।

देख सुप्त कुमार की चिर मोहिनी वह मूर्ति,
(सुप्ति मे भी जागती वह रुचिर जीवन-स्फूर्ति)
मुग्ध होते उमा औ शिव रूप-कान्ति निहार,
देखते अनिमेष रहते, मौन कार्य बिसार।

बिखरते सस्मित अधर से ज्योति के संसार,
लुटाती उल्लास जग को स्वप्न की किलकार,
नयन से ही ईश भरते हृदय मे अनुराग,
मौन मन में मानती बहु उमा अपने भाग।

गोद मे लेकर कभी यदि ईश करते प्यार,
खेलता था पन्नगो से, सुन अभय फुंकार;
पकड़ने को भाल का विधु बढ़ाता लघु हाथ,
स्नेह-निर्भर शम्भु सुख से झुकाते निज माथ।

हर्ष पूर्वक वर्ष करके पूर्ण अपना एक,
लगा होने खड़ा क्रमश. हाथ किंचित टेक;
शीघ्र चलने लगा पद से भर मधुर किलकार,
लगा वह करने कुटी में चतुर्दिक संचार।

गुप्त रहती कौन शिशु मे शक्ति अपरम्पार,
सीखता जिससे नये नित विश्व के व्यापार;
तनिक से अवलम्ब से पाता अनन्त विकास,
नित्य नूतन सिद्धि से करता सफल आयास।

शीघ्र ही उत्साह पूर्वक अधर अपने खोल,
बोलने मुख से लगा कुछ मधुर तुतले बोल;
शब्द से बनने लगे फिर वाक्य के विन्यास,
रूप में श्री का, वचन में भारती का वास।

वचन से मिल हुआ मुखरित विश्व-विस्मय मौन,
प्रश्न बन आये कुतूहल सतत् 'क्या ?' औ 'कौन ?'
कार्य में प्रत्येक 'कैसे ?' और 'क्यो ?' की खोज,
बने जिज्ञासा-सरित के ओजमय अम्भोज।

प्यार से करती उमा थी मधुर उत्तर दान,
यत्न से करती विवर्द्धित पुत्र का प्रिय ज्ञान;
स्नेह पूर्वक शिव स्वयं आलाप कर भरपूर,
पुत्र के संशय अयाचित नित्य करते दूर।

खेल-कार्य निमित्त से थी विकसती अज्ञात,
कौन शक्ति निगूढ़, खुलता ज्ञान नित अवदात;
उमड़ते थे अंग में किस शक्ति के नव स्रोत,
वदन में किस तेज का था ओज ओत-प्रोत।

बीतता अज्ञात उत्सव हर्ष का प्रिय काल,
बढ़ रहा आनन्द – सा प्रतिदिन उमा का लाल;
विगत होते प्रहर दिन बन वर्ष के गत मास,
प्रगति का परिचय क्रिया का ज्ञान – पूर्ण विकास।

हुआ पंचम वर्ष मे जब विहित चूड़ाकर्म,
विदित माता को हुआ तब अलक छवि का मर्म;
कहाँ लहराते हुये वे रुचिर कुंचित केश,
औ कहाँ यह बाल वटु का सरल मुंडित वेश।

पूछता था सहठ माँ से अंक में धर माथ,
स्नेह से कहती उमा थी फेर सिर पर हाथ,
" शीघ्र ही होगे बड़े फिर, केश मे क्या खेद!
ब्रह्मचारी बन पढ़ेगा लाल! अब तू वेद।"

पूछते प्रिय जन विहँस कर " कहाँ सुन्दर बाल?"
किलक कर उत्तर उन्हे देता मधुर तत्काल;
' ब्रह्मचारी बन रहूँगा तात! गुरु के पास,
शास्त्र का औ शस्त्र का अब करूँगा अभ्यास।"

निकट के गिरि शिखर पर था दिव्य आश्रम एक,
पास मुनि के वहाँ पढ़ते ग्राम - बाल अनेक;
हुआ उसमें स्कन्द का विधि सहित विद्यारम्भ,
भव्य जीवन के भवन का ज्ञान ही दृढ़ स्तम्भ।

दे रहे थे अक्षरों का ज्ञान मुनि गुरु प्रात,
शस्त्र - शिक्षा - पथ बना था साँझ का उत्पात;
बालकों के दल उमड़ जब गृहों से उद्दाम,
नित्य संध्या में विरचते खेल मे सग्राम

मुक्त मन से छोड़ कर ममतामयी उत्संग,
मुक्त पद से विचरता गिरि पर कुमार - कुरंग;
देख उसको, उमड़ घिरते प्रान्त के शिशु - बाल,
खेलते थे खेल वन में कलापूर्ण कराल।

उठा कर भारी शिलायें मिल कई लघु वीर,
दुर्ग रचते थे बना कर चतुर्दिक प्राचीर;
शक्ति - सी भारी शिलायें दूर से ही छोड़,
अट्टहास समेत उसको सहज देते तोड़।

बाल धनु ले और उस पर तीर तन्मय तान,
बाल सेना वेग से करती प्रचण्ड प्रयाण;
हिंस्र पशु का शूरता से कर अभय आखेट,
कन्द, फल औ मूल से सब वीर भरते पेट।

मार्ग में आती कभी कोई अगम जलधार,
शिलाओं का सेतु रचकर वीर करते पार;
वन्य वीरों में दिखा विक्रम अपूर्व विराट,
स्कन्द सेनानी बना कैलास का सम्राट।

ज्ञान, कौशल, शक्ति में लख पुत्र का उत्कर्ष,
अमित माता - पिता को होता हृदय मे हर्ष;
बाल रवि - सा बढ़ रहा था नित्य मुख का ओज,
खिल रहा था तेज-सर में रूप का अम्भोज।

शक्ति में भी था समन्वित स्कन्द के शुचि शील,
सरस करता तेज को था स्नेह भाव सलील;
फूटता नव निर्झरों - सा था हृदय का हास,
बिखरता था लोक में आलोक - सा उल्लास।

अमल पर्वत सरित - सा था क्षिप्र जीवन - वेग,
पर्व था प्रति कार्य औ साफल्य केवल नेग;
उछलता था हरिण - सा उन्मुक्त प्राण प्रवाह,
उमड़ता उद्रेक - सा था हृदय का उत्साह।

बढ़ रहा कान्तार मे पर्वत सरित - सा ज्ञान
शास्त्र विद्या मे, गगन मे गूंजता था गान;
शस्त्र-कौशल की सरित भी गिरि - शिलायें फोड़,
कर रही थी शास्त्र-सरि से वेग बल मे होड़।

दीप्त होता था दृगों में स्निग्ध ज्ञान प्रदीप,
भाल पर मुक्ता लुटाती शास्त्र की शुचि सीप;
उमड़ता था बाहुओ मे वीर्य बल का सार,
वक्ष से ही विदित होता वीर सिंह कुमार।

सिंह शावक - सा शिखर पर गमन करता वीर,
खेल मे कर सिंह - रव देता गगन को चीर,
दरी मुख से कीर्ति होती प्रति ध्वनित अवदात,
पुत्र से दूने हुये पूजित पिता औ मात।

देख जीवन मे प्रगति - क्रम पुत्र का स्वच्छन्द,
हृदय मे होता पिता के अपरिमित आनन्द;
सोचते, है गुरु अपेक्षित योग्य इसके हेतु,
जो अखिल सम्भावनाओ के लिये हो सेतु।

योग्य गुरु से लाभ कर दीक्षा - समाहित श्रेय,
देव - सेनानी बनेगा वीर स्कन्द अजेय;
देव मनुजों की अदीक्षित शक्ति संघ - विहीन,
कर न सकती दानवों को युद्ध - बल से क्षीण।

उमा से प्रकटित किया शिव ने स्वकीय विचार,
प्रथम पुत्र - वियोग का झलका अपूर्व विकार;
सँम्हल कर तत्काल बोली "उचित ही है नाथ!
विश्व हित के हेतु दीक्षा योग्य गुरु के साथ।"

आ गये संयोग औ सौभाग्य से उस ओर,
परशुराम प्रवीर शिव के भक्त करुण - कठोर
पुण्य दर्शन हेतु शिव के एक युग के बाद,
उन्हें शिव ने या उन्होंने किया शिव को याद।

नम्र नन्दी से निवेदित जगा ज्योति - प्रदीप,
विनय से भृगुराज आये इष्टदेव समीप;
भाव - पूर्वक वन्दना कर जोड़कर युग हाथ,
झुकाया आशीष - पूर्वक चरण मे निज माथ।

देख दक्षिण पार्श्व शिव के खड़ा सिंह समान,
दिव्य स्कन्द कुमार को बालार्क - सा छविमान,
तेज, प्रतिभा, शील से हो प्रभावित भृगुराज,
"नाथ! विद्या को मिला अब शिष्य उत्तम आज।"

प्रीति पूर्वक वचन कह, देखा उमा की ओर,
पुण्य पावन शान्ति मे थी स्निग्ध करुणा कोर;
'याचना मुनिवर्य! है यह अयाचित वरदान,"
कहा गिरिजा ने "कहाँ गुरु प्राप्य आप समान।"

दूसरे ही दिन पिता का प्राप्त कर आदेश,
और धारण आश्रमोचित कर वटुक का वेश;
बाँध कर कौपीन कटि मे, स्कन्ध पर तूणीर,
हो गया उद्यत प्रयाण निमित्त निर्भय वीर।

किया चरणों में उमा के जब विनीत प्रणाम,
और मांगी विदा गद्गद् कण्ठ से अभिराम,
हृदय भर आया उमा का, उमड़ आया प्यार;
वक्ष से सुत को लगा, मुख चूम बारम्बार,

स्नेह से बोली तनय से, भर दृगों में नीर,
"श्रेष्ठ विद्या हेतु जाओ वत्स! मेरे धीर
मिल गये तुमको अनन्य सुयोग से आचार्य,
हो सुशिक्षित तुम करोगे विश्व के गुरु कार्य।"

जया रोली और अक्षत से सजाकर थाल
पास लाई, किया सुत का तिलक भूषित भाल;
खिल उठा मंगल-विभूषित व्योम-सा वह वीर
उमा ने आशीष दी कर गिरा कुछ गम्भीर।

"पुत्र मत लाना हृदय में सदन सुख का मोह,
त्याग-तप ही विश्व में है सिद्धि का सन्दोह;
हैं पिता के तुल्य ही आचार्य करुणाधाम,
और माता तुल्य विद्या श्रेयसी अभिराम।

पुत्र जाओ कुशल से ले हृदय मे विश्वास,
सफल हो आचार्य-पद का सिद्ध अन्तेवास;
द्विगुण दीपित तेज से देखूँ पुन यह भाल,
वीर सेनानी बनेगा लौट मेरे लाल!"

ले जननि से विदा करुणा-पूर्ण द्रवित कुमार,
पोंछ दृग, आया पिता के पास अन्तिम बार;
और चरणों में विनय से किया मौन प्रणाम,
हो उठे करुणार्द्र शिव भी सहज करुणाधाम।

शीष पर कर फेर सुत के, दिया आशीर्वाद,
"पुत्र! गूँजेगा त्रिजग मे तुम्हारा जयनाद
गुरु समान अनन्य बन कर विश्व में तुम वीर,
अनय से उद्धार करना धरा का ध्रुव, धीर!"

जया विजया आदि सब से ले विदा का प्यार,
चला गुरु के साथ बटु-सा कीर्तिकेय कुमार;
देखता फिर फिर अलक्षित प्रिय कुटी की ओर,
देखती अपलक उमा थी पोछती दृग-कोर।

जा रहा भृगुराज के सँग तेज से द्युतिमान,
भानु के सँग ज्योति-दीपित भव्य भौम समान;
अग्नि के सँग जा रहा हो ज्यों समुज्ज्वल तेज,
उषा ने भेजा अरुण को प्रात-संग सहेज।

सिंह शावक-सा विपिन में लय हुआ जब दूर,
द्वार से लौटी उमा तब रोक करुणा-पूर;
देख कर बैठी कुटी में मौन और उदास,
करुण स्मिति के सहित शिव आये उमा के पास।

भूत और भविष्य का कर विपुल प्रिय आलाप,
किया मुख से दूर उसके हृदय का सन्ताप;
किन्तु सूना भवन लगता था कुमार-विहीन,
मौन हो जाते कभी थे युगल ध्यान विलीन।

भंग कर परिचारिकायें मौन का प्राचीर,
कुशल बातो से बँधाती थी अलक्षित धीर;
बीतता है समय, होता खेद क्रमश: मन्द,
कार्य में तन्मय हुआ गृह भूल कर-सा स्कन्द।

हिमालय के निविड़ एकान्त औ सूने विजन में,
चतुर्दिक अद्रि - शिखरों से घिरे दुर्गम्य वन में;
समाहित योग की सम भूमिका - से भूमि तल में,
बना था एक आश्रम अगम अद्भुत पुण्य स्थल मे।

भयावह दूर से ही शून्यता उसको बनाती,
न था जनवास कोई भी जहाँ तक दृष्टि जाती,
चतुर्दिक कोट - से उन्नत तथा दुर्गम शिखर थे,
खड़े दृढ़ देवदारु अनेक प्रहरी - से प्रखर थे।

विजन मे गूँजती भागीरथी की चण्ड धारा,
न होता दृष्टिगोचर किन्तु था उसका किनारा;
चमक विद्युल्लता - सी एक पल को सान्द्र घन मे,
जगाती ज्योति-सी अद्भुत विपिन मे और मन मे।

मनुज भयभीत होते किन्तु पशु निर्भय विचरते,
न भीषण हिंसकों को देख मृदु मृग-वर्ग डरते;
अनोखी शान्ति छाई थी भयंकर भी विपिन में,
मृदुलता थी कठिन भी मार्ग के शीतल तुहिन मे।

असुर भी दूर तक थे दृष्टि गत होते न कोई,
यहाँ किस पुण्य - चय में नीति उनकी दुष्ट खोई;
यहाँ था कौन ऐसा वीर दुर्जय औ प्रतापी,
कि जिसकी भीति असुरों के हृदय में क्रूर व्यापी ?

न थे गन्धर्व, किन्नर अप्सराओं के शिविर भी,
न होते गान औ उल्लास से गुंजित अजिर भी;
तपोधन कौन ऐसा था यहाँ पर वास करता,
कि जिसके तेज से शंकित हुई रति मे अमरता ?

विपिन के गर्भ मे यह जल रही थी कौन ज्वाला,
प्रदीपित मोह - तम में यथा ऋत की यज्ञ - शाला;
उदय होता यथा आदित्य कुहरे युत गगन मे,
अनावृत ज्योति आत्मा की यथा तम-पूर्ण मन मे।

सुगन्धित धूम की थी उठ रहीं लहरें गगन मे,
रहा छा पुण्य सौरभ होम का गिरि और वन मे,
शिखायें धूम की उठ कर, अलक्षित पवन - कर से,
नियति के लेख नभ में रच रहीं अज्ञात वर - से।

तपोवन था यही भृगुराज का विख्यात जग में,
न जाता भूल कोई असुर जिसके मृत्यु - मग में;
भयंकर शान्ति में थी साधना होती प्रलय की,
प्रशिक्षा - मन्त्रणा होती अनय के चिर विजय की।

कठिन कान्तार के उस दुर्ग के भीतर रचा था,
समायत एक प्रांगण (तरु न कोई भी बचा था),
भयंकर शान्ति में उर के पृथुल करुणा प्रसर - सा,
विदित होता हिमालय के अपर वह मानसर - सा।

उसी के एक तट पर उटज निर्मित एक तृण का,
बना प्रतिशोध - मन्दिर विश्व के कारुण्य - ऋण का;
सरलता त्याग - तप की थी वहाँ साकार सारी,
कदाचित् शौर्य के सन्मुख सहज नत थी बिचारी।

टँगे थे परशु औ पालाश उसमें साथ दोनों,
हृदय से एक उनको ग्रहण करते हाथ दोनों,
हुआ था भूमि पर अवतरित अद्भुत वीर योगी,
समुद्धृत सृष्टि जिसकी नीति से निर्भ्रान्त होगी।

उटज के पास ही थी एक उज्ज्वल अस्त्र शाला,
बनी थी विश्व के हित वह विपुल विस्मय निराला;
अनोखा ज्ञान, तप औ योग का गम्भीरता से
कभी संयोग या प्रतियोग सम्भव वीरता से!

असम्भव ही जिसे संसार अब तक मानता था,
महत्ता भी अत. जिसकी न वह पहचानता था;
उसी को एक जीवन मे सफल जिसने बनाया,
जगत को श्रेय का निर्भ्रान्त पथ जिसने दिखाया।

समुन्मूलन तथा कर क्षत्रियों के दृप्त दल का,
मिटा आतंक असुरों के तथा उद्दाम बल का;
प्रमाणित कर जगत के जागरण की ब्रह्म वेला,
हुआ जो वीर ब्राह्मण विश्व मे अद्भुत अकेला।

प्रबल उद्दाम बल के अनय से कर त्राण जग का,
हुआ संकेत - ध्रुव कैलास - शिव के शुभ्र मग का;
अकिंचन ज्ञान - तप को शक्ति का दे दर्प भारी.
प्रथम शिव-शान्ति की दुर्गम सरणि जिसने विचारी।

वही भृगुराज हो क्रमशः पराजित काल - क्रम से,
समर्पित कर रहे विद्या प्रणय से पूर्ण श्रम से;
दिखा कर ज्ञान से युत शौर्य अद्भुत वृद्ध वय में,
बना दीक्षित द्विजों को अस्त्र विद्या से अभय में।

प्रहर्षित निज हृदय में आज अति आचार्य वर थे,
अधर थे स्फुरित होते औ फड़कते आज कर थे;
चिरन्तन शक्ति औ शिव की अनन्य उपासना का.
मिला था स्कन्द फल - सा सकल संचित साधना का।

यही थे सोचते भृगुराज मन में शान्त अपने,
कि "होंगे सत्य भू मे चिर - रचित निर्भ्रान्त सपने;
अमृत होगा धरा में अब सनातन धर्म मेरा,
अजय होगा सदा एकत्र विद्या - कर्म मेरा।

हृदय मे वेद, कर में परशु भीषण धर रहा हूँ,
युगों से विश्व मे यह घोषणा मैं कर रहा हूँ;
अरे! ओ! ज्ञान के साधक दलित विप्रो! अभागो!
अरे! तुम शक्ति की भी साधना के अर्थ जागो।

न होगा विश्व का उद्धार केवल ज्ञान - नय से,
प्रतिष्ठित धर्म होगा भूमि पर केवल अभय से,
अकेला बल यदपि बनता अनर्गल दर्प खल का,
अकेला ज्ञान बनता दास दुर्बल दृप्त बल का।

न होता विश्व का निर्णय विपिन या कन्दरा मे,
सदा जीवन बिगड़ता और बनता रणधरा में;
न होगा ज्ञान से जाग्रत कभी बल - दृप्त भोगी,
सदा ध्रुव - धर्म - जय की भूमिका सच्छक्ति होगी।

नहीं है विश्व के सज्जन सभी ज्ञानी विरागी,
न होकर ज्ञान मे तन्मय किसी ने देह त्यागी;
प्रकृति के धर्म रहते देह - मन के साथ सारे,
प्रवंचित हैं यहीं होते सभी साधक बिचारे।

प्रकृति के भोग मे हो संगठित बल कामचारी,
बनाता ज्ञान - तप को द्वार का केवल भिखारी;
समर्पित कर सभी साधन सुखों के और बल के,
बने सेवक, अकिंचन ज्ञान - तप हो, दुष्ट दल के।

स्वयं होकर समाहित ज्ञान में उपरत उदासी,
प्रतिष्ठित हो परम कैवल्य में एकान्त वासी,
अकेले स्वार्थ मय आनन्द का उपभोग करते,
असुर उत्पात ही बस भंग उनका योग करते।

तनिक भी ज्ञान मे यदि प्रकृति का आधार रहता,
सभी छल अर्थ - बल के विवश योगाचार सहता
पुरस्कृत कीर्ति - सुख से हो पतन को बाध्य होता,
असुर दल का प्रसाधन भर सुरो का साध्य होता।

प्रथम होकर विरत जिन कीर्ति - सुख औ मान धन से
निरत होते निभृत तप - योग मे तल्लीन मन से,
उन्हीं के दास बन कर क्रीत हा! कितने न ज्ञानी,
असुर के छत्र - चारण बन सजाते राजधानी।

असुर का साध्य केवल भोग अथवा भोग्य ही है,
असुर को ज्ञान लौकिक, और साधन - योग्य ही है,
सदा गिरि - वृष्टि सा अध्यात्म उसको व्यर्थ होता,
न होकर सरस पाहन पुष्प - दान - समर्थ होता।

यदपि है योग - सा ही व्यक्तिगत यह भोग तन का.
तदपि जड़ भोग्य बनता सूत्र आसुर संगठन का,
अबलता ज्ञान की बन प्रेरणा उनके अनय की,
बजाती दुन्दुभी इतिहास में उनकी विजय की।

सदा ही व्यक्तिगत अध्यात्म का तप - ज्ञान होता,
अखिल निधि योग की साधक निभृत उर मे सँजोता,
न बनता व्यक्तियों का साध्य यह, आराध्य जग का,
अतः ज्ञानी सदा रहता पथिक एकान्त मग का।

सदा ही व्यक्तिगत तप - योग साधन - जात रहते,
अत. साधक अकेले ही अखिल उत्पात सहते,
न बनता ज्ञान.-तप-युत योग कारण संगठन का,
अरक्षित धर्म होता हेतु मानव के पतन का।

धरा में धर्म, नय औ शान्ति के पूजित पुजारी,
बनाते मानवों को ही रहे नित धर्मचारी,
सुनाते शान्ति का उपदेश केवल सज्जनों को,
बनाते और भी दुर्बल मृदुल उनके मनो को।

स्वयं ऐश्वर्य के उपभोग से कृत कृत्य होते,
जगत के पूज्य, पर प्रच्छन्न खल के भृत्य होते,
छली आचार्य बन जग को यही ज्ञानी भुलाते,
यही कटु सत्य को सुकुमार सपनो में सुलाते।

यही असहाय कर निर्बल विश्रृंखल मानवों को,
अभय - सा दान कर उद्धत बनाते दानवों को,
इन्हीं प्रच्छन्न अरिओं को समझ कर मित्र अपना
रहा जग मूढ़ मन मे पालता नित स्वर्ग सपना।

हुये जब क्रान्ति के निर्घोष आतंकित गगन में,
रहे तब मौन ये निष्ठुर सुरक्षित बन भवन में
अरक्षित धर्म - प्रिय जन पक्षियो - से विवश मरते,
प्रवंचन का रुधिर से कठिन प्रायश्चित्त करते।

कुसुम - से शिशु अनल मे क्रान्ति की बलिदान होते,
लुटा कर लाज नारी के प्रपीड़ित प्राण रोते,
सखा ये दानवों के बन प्रवंचक धर्म - धारी,
बनाते दानवों की दया का नर को भिखारी।

✓दया पर दानवों की धर्म कब तक जी सकेगा ?
रुधिर से दुर्बलों के धर्म - तरु कब तक पलेगा ?
न जब तक शक्ति का समवाय होगा ज्ञान - नय में ,
✓प्रतिष्ठित धर्म तब तक हो न पायेगा अभय मे ।

न तज कर वचना जब तक जगत के धर्मधारी ,
बनेगे ज्ञान से युत शक्ति के निर्भय पुजारी ,
असुर के द्वार पर जब तक अनय का फल न होगा ,
अनाचारी तभी तक पाप से विह्वल न होगा ।

पड़ेगा शक्ति का जब 'वज्र दानव के अजिर मे ,
बहेगे पाप के जब पत्र अपने ही रुधिर में ,
तभी पापी अनाचारी असुर को ज्ञान होगा ,
तभी शिव धर्म का जग मे नवीन विहान होगा ।

बिलखते देख अपनी नारियों को जब भवन मे ,
निरख असहाय शिशुओ को भरे आंसू नयन मे ,
द्रवित औ दीर्ण करुणा से असुर का मर्म होगा ,
तभी निर्भय अनय से पुण्य मानव धर्म होगा ।

✓भुलाता ही सदा यह सत्य अब तक लोक आया ,
सदा इस भ्रान्ति का कटु फल पराजय - शोक पाया ,
न जाने शक्ति से क्यों धर्म का मन भीत होता ;
✓सदा नभ में रहा वह कल्पतरु के बीज बोता ।

युवा वय मे अकेले ही असुर - संहार मैंने
किये कितने, बना निष्कण्टकित संसार मैंने ,
सहस्रों बाहु असुरों के किये खण्डित परशु से
किया तर्पण अनय का दानवों के रुधिर - असु से ।

प्रकृति के धर्म से जीवित असुर की जाति रहती,
रुधिर में ही अनय के बीज की विष-पाँति बहती;
अयुत उत्पन्न होते एक से उर्वर प्रकृति में,
न कौशल और श्रम कुछ भी अनृत की सृष्टि-धृति में।

कठिन है पुण्य को औ धर्म को रक्षित बनाना,
सुरक्षित कर, निरन्तर धर्म की सरिता बहाना,
अकेले ही मिटाना मूल अवनी से अनय की;
कठिन युग - कर्म, सीमा देखकर इस देह-वय की।

अमृत होती सदा विद्या समर्पित शिष्य वर को,
मिला अब तक न अधिकारी यथोचित परशुधर को;
परम सौभाग्य है भू - स्वर्ग के ही साथ मेरा,
बनेगा शिव - कुमार त्रिलोक का नूतन सवेरा।

बनेगा यह विपश्चित वीर, योगी, ब्रह्मचारी,
करेगा यह सफल औ अमर सब विद्या हमारी;
सुरक्षित कर सुरों को शक्ति के शिव संगठन में,
करेगा धर्म का उद्धार आतंकित भुवन में।

इसी विध विप्र, योगी, ज्ञानियों के वंशधारी,
बनें यदि ज्ञान से युत शक्ति के निर्भय पुजारी,
कभी तो विश्व से उच्छेद होगा दानवों का,
प्रतिष्ठित धर्म होगा पुण्य सुर औ मानवों का।"

उठी कर्कश भुजायें फड़क मुनि की, रोष आया,
प्रलय के सूर्य - सा दीपित परशु कर में उठाया;
चले संकेत पा गुरु का सभी शिक्षाधिकारी,
चमत्कृत हो उठी कान्तार की वह प्रकृति सारी।

गगन मे वज्र - से उज्ज्वल दुधारे थे चमकते,
प्रलय के सूर्य से खण्डित परशु के फल दमकते;
चमक चिनगारियाँ नक्षत्र - दल - सी लीन होती,
निरन्तर स्फूर्ति वटुओ की प्रचण्ड नवीन होती।

प्रलय विस्फोट - सा नभ मे धनुष - टंकार होता,
भयंकर सिंह - गर्जन - सा पृथुल हुंकार होता,
शिला औ वृक्ष खण्डित हो असुर - आकार गिरते,
प्रलय के व्याल - से शर पक्षधर नभ - मध्य तिरते।

शिला पर वज्र - सी भीषण गदा औ शक्ति गिरतीं,
चमकती धूमकेतु समान नभ के बीच फिरतीं;
भयंकर अस्त्र, भीषण शस्त्र, थे निर्बन्ध चलते,
कुशलता - हस्तलाघव मे समर के छन्द पलते।

हुआ अभ्यास वह भीषण समारोपित समर - सा,
विदित प्रति वटु हुआ अवतरित भू पर परशुधर - सा;
हुये सन्तुष्ट गुरु लख स्कन्द का बल, वीर्य, विक्रम,
अचानक वृष्टि - सा व्यापार शिक्षण का गया थम।

उधर प्राची क्षितिज पर तीर निर्मल मानसर के,
हुये लक्षित अरुण हय दूर आगत रश्मि - धर के;
उषा रोली सजा कर स्वर्ण थाली में, विजय का
तिलक कर भाल पर, दे रही वर अक्षय अभय का।

सुपावन स्नान कर भागीरथी के स्वच्छ जल मे,
कठिन शस्त्रास्त्र से सज्जित उसी संग्राम स्थल मे;
समाहित - चित्त होकर वीर सारे ब्रह्मचारी,
लगन से शास्त्र का स्वाध्याय करते ज्ञानकारी।

इसी विध शस्त्र का औ शास्त्र का अभ्यास करते,
रहे वटु वीर गुरु का सफल अन्तेवास करते,
सदा विद्या प्रगति में ही प्रशस्त कृतार्थ होती,
समर्जित शक्ति - नय मे नवल वय चरितार्थ होती।

हुआ जब पूर्ण शिक्षण अस्त्र शस्त्रो का भयंकर,
हुये जब शास्त्र भी पर्य्याप्त जीवन में अलंकर;
विदा के हेतु बैठे पास गुरु के वटुक सारे,
दृगों में स्नेह, श्रद्धा - ओज उर में मौन धारे।

निरख कर स्वप्न अपना वह चिरन्तन सत्य होते,
प्रहर्षित हो परशुधर आज थे कृत कृत्य होते;
रहे जो सर्वदा प्रज्ज्वलित काल - कृशानु जैसे,
कमल वन से प्रफुल्लित हुये प्रातभानु जैसे।

खिले थे शान्ति औ आह्लाद से अद्‌भुत विरागी,
दृगों में स्नेह - करुणा की अनोखी ज्योति जागी;
युगों में आज सुफलित भव्य मानस सृष्टि अपनी
प्रणय से देख कर, की सफल मुनि ने दृष्टि अपनी।

दिया आशीष सबको मौन अपने शान्त मन से,
हृदय का भाव दुष्कर व्यक्त करना है वचन से;
भरा था कण्ठ गद्‌गद्‌, विवश फिर भी अधर खोले,
वचन वटु वर्गसे आचार्य अन्तिम आज बोले -

" प्रथम है आज का प्रिय वत्स ! यह अन्तिम सवेरा,
हुआ जब सत्य जीवन का चिरन्तन स्वप्न मेरा;
प्रफुल्लित आज तुमको देख कर हूँ मैं हृदय मे,
मिला परमार्थ मुझको अन्तत. इस वृद्ध वय में।

तुम्हारा शस्त्र - विक्रम, शास्त्र - कौशल गर्व मेरा,
तुम्हारा यह सफल दीक्षान्त जय का पर्व मेरा;
हुई सम्पूर्ण मानो आज जीवन - साध मेरी,
समुत्थित धर्म ने गति शक्ति की निर्बाध हेरी।

तुम्हारी प्रीति का कारण हुई यदि प्रीति मेरी,
विनय है, तो धरा में अमर रखना नीति मेरी,
कुमारों को धरा औ स्वर्ग के यह मन्त्र देना,
अभय से धर्म को यह श्रेय का ध्रुव तन्त्र देना।

अखिल अध्यात्म का आधार केवल ज्ञान ही है,
खिलाता ज्ञान का आलोक तप औ ध्यान ही है;
सदा वह ज्ञान - दीपक ज्योति आत्मा की जगाता,
वही आनन्द का शिव पन्थ है हमको दिखाता।

अनय के विश्व मे पर कठिन होना ज्ञान पूरा,
प्रकृति के श्लेष से प्राय. रहा है वह अधूरा;
अधूरे ज्ञान मे प्राय. अहं का बीज पलता,
यही अज्ञान दुर्जय ज्ञानियों को नित्य छलता।

अहं के बीज से हो अंकुरित दो दल निकलते
वही बन गर्व औ विद्वेष के फल - फूल फलते;
इसी से ज्ञानियो ने सदा असमय में अकेले,
असुर - उत्पात के आघात सन्तत मौन झेले।

रहा अज्ञान ही वह ज्ञान नित उनका अभागा,
नहीं उसमें कभी शुचि स्नेह का आलोक जागा;
इसी से बन न पाया योग सज्जन - संगठन का,
अधूरा ज्ञान कारण धर्म औ नय के पतन का।

रहे जो शान्ति में उपदेश देते धर्म - नय का,
रहा जिनको सदा ही शक्ति मे सन्देह भय का,
वही लख क्रान्ति में दुर्नय खलों का काँप उठते,
प्रवर्धित सामने उनके उन्हीं के पाप उठते।

अहिंसा सज्जनों की है उन्हें दुर्बल बनाती,
खलों की क्रूरता अपना उसे सम्बल बनाती;
तथा पलकर उसी पर, दे चुनौती धर्म - नय को,
समुद्यत दुष्ट होते विश्व के बल से विजय को।

सदा रहते असुर के कोप से भयभीत ज्ञानी,
सदा विक्षिप्त रहते योग क्रम मे त्रस्त ध्यानी;
अभय ही धर्म का आधार ध्रुव जग मे बनेगा,
समन्वय शक्ति का ही सुगति शिव - मग में बनेगा।

अहिंसा की मृदुलता सदा दुर्बलता कहाती,
असुर के अनय का उत्साह वह दूना बढ़ाती,
विजय का फल तथा उपभोग काम-विलास-धन का,
भयंकर रज्जु दृढ़ बनता असुर के संगठन का।

विजय-उत्साह से हो उग्र औ उद्दण्ड दूना,
प्रकृति - सेवी असुर बनता तमोनय का नमूना;
प्रकृति के भोग मे पशु भी सदा एकान्त वासी,
असुर बनता विकृति से प्रकृति का अद्भुत विलासी।

न पशु का भोग उच्छृंखल तथा आतंक बनता,
किसी का क्लेश और समाज का न कलंक बनता;
न करता पशु परिग्रह भी अनय के हेतु धन का,
न लेता काम पशु का रूप निर्दय आक्रमण का।

मनुज का धर्म औ नय व्यक्ति की ही साधना है,
अहिंसा भी हृदयगत व्यक्ति की ही भावना है,
अनय के संगठन मे लुप्त होते बुद्धि उर हैं,
अत पशु से अधिक दुर्बोध्य हो जाते असुर हैं।

अत. करते प्रभावित व्यक्ति के ही शुचि हृदय को,
अहिंसा - प्रेम के आग्रह सफल कर धर्म - नय को,
असुर दल पर अहिंसा का प्रभाव न धर्म नय का
कभी होता, असुर दल जानता बस अर्थ भय का।

सही है यह, असुर के भी हृदय औ भाव होते,
प्रियो के दुख उनके मर्म मे बन घाव रोते,
असुर - दल मे दया औ मान का व्यवहार होता,
असुर का भी विनय औ प्रीति का संसार होता।

सही है, किन्तु यह सब वर्ग तक सीमित रहा है,
असुर का प्रेम औ सद्भाव सबके हित कहाँ है?
नरो को औ सुरो को कब असुर ने जीव माना,
अनय की यातना का मर्म दानव ने न जाना।

हुआ होगा असुर अपवाद - सा कोई अकेला,
भयंकर घात जिसका यदि विनय के साथ झेला
किसी नर साधु ने, तो द्रवित हो उसके अभय से
धरा होगा चरण पर शीष संतापित हृदय - से।

इसी अपवाद को ले नीति के निष्ठुर प्रणेता
बताकर शील - नय को असुर के उर का विजेता,
रहे इस धर्म - भीरु समाज को सन्तत भुलाते,
विजयिनी शक्ति को उसकी रहे भ्रम से सुलाते।

उन्हीं को पूजता भगवान कर संसार भोला,
कभी जीवन - कसौटी पर न उनका तत्व तोला,
अनोखी शक्ति से तप – त्याग की सब अनय सहता,
युगों से धर्म -- धारा में रहा तृण - तुल्य बहता।

लिये संग्राम मे नर - रक्त से रंजित पताका,
विरचती खड्ग से इतिहास का रुधिराक्त साका,
विजयिनी भी असुर की कौनसी सन्तप्त सेना
कभी समझी दया से जीत कर ही छोड़ देना।

असुर की वाहिनी के वे प्रचण्ड नृशंस नेता
रुधिर संग्राम के दुर्दान्त वे गर्वित विजेता,
दया से हो द्रवित लौटे कभी हो तृप्त जय से?
कभी शासन किया जित देश के ऊपर हृदय से?

रहे नेता सदा ही दानवों के कामचारी,
रही उनके अनय से मही कम्पित भीत सारी,
बलाधिप और सैनिक रहे उनके और आगे,
युगो से मौन अत्याचार सहते नर अभागे।

पराजित देवता उनसे हुए हैं बार कितनी!
बहाई मानवों ने है रुधिर की धार कितनी!
सदा देते रहे बलि मान अथवा प्राण की वे,
रहे बस बात करते सर्वदा बलिदान की वे।

रहे रतिलास से सुर स्वयं को निर्बल बनाते,
रहे नर दीन दुर्बल धर्म के बस गीत गाते,
किसी ने भी उठाकर सिंह शावक - सी न छाती,
सुनाई जागरण की शक्ति के गर्जित प्रभाती।

रहे बस देवता विधि, विष्णु और शिव को मनाते,
रहे नर सर्वदा भगवान से आशा लगाते.
स्वयं भगवान का वर मान नर - कल्पित वचन को,
रहे भगवान पर निर्भर असुरदल के दलन को।

असुर के नाश के हित रहे केवल होम करते,
न अपना शक्ति से जाग्रत अकंपित रोम करते.
हवन मे नारियो की लाज की आहुति चढ़ाते.
रहे मुख - पाठ से दुर्गा तथा काली मनाते।

न जाना धर्म का भी मर्म मन मे दीन अपने,
रहे बस देखते भगवान के रंगीन सपने;
निरर्थक मन्दिरों में दीप धर घण्टा बजाते,
भजन कर, भ्रान्त मन मे, रहे प्रभु के गीत गाते।

नहीं भगवान कोई क्षीरनिधि मे शान्त सोता.
नहीं आकाश से भगवान का अवतार होता,
सदा भगवान का आवास है नर के हृदय मे,
सदा अवतार उनका शक्ति के जाग्रत उदय में।

हृदय में सर्व भूतों के सदा भगवान रहते,
सभी श्रुति शास्त्र बारम्बार पूर्ण - प्रमाण कहते,
रहे क्यों धर्म के आटोप में सन्तत ठगाते ?,
हृदय में क्यों नहीं भगवान को अपने जगाते ?

अखिल ऐश्वर्य युत सौन्दर्य करुणा शील नय का,
अपरिमित शक्ति बल के एक आत्मा मे उदय का,
सदा व्यवहार - संज्ञा - मात्र है भगवान होता;
सभी के हृदय - क्षीरधि में वही भगवान सोता।

कभी इन भूतियों का यदि परम विस्तार होता,
किसी के सजग उर मे तो वही अवतार होता,
यही भगवान युग युग में नये अवतार धरता;
विजय कर दानवो को, धर्म का उद्धार करता।

अत. आदर्श जीवन मे सदा भगवान नर का,
उसी की साधना है धर्म शाश्वत मनुज वर का,
बनें भगवत्त्व के साधक सभी नर और नारी,
अयुत भगवान से परिपूर्ण हो अवनी हमारी।

सुरो के मार्ग दर्शक हो मनुज धर्माधिकारी,
समन्वित शक्ति दोनो की बनेगी अभयकारी,
समर मे कर पराजित दानवो के दृप्त दल को,
प्रमाणित कर सकेंगे धर्म-नय के शक्ति-बल को!

नहीं होती समर से धर्म की यद्यपि प्रतिष्ठा
नहीं होती रुधिर से दानवों को धर्म निष्ठा,
समर अनिवार्य करता अनय बर्बर दानवो का
अत. उपयोग उसका इष्ट सुर औ मानवो का।

विनय से चाहते हैं जो असुर को सुर बनाना,
कुसुम से चाहते वे पर्वतों में पुर बनाना,
चढ़ा बलि धर्मशीलो की सदा ये धर्मधारी,
बने रहते अहिंसा शान्ति के पूजित पुजारी।

कभी जाकर न असुरो के सुरक्षित रुधिर पुर मे,
जगाया धर्म का आलोक उनके अन्ध उर मे,
रहे बस निर्बलो को ही सदा निर्बल बनाते,
उन्हीं की भक्ति मे यश - पर्व बस अपना मनाते।

नहीं है पाप कोई शक्ति की आराधना में,
सदा है पाप औरों के अहित की साधना में,
अहित है पर अरक्षा भी स्वयं के धर्म हित की,
अत: है पाप ही यह धर्म-चर्या बल-रहित की।

सुरक्षित शक्ति से ही धर्म चिर कल्याण कारी;
अरक्षित धर्म बनता पाप-छल से छद्मचारी,
फिरेगा शक्ति से ही धर्म का ध्रुव चक्र आगे,
मिटेंगे या तजेंगे अनय सब दानव अभागे;

सदा दृढ़ लौह से ही लौह का जड़ पिंड कटता,
शिला का जड़ हृदय पा बाण का आघात फटता,
पिघलता लौह बल उतप्त हो भीषण अनल से,
असुर होता पराजित है सदा निर्भीत बल से।

नहीं यदि शक्ति से हम दानवों का अन्त करते,
रहेंगे तो सदा ही धर्मचारी व्यर्थ मरते,
बढ़ाती और भी हिंसा अहिंसा यदि हमारी,
उचित है तो बने हम शक्ति के निर्भय पुजारी।

सदा उपयोग होगा ज्ञान से बल का हमारे,
रहेंगे शक्तिधारा के सदा श्री-शिव किनारे,
हमारा ध्येय बस आतंक का उच्छेद होगा।
बढ़ेगा धर्म क्या, जब तक न वह निश्शंक होगा।

रहे जो नाम से भगवान के जग को भुलाते,
वही यदि धर्म मे शिवशक्ति की निष्ठा जगाते,
नहीं इतिहास में इतने पतन के पर्व होते,
नहीं सुर-नर पतित किन्नर तथा गन्धर्व होते।

सदा शिव शक्ति में निस्सीम निर्भय त्याग होगा,
नहीं कादर्य का कारण विषय अनुराग होगा,
असुर का बल न रखता त्याग की वह शक्ति क्षमता,
अत: शिव शक्ति के वह कर न सकता साथ समता।

अत. होकर सजग बस एकदा शिव शक्ति बल से,
सुसज्जित संगठित हो सुर - नरों के संघ दल से,
करें आह्वान असुरों का समर मे यदि अभय हो,
सदा को धर्म, नय औ सत्य की शाश्वत विजय हो।

यही सन्देश लेकर विश्व में तुम वीर जाओ,
धरा के ज्ञानियों मे शक्ति का साधन जगाओ,
इसी उद्योग से जग में अनय का नाश होगा,
तभी निर्भय धरा पर धर्म का सुप्रकाश होगा।

सदा बन शक्ति के सैनिक, दलन कर दानवों का,
मिटाना खेद औ भय तुम सुरो औ मानवों का.
यही आशीष अन्तिम आज तुमको वत्स! मेरा
मिटाना ज्ञान - बल से विश्व का दुर्नय - अँधेरा।

रहे शिव - ज्ञान की निष्ठा तुम्हारे दृढ़ हृदय में,
प्रतिष्ठित शक्ति - बल तुमको करे शाश्वत अभय मे।
तुम्हारे शौर्य से यह धर्म की धरणी अभय हो,
सदा ही धर्म के रण मे तुम्हारी पूर्ण जय हो।"

वचन आचार्य के धर कर सचेतन युवक मन में,
झुका कर सिर विनय पूर्वक महामुनि के चरण में,
चले निज निज गृहों को वीर दीक्षित वटुक सारे
धरा के उन्नयन का हृदय में उत्साह धारे।

सर्ग १८

देवोद्बोधन

शिक्षा पूरी कर कुमार निज गृह को आये;
फिर सूने कैलास कूट पर उत्सव छाये,
जीवन का संवेग नया-सा गिरि ने पाया,
बनकर हर्षालोक अपरिमित मुख पर छाया।

देख पुत्र को उमा हर्ष से उर में फूली,
शिक्षा का सब खेद मिलन के सुख मे भूली,
दे सौ सौ आशीष एक ही गद्गद् स्वर से,
चरणों पर से उसे उठाया पुलकित कर से।

और बाहुओं में भर उसको अंक लगाया;
अन्तर का वात्सल्य उमड़ आँखों में आया;
बार बार भर अंक स्नेह से चूमा मुख को,
कौन जानता माता के अन्तर के सुख को!

निज चरणो मे प्रणत पुत्र को उत्सुक कर से
उठा, बिठाया शिव ने निज समीप आदर से;
और स्नेह से शिक्षा तथा वीर भृगुपति का,
पूछा क्रमश वृत्त कठिन आश्रम की गति का।

था अपूर्व आनन्द उमा औ शिव के मन में,
मानों पाया पुत्र दूसरा इस जीवन में;
मग्न मातृकायें ममता के स्रोत बहातीं,
कर सुत का सत्कार न फूली हृदय समातीं,

छाया था आनन्द-पर्व-सा फिर गिरिवन में,
था अपूर्व उल्लास सभी स्वजनों के मन में;
दूर दूर से समाचार सुनकर नर नारी,
आये दर्शन को कुमार के कर श्रम भारी।

हो होकर निज भवन भेंट कर बन्धुजनों को,
आश्वासित कर स्वजनो के सन्दिग्ध मनों को,
वे कुमार के सखा बटुक भी सारे आये;
उमा - शम्भु ने पुत्र अनेकों मानों पाये।

समाचार सुन गन्धर्वों से सुरपुर वासी,
हुये प्रफुल्लित, दूर हुई सब ग्लानि उदासी,
चढ़ विमान औ दिव्य वाहनों पर सब धाये
मनोवेग से श्रीशिवपुर में वे सब आये।

सबका स्वागत किया द्वार पर नन्दीश्वर ने,
सबको आदर दिया प्रेम से जगदीश्वर ने;
इन्द्र, वरुण, गुरु, सूर्य चन्द्र, सब आलोकित थे,
किस अपूर्व आभा से सबके मुख द्योतित थे।

सबने किया प्रणाम स्कन्द को लखकर आते,
सिंह वक्ष से, औ गति से गजराज लजाते;
वृषभ - स्कन्ध की गति- विधि से गर्वित अभिमानी,
हुये देवता हृष्ट देख अपना सेनानी।

फूट रहा था तेज दृगों से औ आनन से,
बाल सूर्य हो रहा विलज्जित रक्त वदन से;
भुज दण्डों में उमड़ रही थी बल की धारा,
मिला विश्व के अखिल ओज को विग्रह न्यारा।

सबको किया प्रणाम स्कन्द ने सिर नत करके,
सबने आशीर्वाद दिया सिर पर कर धरके;
सबने मानों मूर्त्त मनोरथ अपने पाये,
होकर मानों सत्य सभी के सपने आये।

देवो को अब विदित हुआ, रण का सेनानी
होता कैसा शूरवीर, निर्भय औ ज्ञानी,
देख स्कन्द के सखा-सैनिको के आनन को,
जाना, आये सिंह-बाल तजकर कानन को।

जाना सबने धर्म आज नूतन जीवन का,
जाना सबने मर्म आज रति औ नर्तन का;
जाना बल का मूल, शक्ति का साधन जाना,
आज विजय का सिद्धि मार्ग सबने पहचाना।

मदन भस्म के मर्म आज थे सम्मुख जागे,
शंकर का आदेश मूर्त दर्पण-सा आगे,
था कुमार अभिरूप वीर्य बल विक्रम शाली,
जीवन की नय हुई सुरो को विदित निराली।

था आनन पर आज सभी के ओज अनोखा,
दूर हुआ स्वर्गिक जीवन का सबके धोखा;
सबने आज रहस्य शक्ति औ जय का जाना,
हुई पराजय ग्लानि स्वप्न-सा आज पुराना।

किस उत्सव के ज्योति पर्व में स्नात अमल से,
खिले सुरो के वदन प्रात के स्वर्ण-कमल-से;
खिलता सुमधुर हास कमल-मुख मे केसर-सा,
बिखर रहा आमोद पूर्ण उल्लास-प्रसर-सा।

चिन्ता से नत रहे युगो से सान्ध्य कमल-से,
नयन इन्द्र के आज खिले प्रात शतदल-से;
कलरव-सा आलाप गूंजता था आनन मे,
प्रकृति पर्व हो ज्यों कोई कमलों के वन मे।

सुरपुर का दुर्भाग्य विवश मन में ही सहते,
चिन्ता से परिम्लान मौन जो प्राय रहते;
वाचस्पति गुरु आज हुये फिर पाकर वाणी,
बोले शिव से गिरा नम्र नययुत कल्याणी—

"अहो भाग्य हैं आज विश्व के और हमारे,
नाथ ! हुये जो दूर पराजय, भय, क्षय सारे;
उदय हुआ कैलास कूट पर रवि-सेनानी,
नष्ट निशाचर हुये नाथ ! तम के अभिमानी।

देव-लोक के मान, शान्ति औ सुख का त्राता,
यह त्रिलोक के श्रेय-सर्ग का नया विधाता;
पाकर ऐसा धीर वीर शिक्षित अधिनेता,
होंगे निश्चय देव युद्ध में नाथ ! विजेता।

हुआ आज उद्धार धर्म का अवनी तल में,
मिली श्रेय को शक्ति शिष्ट यौवन के बल में;
आज स्वर्ग ने जीवन का नव गौरव जाना,
जय औ नय का मर्म आज हमने पहचाना।

नाथ ! यही वर दो त्रिलोक को यह शिव निष्ठा,
हो अक्षय शुचि सत्य धर्म की अचल प्रतिष्ठा;
मुनियों की सन्तान शक्ति की हो वरदानी,
नर-कुमार औ देव बनें निर्भय सेनानी।"

बोली अवसर जान मन्द स्वर से इन्द्राणी,
सस्मित मुख से मधुर शील-गौरवयुत वाणी;
"नाथ ! उमा का तपःपुण्य औ कृपा तुम्हारी,
सहज प्राप्त कर हुये मुक्त जग के नर नारी।

मिला अभय अध्यात्म - योग का ऋषि मुनियो को,
मिला श्रेय का वर अमोघ सज्जन गुणियों को;
देवो ने आदेश योग - तप - नय का पाया,
आज उन्होने मर्म हार औ जय का पाया।

नृत्य गान में रहीं लीन अब तक अनजानी,
अप्सरियों ने अब जीवन की लय पहचानी;
मर्यादा का आज लाज की परिचय पाया,
आज सत्य से हुई अलंकृत जीवन - माया।

देवो को वर तुल्य मिला जय का सेनानी,
पाकर मानो प्राण हुई जीवित इन्द्राणी;
"नाथ! आपका यही विश्व को अन्तिम वर हो,
यह शिवशक्ति - धर्म संसृति मे सदा अमर हो।"

बोले शंकर "पुण्यवती सुरपुर की रानी!
बने विश्व - वरदान तुम्हारी मंगल वाणी,
वाचस्पति का वचन विश्व का मंगल वर हो,
शक्ति - योग यह मेरा जग का धर्म अमर हो।

बने उमा का तप नारी की नय कल्याणी,
युवको का आदर्श विश्व मे हो सेनानी;
शक्ति - योग से श्रेय विश्व में चिर विजयी हो,
जीवन संस्कृति प्रेम और आनन्दमयी हो।

हुआ समावर्त्तन कुमार का वर मंगल का,
हुआ सिद्ध संस्कार श्रेय से संगत बल का;
पुण्य पर्व से हर्ष अभययुत सबने पाया,
जीवन का अधिकार आज निर्भय बन आया।

सुर सेना के संग स्कन्द के पुण्य गमन की,
अनुमति शिव से मिली हुई देवों के मन की;
सज्जित हुआ प्रयाण हेतु निर्भय सेनानी,
सुत गौरव की प्रीति पूर्ण गिरिजा ने मानी।

ले विजया के स्वर्ण थाल से अक्षत रोली,
करके अंकित तिलक, कण्ठ भर गिरिजा बोली;
"बन देवों के वीर कुशल विजयी सेनानी,
करो विश्व मे निर्मित शिव संस्कृति कल्याणी।"

लेकर कर से धूल जननि के पुण्य चरण की,
भावभरी शुचि प्रणति विदा के हित अर्पण की;
ले माता से विदा पिता के सन्मुख आया,
जोड़ पाणि युग श्रीचरणो में शीष नवाया।

रोक हृदय का बेग धीर गद्‌गद्‌ स्वर भर के,
दिया पुण्य आशीष शीष पर मृदु कर धर के;
"शिक्षा, संयम और योग के संचित बल से,
निर्भय करना युद्ध दुष्ट असुरों के दल से।

"है वीरों का धर्म विश्व का अनय मिटाना,
जिन्हे न नय प्रिय, उन्हें शक्ति का स्वाद चखाना;
जाओ रण में श्रेय शक्ति की सदा विजय हो,
दूर धर्म के पुण्य मार्ग से दुर्बल भय हो।"

ममतामयी मातृकाओ ने लगा हृदय से,
किया शीष औ कर का चुम्बन पूर्ण प्रणय से,
अश्रुभरा आशीष प्रेम से देकर बोली,
"वत्स! विजय का तिलक उमा की हो यह रोली।"

माता, पिता, मातृकाओं का वन्दन करके,
जया और विजया का सिर अभिनन्दन धरके;
स्मरण चित्त में मात, पिता औ गुरु का करता,
चला इन्द्र के साथ वीर दृढ़ - द्रुत पग धरता।

देख रही थी उमा कक्ष के वातायन से
सुत का वीर प्रयाण हर्ष से आर्द्र नयन से;
बाँधे सिर पर मुकुट देह पर कवच चढ़ाये,
अंग अंग में अस्त्र शस्त्र द्युतिवन्त सजाये,

प्रलय काल के सूर्य तुल्य था दीपित होता,
था किरणों - सा तेज प्रसार असीमित होता;
सिंह गमन से साथ इन्द्र के चलता जाता,
होती गद्गद् देख हृदय में पुलकित माता।

उल्का - से अनुगमन कर रहे सैनिक सारे,
देव हो रहे थे अवभासित ज्यों शशि - तारे;
हुई प्रवाहित कौन ईश की ज्योतिर्धारा,
उतर कूट से करती ज्योतित गिरिवन सारा।

ऐरावत पर साथ इन्द्र ने स्वयं बिठाया,
देख पुत्र का मान उमा ने गौरव पाया;
बैठे सैनिक सखा विमानों मध्य सुरों के
चले कुतूहल - भीति जगाते वन्य उरों के।

मनोवेग से देवलोक में वे सब आये,
सुनते ही संवाद हर्ष के उत्सव छाये;
आये देव - कुमार अतिथियों के दर्शन को,
अर्घ्य - माल ले अप्सरियाँ आईं वन्दन को।

किन्नरियों ने स्वागत के मधु गीत सुनाये,
गन्धर्वों ने हर्ष नृत्य के साज सजाये;
कर अभिवन्दन ग्रहण संकुचित मन सुरपुर का,
किया स्कन्द ने प्रकट भाव अपने भी उर का।

देवों से अनुगत कुमार ने सुरपुर देखा,
देख विकृतियाँ उठी क्षोभ की उर मे रेखा;
असुरों की उत्पात-कथा अंकित पहचानी,
हुआ हृदय में मौन क्रुद्ध अतिशय सेनानी।

बढ़ा हृदय का वेग, वक्ष ऊपर को आया,
बंकिम भृकुटी हुई, रक्त-सा मुख पर छाया;
रोक हृदय का भाव, मौन मे गोपन करके,
सुरपुर की दुर्दशा वीर अवलोकन करके,

साथ इन्द्र के वैजयन्त के पथ मे आया,
आगे बढ़कर स्वयं इन्द्र ने मार्ग दिखाया;
उदासीन लखकर विलास की विधियाँ सारी,
वीतराग लख वैजयन्त की चित्र अटारी,

तीव्र इन्द्र का ताप हृदय में अनुमित करके
मौन अधर मे तीव्र क्लिष्ट-सी लघुस्मिति भर के;
धीर कण्ठ से वीर वचन यह बरबस बोला,
' सहता कितना ध्वंस विश्व का मानस भोला!"

पाणि योग से पुनः स्कन्द को वन्दित करके,
देव सभा की ओर विनय से इंगित करके,
इन्द्रासन का मार्ग शक्र ने स्वयं दिखाया,
अपने दक्षिण भाग वीर को प्रथम बिठाया।

वाम पार्श्व मे मौन मुग्ध बैठी इन्द्राणी,
बैठे सन्मुख स्वर्ण पीठ पर गुरुवर ज्ञानी;
निज निज आसन सूर्य, वरुण, यम, सोम विराजे,
गन्धर्वों ने मुदित बजाये जय के बाजे।

अभिवादन के हेतु भूमि पर वन्दन करतीं,
रूप कला से समुद शिष्ट अभिनन्दन करतीं;
लेकर मंगल माल अप्सरायें सब आईं,
नृत्य समेत प्रशस्ति किन्नरी-कुल ने गाई।

स्वागत शिष्टाचार हुआ जब विधि से पूरा,
(अप्सरियों का सपना यद्यपि रहा अधूरा)
उठा शान्ति के हेतु उर्ध्व कर सुर गुरु बोले,
"आज ईश ने मुक्ति द्वार सुरपुर के खोले।

मूर्त्त अनुग्रह आज ईश का हमने पाया,
शिव का औरस आज स्वर्ग-रक्षक बन आया;
शक्ति-पुत्र अब आज सुरो का है सेनानी,
जिसके शिक्षक परशुराम-से उद्भट ज्ञानी।

असुरों का आतंक दूर त्रिभुवन से होगा,
देवलोक का विभव पुन अब उज्ज्वल होगा;
होंगे अब उच्छिन्न विश्व से अनय अभागे,
अब सुजनों के भाग सदा से सोये जागे।"

कर मित भाषण मौन हुई गुरुवर की वाणी,
बोला अवसर जान उचित उठकर सेनानी,
"शीलवती शुचि शची स्वर्ग की शाश्वत रानी!
देवलोक के वीर वज्रधर अधिपति मानी!

सुरपुर के गम्भीर धीर - मति गुरुवर ज्ञानी!
वरुण, सूर्य, शशि आदि सभी नायक वरदानी!
सबको पहले विनय पूर्ण है वन्दन मेरा,
वाचस्पति का वचन दिव्य अभिनन्दन मेरा।

शक्तिमूर्ति माता की करुणा चिर भयहारी,
शिव की शाश्वत कृपा विश्व की मंगलकारी;
गुरु का दीक्षा मन्त्र वज्र - दीपक है मेरा,
हरता दुर्गम तम - पन्थो का सदा अँधेरा।

सबके मंगलपूर्ण अनुग्रह के सम्बल से,
वीर सखाओ के अमोघ औ दुर्जय बल से;
वाचस्पति की गिरा सत्य ही निश्चय होगी,
रहे स्वर्ग के देव हमारे यदि सहयोगी।

रहे पूज्य गुरुवर्य नित्य हमसे यह कहते,
दुर्बलता से रहे पराजय नित सुर सहते;
नर, मुनि अत्याचार सह रहे हैं असुरों के,
कारण बस दौर्बल्य और भय सदा उरो के।

मुनि लेकर अध्यात्म बन गये निस्पृह योगी,
पाकर सुर अमरत्व बन गये तन्मय भोगी;
योग भोग के बीच अनिश्चित गति से बहते,
निर्बल नर निश्चेष्ट रहे सब कुछ ही सहते।

नहीं योग ही साध्य हमारे लघु जीवन का,
और नहीं परमार्थ भोग है तन का, मन का;
योग भोग का असमंजस भी केवल भ्रम है,
होता निष्फल दोनों के साधन का श्रम है।

केवल साधन योग शक्ति - बल के संचय का,
बनता संयम मन्त्र सनातन प्रकृति - विजय का;
भोग रोग है सदा सचेतन सुर - मानव को,
किन्तु वही है योग प्रकृति में रत दानव को।

करके शक्ति प्रदान योग करता निर्भय है,
सुर - मानव का भोग सदा करता बल क्षय है;
होकर निर्बल सदा असुर से सुर - नर हारे,
हैं बल से ही साध्य लोक के इष्ट हमारे।

है पवित्र अध्यात्म चरम परमार्थ हमारा
बनते लौकिक स्वार्थ इष्ट उसके ही द्वारा;
देता है अध्यात्म अर्थ निश्चित जीवन को.
सदा साध्य ही मान - मूल्य देता साधन को।

पर साधन के बिना साध्य हैं स्वप्न हमारे,
साधन को ही भूल सदा सुर, नर, मुनि हारे;
साधन को ही साध्य बना अपने जीवन का,
दानव कुल ने किया हरण सबके साधन का।

निःसाधन अध्यात्म बना भ्रम योगीजन का,
बना भोग अभिशाप पराजित सुर - नर गण का;
रोग और भ्रम दोनों में नर निर्बल भूला,
वातवेग मे जीवन उसका बना बबूला।

ऋषि, मुनि, योगी, सन्त ज्ञान की देकर हाला,
सदा बनाते रहे उसे मोहित मतवाला;
भ्रान्त धर्म औ ज्ञान - योग के ही साधन में,
रहा पराजित असुरों से मानव जीवन में।

हो असुरो का दास पराजित जीवन - रण मे,
हुआ लीन नर नारी के दुर्बल शासन में,
पर अबलो के शासन मे पलती दुर्बलता,
दुर्बल जन का दम्भ सदा ही उसको छलता।

दुर्बल मानव बना काम - गति में अतिचारी,
बना विजेता असुर अनय का चिर अधिकारी;
निर्यातित भी नारी ने आँसू से अपने
मानव को संकल्प किये जीवन के सपने।

वत्सलता से विवश रही सब सहती नारी,
जगा न पाया नर को कोई अत्याचारी;
नारी लुटती रही, दीन नर का क्या खोया;
मर्म वेदना से कब उसका अन्तर रोया।

लुटकर लौटी नहीं लाज फिर से जीवन मे,
तन का अत्याचार कीट बनता है मन मे;
असुर भोग का साधन केवल उसका तन है,
कब असुरो के लिये मूल्य रखता कुछ मन है।

पूर्ण प्रकृति सौन्दर्य हुआ नारी के तन मे,
किन्तु हुआ वह व्यर्थ भोग के पशु बन्धन मे;
तन की लज्जा मर्यादा नारी जीवन की,
है नारी को इष्ट मुक्ति निज पावन तन की।

होकर तन से मान्य, मुक्त औ मन से नारी,
जब तक बनती नहीं इष्ट गति की अधिकारी;
नर की सन्तति सदा हीन नर तुल्य रहेगी,
यो ही अत्याचार असुर के विवश सहेगी।

मुक्त न होगा नर नारी को रख बन्धन मे
अभय न होगा नर रख भय नारी के मन में;
उसको अबला बना रहेगा निर्बल नर भी,
निर्बल को जय मान न देगा शिव का वर भी।

है नारी का मान निकप संस्कृति के स्तर की,
नारी का अपमान हीनता निर्बल नर की;
कर नारी को विवश हुआ नर गर्वित मन मे,
चूर्ण हुआ पर गर्व असुर से भीषण रण मे।

है असुरो का लक्ष्य सदा ही युवती नारी,
उसको ही करते निर्यातित अत्याचारी;
नारी का अपमान अविचलित जो नर सहते,
वे किन्नर हैं, उन्हे व्यर्थ ही कवि नर कहते।

अबलाओं की लाज गई असुरो से लूटी,
शिशुओं पर दनुजों की निर्दय छुरियाँ टूटी;
शोणित से सिन्दूर गया कितनों का धोया,
कितनो का वात्सल्य बिलखकर निष्फल रोया।

किन्तु न विचलित हुए धर्म के निष्ठुर नेता,
किसी अनय से कभी ब्रह्म उनका कब चेता;
हारों को ही रहे सदा वे हार सिखाते,
रहे मृतों को सदा मृत्यु का पाठ पढ़ाते।

अबलाओं के उत्पीड़न से विचलित मन में,
छोड़ प्राण का मोह अल्प मानव जीवन मे;
यदि कोई नर वीर असुर से जूझा रण में,
तो उसका बलिदान हुआ बस अमर स्मरण मे।

किन्नर - से नर रहे कीर्ति उसकी बस गाते,
दुर्बलता का दीप धर्म पर रहे चढ़ाते,
कीर्ति कथा से कभी शौर्य का जगा सवेरा ?
खद्योतों से कभी अमा का मिटा अँधेरा ?

बिना शक्ति के धर्म - ज्ञान भ्रम भर रह जाता,
दुर्बलता का धर्म सदैव अधर्म बढ़ाता;
दुर्बल का सन्तोष अहिंसा बन कर आती,
उत्साहित कर हिंसा को ही और बढ़ाती।

नर नश्वर है; अल्प भोग उसका जीवन मे,
किन्तु कामना अमर भोग की रहती मन मे,
अक्षय यौवन और भोग का स्वर्ग तुम्हारा,
है मानव का स्वप्न प्राप्य पुण्यो के द्वारा।

पर वे सारे पुण्य पाप बनते हैं नर के,
ग्लानि पराजय आदि अमर ही सदा अमर के;
हुआ चिरन्तन भोग चिरन्तन ही क्षयकारी,
बने असुर की आज दया के देव भिखारी।

रही अमरता अमर शाप देवों को बनती,
अमर भोग का पाप पराजय अक्षय बनती;
बना नरों का स्वप्न आज अभिशाप तुम्हारा,
होगा बस उद्धार शक्ति साधन के द्वारा।

असुरों का आतंक नरो को निर्बल करता,
पर नारी के लाज, मान निर्भय खल हरता;
बन्दी - से इस भीषण भय के तम में पलते,
ज्योति - भीरु नर - शिशु भी सब बल हीन निकलते।

अन्तर में चिर क्लिष्ट असुर के भय बन्धन में
पलकर, पूत न होगा नर रोली चन्दन में;
योग व्यर्थ है औ उपासना चिर निष्फल है,
आडम्बर है धर्म, पाठ - पूजा सब छल है।

मानव का उद्धार न होगा आराधन से,
होगा उत्तम साध्य सिद्ध केवल साधन से;
श्रेय - शान्ति का मार्ग सर्वदा मुक्ति - अभय है,
ज्ञान - शक्ति से जेय असुर का दुष्ट अनय है।

धर्म बनाकर जड़ देवो के आराधन को,
बना रहे नर कठिन नित्य भय के बन्धन को;
दे पाहन को अर्घ्य जोड़ युग कम्पित कर को
करुण दृगो से देख रहे मानव ऊपर को।

अवनी के आदर्श स्वर्ग के नित्य निवासी,
पाकर सुख का स्वर्ग देव भी हुये उदासी;
होकर तन्मय मुक्त भोग मे चिर यौवन के,
भू को भूले और ध्येय अपने जीवन के।

जिनका स्वर्ग निवास नरों ने साध्य बनाया;
कर पूजा व्रत जिन्हें नित्य आराध्य बनाया;
सत्व - रूप वे देव राग के बन अनुरागी,
रति विलास मे मग्न हुये पुण्यो के भागी।

नर - देवो की ऊर्ध्वमुखी सात्विक चेतनता,
अतः काम का भोग सदा उनका लय बनता;
लास, नृत्य औ रति विलास मे तन्मय रहते
होकर दुर्बल देव पराजय सन्तत सहते।

ये किन्नर गन्धर्व यक्ष विद्याधर सारे,
नन्दन के रति पथ मे बनकर अनुग तुम्हारे;
बना कला को कामदेव की सुन्दर दासी,
बने तुम्हारे संग हीनता के अभ्यासी।

कल्पलता - सी तन्वंगी तन्मय लहरातीं,
भर कर कोकिल कंठ राग मधु रति के गातीं;
लीला - साधन रम्य तुम्हारी ये अप्सरियाँ,
मनोवृत्ति की मूर्ति तुम्हारी ये किन्नरियाँ,

आज उन्हें निर्यातित करते अत्याचारी,
दुर्बलता पर आज तुम्हारी ये बलिहारी;
बनीं प्रियायें आज तुम्हारी उनकी दासी,
निर्वासित तुम आज स्वर्ग के चिर अधिवासी।

देखो उजड़ा आज चतुर्दिक स्वर्ग तुम्हारा,
हुआ असुर का वित्त स्वर्ग का वैभव सारा;
हुआ स्वर्ग का शासक अपने से निस्पृह - सा,
वैजयन्त बन गया शची को कारागृह - सा;

यह पुण्यो का स्वर्ग पाप बन गया तुम्हारा,
वह सदेह अमरत्व शाप बन गया तुम्हारा;
बना यातना - देह तुल्य यह सात्विक तन भी,
विडम्बना बन गया आज स्वर्गिक जीवन भी।

काम तुम्हारा बन्धु शत्रु का चर बन आया,
बनी तुम्हारी हार उसी की मोहन माया;
उसे भस्म कर तुम्हें ईश ने मार्ग दिखाया,
नहीं योग मे अभी शक्ति को तुमने पाया।

कर लेता है काम वास जिनके मृदु मन में,
दुष्कर होता ध्यान योग उनके जीवन में;
क्रिया योग है सफल मार्ग उनका हितकारी,
इसी मार्ग से जयलक्ष्मी आ रही तुम्हारी।

हे नर के आदर्श देवता ! अब तुम जागो !!
अवनी के आदर्श ! स्वर्ग के वासी जागो !!
अब तुम जय के हेतु भोग की तन्द्रा त्यागो !
अपने से ही आज विजय का वर तुम माँगो !!

जगा रही कैलास शिखर की निर्मल द्वाभा,
जगा रही है तुम्हे स्वर्ग की उजड़ी आभा;
जगा रही है नन्दन की उजड़ी फुलवारी,
जगा रही वह वैजयन्त की भग्न अटारी।

अप्सरियो की लाज दे रही तुम्हें चुनौती,
किन्नरियों की मर्यादा कर रही मनौती;
चिर कुमारियाँ नहीं आज हैं रति की प्यासी,
आज शक्ति के संरक्षण की वे अभिलाषी।

आज इन्द्र का वज्र तुम्हारे बल का कामी,
वाचस्पति का ज्ञान शक्ति - सम्बल का कामी;
आज विश्व का धर्म अभय जय का अभिलाषी,
विश्व श्रेय की आज तुम्हारी जय हो आशी।

अमरावती निहार रही पथ देव विजय का,
वैजयन्त कर रहा प्रतीक्षण सदा अभय का;
तव अनुसृति के लिये समुत्सुक सुरपति मानी,
विजय माल ले राह देखती है इन्द्राणी।

आज मदन की धूल दिव्य निज तन मे धारो,
शक्ति - स्वरूप त्रिशूल - धनुष पर वीणा वारो;
प्रलयंकर टंकार त्रिजग के नभ में बोले,
आज तुम्हारे ताण्डव से यह त्रिभुवन डोले।

यदि तुमने है मुझे चुना अपना सेनानी,
यदि तुम हो सब अभी दिव्यता के अभिमानी;
राजसभा से उठकर सब नन्दन मे आओ,
भोग भूमि को आज योग का क्षेत्र बनाओ।

अस्त्रो का अभ्यास बनेगा नृत्य हमारा,
शक्ति योग ही होगा केवल कृत्य हमारा;
सत्व - ज्ञान से महा शक्ति जब अन्वित होगी,
तब असुरो से आप विजय श्री अर्पित होगी।"

सुन कुमार के वचन देव सपने से जागे,
देखे भूत भविष्य सभी ने अपने आगे;
हो उद्वेलित सभी ओज से निज अन्तर मे,
बोल उठे सब एक साथ ऊर्जित प्लुत स्वर मे।

"धन्य हुये हम आज प्राप्त कर निज सेनानी,
जीवन - जय की आज सरणि हमने पहचानी;
हम जाग्रत हैं आज शक्ति साधन करने को,
हम उद्यत हैं आज अमर हो भी मरने को।

सेनानी के साथ आज अभियान हमारा,
होगा साधन आज विजय वरदान हमारा।"
'सेनानी की जय' के गूँजे घोष गगन मे,
उठा ज्वार - सा नव जीवन का सभा भवन में।

सेनानी की अग्नि-गिरा के उज्ज्वल ज्योति – पूर मे स्नात
हुये नवीन तेज से दीपित देवो के अन्तर अभिजात,
खिला नवीन दृष्टि वन दृग मे तरल अग्नि का वह अभिषेक,
उमड़ा अन्तर्नाद ओज के प्रबल उत्स का – सा उद्रेक।

शची इन्द्र औ गुरु को करके श्रद्धा युत कर जोड़ प्रणाम,
उठा सिंह – सा सिंहासन से वीर शौर्य - शोभा का धाम;
शम्भु – तेज से भस्म काम ने तप पूत शुचि नव तनु धार,
वीर – वेष मे विश्व - विजय के हेतु लिया मानो अवतार।

उठे तरंगो – से आँधी से उद्वेलित हो देव अधीर
महा - मत्स्य - सा चला मुक्त गति सेनानी सुर दल को चीर
वैजयन्त के राजद्वार से देव वर्ग के सहित कुमार
निकला, ज्यो गिरि के गोमुख से निःसृत हो गगा की धार,

दीप्त हो रहा अमित तेज से कार्त्तिकेय वृष - सूर्य समान,
करते थे अनुसरण चतुर्दिक सुर नक्षत्रो – से द्युतिमान,
थे प्रसन्न मुख कान्त सभी के ज्यो अरुणोदय के अम्भोज,
था विकीर्ण हो रहा वदन मे सौरभ का आभामय ओज।

सभा भवन से उमड़ा सहसा जो जीवन का जाग्रत ज्वार,
अमरावती पुरी मे उसका हुआ तरंगित पूर्ण प्रसार,
उद्वेलित हो उठा सिन्धु - सा नव आन्दोलन से सुर लोक,
स्फूर्ति – फेन मे हुआ नीलिमा तुल्य विलीन पुरातन शोक।

वेला - से नन्दन कानन मे आकर ठहरा देव - समाज,
उजड़ी लीलाभूमि बन रही क्रान्ति - कला की जननी आज,
जिन तरु कुंजों को करती थी गुंजित नूपुर की झंकार;
करता था निर्घोषित उनको शस्त्रो का भीषण व्यापार।

जहाँ गूँजता किन्नरियों का मधुर मनोहर रसमय गान,
वहाँ बज रहे थे पानी से चढ़े तीक्ष्ण औ कठिन कृपाण;
जहाँ भृकुटि - धनुषों से चलते थे कटाक्ष के रंजित तीर,
करते शर फुंकार सर्प-से वहाँ शिला-तरु-नभ को चीर!

होता जहाँ प्रेम औ रति का लीलामय लज्जित अभिसार,
करता वहाँ धरा को कम्पित वीरों का दर्पित पद्चार;
पल्लव पुष्पों मे अंकित थे जहाँ रुचिर चुम्बन औ हास,
कण कण में बन रहा वहाँ था कठिन क्रान्ति का नव इतिहास।

देख प्रलय - परिवर्त्तन सहसा देवो के वे क्रीड़ा कुंज,
पुष्पों के सौरभ से पूरित लता और तरुओ के पुंज;
खड्गों की विद्युत ज्वाला औ अस्त्रों का उल्का - विस्तार,
देख रहे तरु - लता चमत्कृत अयुत पत्रदल - नयन पसार।

नन्दन वन की प्रकृति हो रही विस्मित यह कल्पान्तर देख,
ज्वाला से हो रहा गगन मे अंकित नये सर्ग का लेख;
सजग स्वर्ग के उदयाचल पर नई क्रान्ति का ले सन्देश;
किस नवयुग की दिव्य उषा ने किया प्रभा से पूर्ण प्रवेश,

जिसकी आभा मे नन्दन मे खिलता एक अनोखा दृश्य,
उद्घाटित होता देवो को जीवन का अज्ञात रहस्य;
मानस की लहरो मे करते रहे सदा जो वार - विहार,
होता उनको विदित मुक्ति हित अवगाहन का गुरु व्यापार।

पदाघात से सुन्दरियो के फूला जिनका हृदय - अशोक,
खिलता उनके ही आनन पर आज अपूर्व तेज-आलोक,
रहीं नाचतीं जिन नयनों में लीलामय अप्सरियाँ बाल,
उन्हीं मदिर नयनों मे जागी आज प्रलय की भीषण ज्वाल।

किन्नरियो के मधुर गीत से परिचित रहे सदा जो कान,
करते उनको सजग धनुष के घोष और खण्डित पाषाण;
मंजरियो – सी मृदुल अँगुलियाँ करतीं कलियों की मनुहार,
खींच रही प्रत्यंचा धनु की करती ध्वनित घोर टंकार।

बालाओ के आलिंगन से रहा प्रपीड़ित कोमल वक्ष,
ज्वार समुद्र सदृश उद्वेलित आज ओज से उठा समक्ष;
क्रीड़ा कुंजो मे जाना था जिन चरणों ने रम्य विहार,
आज वही पद सीख रहे थे रण का दृढ़ नियमित आचार।

जिस जीवन को रहा विनोदित करता मधुर प्रणय का मर्म,
कठिन परुष व्यापार प्रलय का आज बना था उसका धर्म;
गर्वित थी गृह मे अप्सरियाँ देख प्रियो का काया कल्प,
उठते उनके भी हृदयो मे अविदित नये नये संकल्प।

देख पराक्रम कर्म सुरों का रहीं दिशायें मुक्ता वार,
पुलक उठी प्राची मे ऊषा हर्ष गर्व से उसे निहार;
बन्द हुआ अस्त्रों का रव औ वीरों का हुंकृत जयनाद,
प्रतिबिम्बित हो रहा प्रकृति मे मौन सुरो का उर – आह्लाद।

सेनानी के संग मकर-से देव सरों मे कर शुचि स्नान,
करने लगे निभृत कुंजो मे और शिलाओं पर ध्रुव ध्यान;
वह निशान्त की युद्ध भूमि थी बनी योग शाला शुचि प्रात,
वीर देव, सैनिक सेनानी वे ही थे योगी अभिजात।

बना तपोवन – सा नन्दन था अकस्मात किस साधन हेतु,
नर मुनियो का साध्य स्वर्ग अब बनता किस द्युलोक का सेतु;
रहे भोग की लीलाओं से गुंजित जो तरुतल औ कुंज,
मौन योग से आज कर रहे संचित कौन पुण्य का पुंज।

सालस तन्द्रिल पलक रहे जो करते मदिर रूप का ध्यान,
आज निमीलित किस अरूप के हुये ध्यान में अन्तर्धान,
जिन कानों में रहा गूँजता नुपुर और गान का नाद,
आज स्तब्ध हो वही सुन रहे कौन अपरिचित अन्तर्नाद।

सुरा और चुम्बन के मधु स्वर नाचे जिन पर बन मधुगान,
उन अधरो का मौन मन्त्र जप बनता आज अपूर्व विधान,
रहे प्रणय की परिचर्या मे कुशल बाहु, अङ्गुलि औ हाथ,
आज योग की मुद्राओं से होते वे निस्पन्द सनाथ!

सदा वासना से रोमांचित रहता था जो सुन्दर गात,
आज वही पुलकित अपूर्व किस ओज स्फूर्त्ति आभा मे स्नात;
मधुरति के लीलाभिसार में रहे सदा जो चरण प्रवीण,
किस श्री के साधन निमित्त वे पद्मासन मे दृढ़ आसीन।

आँख मिचौनी मे लीला की रहे भटकते आकुल प्राण,
बना आज आयाम उन्हीं का किस स्थिति का धारण औ ध्यान;
मधु मरीचिका मे यौवन की रहा भ्रमित जो मन कुरंग,
किस समाधि में आज वही दृढ़ हुआ सहज बन कर निस्संग।

उमड़ रहा अन्तर में अविदित कौन शक्ति का अक्षय स्रोत,
रोम रोम हो रहा ओज के आप्लावन से ओतप्रोत,
शक्ति पुत्र बन देव कर रहे सफल योग-पुण्यों का ओघ,
योग-भूमि में सिद्ध हो रहा विजय मन्त्र अनिवार्य अमोघ।

कल्पान्तर हो गया स्वर्ग का सफल हुआ शिव का वरदान,
उत्कंठित हो उठे युद्ध के लिए विजित देवो के प्राण,
भूल गई संभ्रान्त स्वप्न-सा अमरावती अनन्त विलास,
देव कर्म बन गया योग औ अस्त्रो का सन्तत अभ्यास।

मिली स्वर्ग के परिवर्तन से अप्सरियो को नूतन दृष्टि,
चिर यौवन विलास से प्रियतर लगी जयी जीवन की सृष्टि,
सजग हुआ उनके अन्तर मे नारी का अन्तर्हित मर्म,
सेनानी का सम्भव उनको विदित हुआ जीवन का धर्म।

अवनी की आकाक्षाओ का सुन्दर स्वप्न-स्वर्ग अविकार,
आज अनन्त क्षितिज पर यौवन के निज अंचल छोर पसार,
माँग रहा नत-सिर हो भू से पुन सृष्टि का चिर वरदान,
आज सृजन के मधुर मर्म मे प्रकट हुआ जीवन-विज्ञान।

आज शची के अभ्यन्तर मे उदित हुआ अविदित वात्सल्य
मिला जयन्त वीर मे अक्षय यौवन का अनुपम साकल्य,
बोली ओज भरी करुणा से, "मेरे औरस वीर कुमार!
करो शक्ति साधन से दिव का और धरा का तुम उद्धार।

यह यौवन की शक्ति योग से होगी देव-विजय का मंत्र,
अस्त्रों का अभ्यास बनेगा निर्भयता का शाश्वत तंत्र,
ज्योतिष्पीठ बने साधन का वैजयन्त यह वैभव धाम,
बने विजय के पुण्य पर्व मे सार्थक पुत्र! तुम्हारा नाम।"

मनुहारों से रहा प्रफुल्लित जो अप्सरियो का गुरु मान.
बना प्रियो के वीर दर्प का आज गर्व गर्वित अभिमान,
आलिंगन को रहे सदा जो उत्सुक मुग्ध मनोहर हाथ,
आकुल होते विजय तिलक से वे होने को आज सनाथ:

शक्ति योग की निष्ठ साधना, अस्त्रों का सन्तत अभ्यास,
देव कुमारों के पौरुष में सफल हुए बन कर विश्वास,
शक्ति और कौशल की काष्ठा बनी अभय का चिर वरदान,
होने लगे प्राण उत्कण्ठित करने को रण का अभियान।

सेनानी ने अभिमंत्रण कर शक्र और सुर गुरु के संग,
रखा देव वीरो के सन्मुख महा युद्ध का कठिन प्रसंग;
बोल उठे सब एक कण्ठ से तारस्वर में वीर पुकार,
" देवो के बल औ कौशल की यही परीक्षा अन्तिम बार।"

असुरों के आतंक त्रास से रहते जो कम्पित औ भीत,
हुए पूर्व - संस्कार आज किस साधन से उनके विपरीत,
उमड़ उठा कोमल हृदयों में किस पौरुष का नव उत्साह,
फूट पड़ा निश्चल मानस से किस प्रपात का तूर्ण प्रवाह।

फड़के कर्कश बाहु, सिन्धु - सा उमड़ा उनका उन्नत वक्ष,
अन्तर का आवेश वदन की हुआ लालिमा में प्रत्यक्ष,
पूर्व शोक जागरित हुए सब बन कर पौरुष के प्रतिशोध,
हुई शक्ति की योग साधना आज पूर्ण बनकर शिव - बोध।

जागी वीरों के नयनों में कौन अपूर्व तेज की ज्वाल,
खनक उठी किस उत्कण्ठा से कटि में बद्ध कठिन करवाल;
पुलकित स्कन्धों के निषंग मे बाण कर रहे गुरु झंकार,
हुई दिगन्तो में प्रतिगुंजित धनुषों की भीषण टंकार।

रुक न सका उत्सुक वीरो के अन्तर का आकुल आवेश,
" मिले विजय वर-सा प्रयाण का आज अभीप्सित प्रत्यादेश,"
गूँज उठा नन्दन कानन में वीर ओज का ऊर्जित घोष
बना शक्ति से अन्वित विक्रम असुर अनय का गुरु प्रतिरोप।

वीर सैनिकों के शासन में बना सुरों के वर्गित व्यूह,
किया व्यवस्थित सेनानी ने देवों का समवेत समूह,
हुआ व्योम के विजय तिलक-सा प्रकट क्षितिज पर जब नवसूर्य,
सेनानी के साथ बजाया वीर सैनिकों ने जय तूर्य।

नन्दन वन से राज मार्ग की ओर किया दल ने अभियान,
जागी अमरावती प्राप्त कर मानो सहसा नूतन प्राण;
विस्मित हो गन्धर्व, यक्ष औ किन्नर देख रहे दृग खोल,
आज अपूर्व गर्व से चमके अप्सरियों के लोचन लोल।

अधरों में मुसकान, दृगो मे अभय गर्व का उज्ज्वल हर्ष,
अंचल मे उल्लास - प्रेम का ले आकुल उत्सुक उत्कर्ष;
पुलकित हाथो मे अक्षत औ रोली से ले सज्जित थाल,
मौन दर्प से किये प्रियो के विजय तिलक से अंकित भाल।

वीरों के प्लुत विजय घोष से गूँज उठा वासव प्रासाद,
राज गर्व प्रस्फुटित हुआ बन आज इन्द्र का नव आह्लाद;
आकर स्वयं शची ने श्री - सी वैजयन्त के तोरण द्वार,
विजय तिलक से सेनानी का किया गर्व पूर्वक सत्कार।

आकर सेनानी के पीछे जब जयन्त ने हो अनुकूल,
विनय सहित करके प्रणाम ली माँ के श्रीचरणो की धूल;
बना विजय-लिपि पुत्र भाल पर माँ के अन्तर का आह्लाद,
गद्गद् स्वर से निर्झरणी - सा फूट पड़ा बन आशीर्वाद—

"शक्ति पुत्र प्रिय सेनानी मे मिला तुम्हें शिव का वरदान,
मंगल मार्ग विश्व का होगा अमर तुम्हारा यह अभियान;
शक्ति योग हो सफल तुम्हारा बनकर असुर अनय का अन्त,
सुर - कुमार प्रत्येक गर्व हो मेरा, सार्थक नाम जयन्त।"

लेकर सूर्य कमल से अंकित उन्नत समर पताका पीत,
आगे चला वीर सेनानी कर अम्बा का स्मरण पुनीत;
विजय तिलक के सहित शची का लेकर पुलकित आशीर्वाद,
चले वरुण यम आदि उच्च स्वर से करते उसका जयनाद।

शौर्य सिन्धु - का कौन अचानक आज स्वर्ग से अपरम्पार
उमड़ रहा था शोणितपुर की ओर प्रबल उद्वेलित ज्वार;
उठकर नन्दन के अन्तर से कौन प्रभंजन भीषण तूर्ण,
बढ़ता आज अलक्षित गति से करने असुर-दर्प-तरु चूर्ण।

वायु वेग से सुर सेना ने किया पन्थ को अविदित पार,
गूँज उठा हो कम्पित रव से शोणितपुर का रोधित द्वार;
भभक उठी जब राज मार्ग मे प्रबल युद्ध की भीषण आग,
अन्त.पुर के कोलाहल से उठा तारकासुर तब जाग।

खींच कृपाण हाथ मे बोला, वीर क्रोध से होकर लाल—
"किस को आज निमंत्रित करके लाया शोणितपुर मे काल?"
किया मेघ - गर्जन से उसने पुत्रो का तत्क्षण आह्वान,
और संग ले उन्हे युद्ध के हेतु किया अविलम्ब प्रयाण।

कृष्ण पताका मे शोणित का चमका उलटा अर्ध मयंक,
गरज उठा उन्मत्त रोष से वह त्रिलोक का पूर्ण कलंक,
सेनापति ने तूर्यनाद से किया सैनिको का संबोध,
ले विशाल सेना, देवों का किया मार्ग में ही गतिरोध।

क्षीर सिंधु के उद्वेलन का मानों उर्जित भीषण ज्वार,
रक्त - कृष्ण - सागर प्लावन से टकराता था बारम्बार;
उठती पर्वत तुल्य तरंगें करती प्रलयंकर हुंकार,
डोल रही तरणी त्रिलोक की, कम्पित थे नय के पतवार।

लगे गरजने वीर क्रोध से कर निज अस्त्रों का संचार,
होने लगे उभय पक्षो से क्रुद्ध काल के भीषण वार;
गिरने लगे भूमि पर खण्डित हो होकर असुरो के मुण्ड,
चला रहे थे शस्त्र अनर्गल उनके नर्तित रंजित रुण्ड।

देवो की छाती पर होते रुण्डों के खर अस्त्राघात,
होता था मानो रण थल मे शैलों का प्रलयंकर पात;
नक्षत्रो-से टूट टूट कर मुण्ड कर रहे हा हा कार,
रुण्डो से आहत वीरो का उठता था नभ मे चीत्कार।

गरज रहे थे वीर वज्र से कर अरि दल पर शस्त्राघात,
बरस रहे थे बाण प्रलय के मेघों का धारा-सम्पात;
चमक रही चंचल बिजली-सी प्रलय नागिनी-सी करवाल,
कर शोणित मे स्नान हो रही पल पल काल जीभ-सी लाल।

काल नाग-से बाण पक्षधर करते थे भीषण फुंकार,
गुहालीन सिंहो-से करते वीर उभयदल के हुंकार;
करती थी विदीर्ण नभपट को धनुर्पों की कर्कश टंकार,
कम्पित करता था धरणी को वीरो का गर्वित पदचार।

उल्का-सी उठ गदा व्योम मे बेगवती प्रलयंकर तूर्ण,
अद्रिशिखर-सी गिर करती थी रक्त भाण्ड-सा अरि-सिर चूर्ण,
ज्वाला-सा उठ परशु बेग से गिरता दारुण वज्र समान,
करता त्वरित विदीर्ण शत्रु की देह अद्रि के सानु समान।

ज्वाला मुखी समान उमड़ती अग्नि-बाण से तीव्र कृशानु.
भस्मसात करती अरिदल को जैसे प्रलय काल का भानु;
स्खलित ग्रहो-सी गिरती सहसा अयुत शक्तियाँ उग्र महान,
होता दानव की सेना के पक्षघात का द्रुत् अनुमान।

जहाँ हुआ नर औ मुनियों का बलि पशु तुल्य क्रूर संहार,
शोणितपुर मे हुई प्रवाहित असुरों के शोणित की धार;
बन्धुरक्त की धारा में ही मत्स्य, कूर्म औ मकर समान,
हो आकण्ठ निमग्न तैरते आहत दनुज स्वयं म्रियमाण।

मँडराते थे यम दूतों-से नभ में गृद्ध, काक औ चील,
करते पारण-पर्व हतों के अंगों से वे सभी सलील,
भरा शवों से युद्ध क्षेत्र था, फिर भी कर निज प्रकट स्वभाव,
लपक छीनते एक अपर का भाग, भागते सहित दुराव।

काल दूत से घूम रहे थे निर्भय रण में श्वान शृगाल,
एक असुर के भूपर गिरते पहुँच कई जाते तत्काल,
एक अंग पर एक वीर के साथ टूटते होकर क्रुद्ध,
होता था आरम्भ शवों पर एक नया पशुओं का युद्ध।

घायल असुर मुमूर्ष शवों के बीच पड़े आकुल असहाय,
देख रहे थे दीन दृगो से जीवन की दुर्गति निरुपाय,
आहत अंगों की पीड़ा मे कर उठता अन्तर चीत्कार,
कर देता था काल अन्त मे जीवन का अन्तिम उपचार।

अंग भंग से विकल निशाचर वीर भूल बल का अभिमान,
मर्म दृष्टि से देख अनय के जीवन का यह पर्यवसान;
हो जाते जीवन की गति के चिन्तन मे ही अन्तर्धान,
करते प्रायश्चित्त चित्त मे अन्त काल में आकुल प्राण।

देख बन्धुओ को आहत हो गिरते खण्डित शृंग समान,
क्रोध सहित जाग्रत होता था दनुजों का द्विगुणित अभिमान,
भर दूना उत्साह हृदय में आगे बढ़ते असुर प्रवीर,
द्विगुण पराक्रम से करते थे उनसे रण सुरगण हो धीर।

देवों को था मिला पुण्य से दिव्य अमरता का वरदान,
सहे अमरता के ही कारण देवों ने कितने अपमान,
कर सकते थे अस्त्र न कोई देवों के प्राणो का घात,
फिर भी करते थे शरीर में व्रण अस्त्रों के क्रूर निपात।

देख रक्त को हो जाते थे जो करुणा से पहले दीन,
शस्त्रों की पीड़ा से जिनका हो जाता था पौरुष क्षीण.
दया और दुर्बलता जिनकी बनी शत्रुओं का उत्साह,
अश्रुधार से धोया करते जो रण मे भी रक्त प्रवाह;

देव कुमार आज वे ही बन पौरुष के प्रलयंकर ज्वाल,
युद्ध भूमि में गरज रहे थे बनकर निज अरिओ के काल,
देख शत्रु के भग्न कण्ठ से बहते नूतन रक्त – प्रपात,
बढ़ता मन मे ओज सौगुना शुभ प्रतिशोध पर्व में स्नात।

देख बन्धुओं के अंगो के व्रण बढ़ता था दूना क्रोध,
अस्त्रो के बाधित कौशल मे परवद्धित होता प्रतिशोध,
अपने अंगो के घावों की पीड़ा तो रहती अज्ञात
किन्तु रक्त चढ़ता आँखो मे बन विक्रम की नूतन प्रात।

रण मे भी आती थी जिनको नन्दन के विलास की याद,
मधुर राग से परिचित जिनके कर्ण चीरता रण का नाद,
आज उन्हीं को अप्सरियो का विजय तिलक बन ध्रुव अभिराम,
भीषण रण हुंकार जगाता उर मे नव पौरुष उद्दाम।

आज काम के चिर रथियों का युद्ध बना था भीषण धर्म,
आज सोम के पान – प्रियो ने जाना रक्त समर का मर्म,
कोमलता के पारखियों को हुआ परुष पौरुष का भान,
अमरो को भी हुआ मरण के गूढ़ मर्म का कुछ अनुमान।

हुआ विदित, दानव के बल का है बल ही केवल प्रतिकार.
असुरों के उन्माद दर्प का एक मृत्यु ही चिर उपचार,
अनय – प्रियों से विनय व्यर्थ है ज्यों पागल का मूढ़ प्रलाप,
आत्मीयो का अन्त मात्र है एक दानवों का अनुताप।

जाना जय के हेतु शक्ति का साधन है यौवन का धर्म,
शक्ति साधना मे गौरव की रक्षा का है शाश्वत मर्म;
असुरों के आतंक युद्ध मे शक्ति और कौशल की ढाल,
करती मार्ग प्रशस्त विजय का, बढ़ा वीरता की करवाल।

युद्ध क्षेत्र के कठिन पलों का. अनुभव से उज्ज्वल विज्ञान,
साधन बल, शिक्षण, कौशल को करता शतगुण तेज प्रदान,
अन्तर्निहित तेज से प्रस्फुट दीप्त हुए देवो के भाल,
छूटे अस्त्र प्रदीप्त तेज की बन भीषण प्रलयंकर ज्वाल।

वाम पाणि में झेल ढाल पर असुरों के भीषण तम वार,
अंगो के आघात - व्रणों की चिन्ताएँ सुकुमार विसार,
प्रलय प्रभंजन - से गर्जन कर बढ़े वेग से देव कुमार,
उन्मूलित तरुओ - से गिरते असुर मचाकर हा हा कार।

बनी पराजय की पीड़ा मे जो अनन्त अक्षय अपमान,
वही अमरता आज सुरो के हेतु बनी अन्तिम वरदान,
अमृत पुत्र वे आज शक्ति के साधन से होकर अभिपूत,
बने समर में असुर अनय के हित यमपुर के उज्ज्वल दूत।

लख देवो का दर्प, युद्ध में कौशल, साहस, शौर्य अपूर्व,
करके स्मरण समर क्रीड़ा के विजय पर्व कौतुक मय पूर्व,
क्षुब्ध हुआ अतिशय अन्तर मे तारक अपने अस्त्र सँभाल,
बोला गर्जन अट्टहास कर तथा क्रोध से होकर लाल—

"विद्युन्माली! तारकाक्ष! औ हे कमलाक्ष! हमारे वीर!
देख रहे क्या नृत्य सुरों का धरे स्कन्ध पर निज धनु-तीर,
किन्नर और अप्सराओं का पुनः देखना सुन्दर नृत्य,
अभी उचित है तुम्हे युद्ध मे करना सफल उपस्थित कृत्य।

आज किन्नरों में भी प्रकटित पौरुप हुआ अपूर्व नवीन,
नर्तक भी हो गये कदाचित् युद्ध कला में आज प्रवीण,
आज किम्पुरुष भी करते हैं अस्त्रों का भीपण संचार,
आज धृष्टता का इनकी है उचित तुम्हे करना उपचार।

असुर वंश की कीर्ति समुज्ज्वल वत्स! तुम्हारे ही है हाथ,
विजय गर्व से करना तुमको उन्नत अपने कुल का माथ,
कर परास्त इन किम्पुरुषों को अस्त्र शस्त्र सब इनके छीन,
बन्दी करके इन अमरों को करो वीर अपने आधीन।

पौरुष यह इन किम्पुरुषों का अथवा अपना युद्ध प्रमाद,
आज बन रही प्रगति युद्ध की सब इतिहासों का अपवाद,
आज बालको को कर आगे ये कायर किन्नर गन्धर्व,
दिखा रहे परिचित वीरों को नये शौर्य कौशल का गर्व।

बन कर इन भोले शिशुओं के तुम अकाल ही आगत काल,
करो कृतार्थ कला को अपनी पहना मुकुलो की जयमाल,
तब तक मैं इन किम्पुरुषों का देख नया कौशल पुरुषार्थ,
किंचित करूँ आज विक्रम के जीवन को रणमध्य कृतार्थ।"

कह कर पुत्रों से तारक ने भर कर एक विकट हुंकार,
सेनापतियों को गर्जन के सहित लगाई फिर ललकार,
और गरज कर बोला. "आओ मेरे सम्मुख हे सुरराज!
आज वज्र का वैभव अपना करो परीक्षित फिर निर्व्याज।

शिशुओ के बल पर आये क्या करने वीरों से संग्राम,
इससे तो ललनाओं की ही सेना सज्जित कर अभिराम,
कर सकते थे हमें पराजित चला रूप यौवन के बाण,
किम्पुरुषों का कामिनियाँ ही करती रहीं सर्वदा त्राण।

अभी नहीं सूखी भी होगी इन्द्राणी की आँसू धार,
भूल गये क्या हृदय तुम्हारे यह कम्पनकारी हुंकार,
भूल गये सुकुमार अंग क्या असुरों के भीषण आघात,
विस्मृत सहसा हुई कदाचित् तुम्हें पूर्व युद्धों की बात।

सचमुच होते सरल देवता, है मुनियो का कथन यथार्थ,
कामिनियो की अनुकम्पा से होकर कितनी बार कृतार्थ;
अब अबोध शिशुओं को लेकर समझ बाल क्रीड़ा संग्राम,
आये सिंहो के गह्वर मे छोड़ रम्य नन्दन आराम।

अपमानो का शाप तुम्हारा बना अमरता का वरदान,
इन शिशुओं का क्यों अकाल ही चाह रहे तुम स्वर्ग प्रयाण;
हो कर अमर पूर्व देवों के तुल्य बनेंगे ये भी दीन,
पौरुष के अभिमान दर्प की मर्यादा है मृत्यु प्रवीण।

जाओ क्षमा माँग कर लौटो करो स्वर्ग में सदा प्रमोद,
अपयश लो न शून्य शिशुओ से माताओ की करके गोद;
भव्य बालको के यौवन मे करने लीलामय परिचार,
अप्सरियों को भेज भूमि पर कर देना प्रकटित उपकार।"

सुन तारक के वचन हो उठे देवराज सहसा संक्रुद्ध,
"न्यायालय यह नहीं वाग्भट! यह अन्तिम देवासुर युद्ध;
तर्क - व्यंग से नहीं भाग्य का निर्णय होगा दानवराज!
अस्त्र और बल एक मार्ग है शेष विजय का सम्भव आज।

आज नवीन शक्ति देवों की जागी बन असुरों का अन्त,
होगे आज न विफल हमारे वही पूर्व के अस्त्र दुरन्त;
अस्त्र यंत्र है, सजग शक्ति ही करती है उनका संचार,
अस्त्रों का वैफल्य वस्तुतः प्राण - शक्ति की केवल हार।

आज उन्हीं परिचित अस्त्रो के आघातों का देखो स्वाद,
अस्त्र सम्हालो शीघ्र बन्द कर मुख का व्यर्थ अनर्गल वाद;
और रोष से पूर्ण इन्द्र ने किया असुर पर वज्र प्रहार,
दानव महावीर ने उसका किया शक्ति बल से प्रतिकार!

अवसर देख वरुण ने रोकी महागदा से भीषण शक्ति,
की आपत् में पूर्ण प्रमाणित स्वामी की सेवा से भक्ति,
देख असुर का वेग इन्द्र पर घिर आये सारे दिग्पाल,
दिया दिखाई निकट असुर को आगत अपना अन्तिम काल।

हो उन्मत्त प्रचण्ड वेग से करने लगा अस्त्र संचार,
देवों को हो गया असंभव करना भी उनका प्रतिकार;
अट्टहास, हुंकार, गर्जना करके रहा दिशायें चीर,
करता था दुर्जेय समर वह देव-गणों से दानव वीर।

सेनानी के खर अस्त्रों से देख किन्तु दल का संहार,
तारक तनयों के हृदयो का धीर रहा था साहस हार;
जान प्राण-संकट की वेला होकर वे क्षत विक्षत गात,
करने लगे पलायन पीछे सह न स्कन्द के अस्त्राघात।

देवराज की ओर जान कर अवसर आया स्कन्द कुमार,
किये दूर से ही दानव पर उसने भीषण बाण प्रहार;
निज अदृष्ट का कोप जानकर दानव हुआ हृदय में व्यग्र,
लड़ने लगा प्रचंड वेग से कर साहस एकत्र समग्र।

लख कुमार को सम्मुख आया "बोला कुंठित दानव राज,
आज बालकों के कौशल से रक्षित इन्द्रलोक की लाज;
इन्द्रादिक के समर-शौर्य का देख लिया मैंने बस अन्त,
अब शिशुओं का शौर्य देखना शेष रहा मुझको हा! हन्त!"

भीषण अट्टहास से करके उद्घोषित फिर चतुर्दिगन्त,
बोला "हुआ वीरता का क्या निश्चय अब त्रिलोक मे अन्त !"
सम्बोधित करके कुमार को बोला "हे योगीन्द्र कुमार !
क्यों समाधि को छोड़ हुआ प्रिय तुम्हे युद्ध का यह व्यापार !

देख तुम्हारे कोमल वय को होता उर में दया - विकार,
कुसुमों से अंगो पर करते बनता नहीं प्रचण्ड प्रहार,
दर्शन के भी हेतु तुम्हारे करना पड़ता अवनत शीष,
क्षमा किया तुमको, घर जाओ, ले मेरा निर्भय आशीष।

करो न सूनी स्नेह मयी तुम वत्स ! अभी माता की गोद,
अभी इष्ट है तुम्हें बहुत दिन शैशव का आमोद प्रमोद,
कठिन तपस्या से पाया है मातु - पिता ने एक कुमार,
सादर सेवा - शुश्रूषा से करो अभी उनका उपकार।

यह भीषण संग्राम, भूल कर आये इसे समझ कर खेल,
अस्त्रों के आघात तुम्हारे कोमल अंग सकेगे झेल ?
ले आये किम्पुरुष तुम्हें यदि देकर छल से कुछ विश्वास,
आओ तो निर्भय पहुँचा दूँ तुम्हे पिता - माता के पास।"

सुन तारक के वचन गर्व से बोला बढ़कर स्कन्द कुमार,
"दानवेन्द्र ! कर चुके बहुत तुम जग मे करुणा का विस्तार,
शिशुओ का चीत्कार करुण औ अबलाओं का हा हा कार,
गूँज रहा शाश्वत दिगन्त मे बन तव करुणा का जयकार।

ऋषि मुनियो की निस्पृहता औ अमरो का स्वच्छन्द विलास,
तथा नरों की निष्क्रियता में छिपा मनुजता का उपहास,
बना अतीत युगों में ही था असुरों का निर्भय उन्माद,
अब भविष्य बन रहा भूत के नियमो का निर्मम अपवाद।

सजग हो चुकी है मानवता हुआ जागरित देव समाज,
शक्ति पीठ बन रहा काम का क्रीड़ावन वह नन्दन आज.
वही अस्त्र हैं किन्तु कर रही नई शक्ति उनका संचार,
इसी शक्ति से निर्मित होगा असुर रहित नूतन संसार।

परशुराम कर रहे योग में महाशक्ति का योग अखण्ड
दीन त्रस्त सुर और नरों का पौरुष अब हो रहा प्रचण्ड,
नित्य तुम्हारा काल ले रहा शिशुओं के तन में अवतार,
खोल रहा प्रति नयन तुम्हारे लिये मृत्यु के नूतन द्वार।

होता है कैशोर शक्ति औ चेतनता से पूर्ण प्रबुद्ध,
शक्ति - सिद्ध योगी - कुमार ही कर सकते असुरो से युद्ध,
व्यर्थ प्रलाप बन्द कर साधो अस्त्र क्रूरतम दानवराज!
पूर्ण तुम्हारे सब पापो का प्रायश्चित्त हो रहा आज।"

कह इतना तत्क्षण कुमार ने किया अस्त्र वर्षण आरम्भ,
भूल गया विभ्रान्त असुर को विगत वीरता का सब दम्भ,
हो उन्मत्त प्रचण्ड वेग से करने लगा अस्त्र संचार,
देख अपरिचित रूप असुर का विस्मित होते देव-कुमार।

उत्तेजित उसकी हुंकृति से घिर आये बहु दानव वीर,
लगे बरसने वज्र वेग से कुन्त, कृपाण, शक्ति औ तीर,
अद्भुत हुआ देव-दनुजों का वह भीषण अन्तिम संग्राम,
हो उन्मत्त वीरता ने था किया नग्न नर्तन उद्दाम।

सेनानी के सैनिक वटु भी बना अभेद्य अटल प्राचीर,
लगे छोड़ने वायु वेग से दानव दल पर भीषण तीर,
देवों ने भी उत्साहित हो किये आयुधो के द्रुत वार
होने लगा प्रचण्ड वेग से असुरो का अन्तिम संहार।

वाणों के सर्पण से उठती फणियो की तीखी फुंकार .
करती थी कम्पित दिगन्त को वीरों की प्रचंड हुंकार,
अवनी को आकम्पित करती शक्ति हरण कर कितने प्राण,
करती कितने शीष गदायें चूर्ण दानवो के निस्त्राण।

कितने घायल असुर भूमि पर पड़े, रहे थे विवश कराह,
अस्त्रों का संघर्ष मार्ग में करता था मानो शवदाह,
प्रलय – घनों सी टकरा नभ में चण्ड शक्तियाँ कर रव घोर,
करती थीं विच्छुरित व्योम मे विद्युत ज्वालायें चहुँ ओर।

सर्वनाश लख निकट क्रोध से गुरु गर्जन कर अंतिम बार,
करने लगा अपूर्व वेग से अस्त्रों का सर्वत्र प्रहार,
बुझती दीप शिखा – से दीपित हुए भयंकर लोचन लाल,
अन्तिम काल,विलोक काल को हुआ वीर अतिशय विकराल।

इन्द्र समेत देवताओ को देख अन्त में अल्प अधीर,
सेनानी ने छोड़े तत्क्षण कुछ अज्ञात विलक्षण तीर,
खण्डित किये वीर ने पल में दानव के दोनों भुजदण्ड,
विवश मृत्यु के मुख मे जाते गरजा वह कर नाद प्रचण्ड।

कम्पित हुई दिशायें, थर थर डोली मानों धरा अधीर,
कंठ – वेध के लिये स्कन्द ने छोड़ा अन्तिम अद्भुत तीर;
गिरा भूमि पर कट कर उसका शीष उसी क्षण राहु समान.
गिरा हिमालय – सा खण्डित हो रुण्ड धरित्री पर निष्प्राण।

मचा असुर सेना में उसके गिरते भीषण हाहाकार,
दानव करने लगे पलायन अस्त्र, शस्त्र औ युद्ध बिसार
समाचार सुन शोणितपुर में फैल गया अद्भुत आतंक
अस्त हो गया आज युद्ध में दानव कुल का पूर्ण मयंक।

सर्ग १८

जयन्त अभिषेक

सुनकर तारक का निधन भयंकर रण में,
हो उठे हर्ष के पर्व अखिल त्रिभुवन में;
छा रहा शोक का तम पर शोणितपुर में,
जल रही चितायें वहाँ सभी के उर में ।

थे युवक अनेकों गये युद्ध में मारे,
कितने जीवन के टूटे सुदृढ़ सहारे !
रो रही त्रियायें याद प्रियों की करके,
चीत्कार कर रहीं धूल द्वार की भरके ।

हो रहे धूल से वस्त्र स्रस्त-से मैले,
धूसरित केश थे अस्त व्यस्त हो फैले;
भूली थी उनको सुध-बुध अपने तन की,
था कौन जानता पीड़ा उनके मन की !

था कौन नियति का वज्र अचानक टूटा;
किसने उनका सर्वस्व सदा को लूटा !
हो गया युद्ध में कैसे वाम विधाता
सन्तप्त चित्त था उनका समझ न पाता !

जिनका सब जीवन-काल युद्ध में बीता,
बहु बार जिन्होंने सुर-नर सबको जीता,
किस छल-बल से वे गये युद्ध में मारे !
किस ज्वाला में जल गये स्वयं अंगारे !!

उजड़ी-सी लगती थी असुरों की नगरी,
सूनी-सी लगती उसकी डगरी डगरी;
घर घर से उठती करुण हूक पल पल में,
छाया था भय औ विस्मय राज महल में ।

वे वीर रमणियाँ स्वयं जिन्होंने कर से
पतियों को सज्जित करके अपने घर से
उत्साह सहित था युद्ध-भूमि में भेजा,
करने को पौरुष बारम्बार सहेजा,

रण मे पतियों के विक्रम सुनकर फूलीं
आनन्द-दोल में विजय गर्व से भूलीं,
गा गा कर जय के गीत गर्व के स्वर से
जय-तिलक किया वीरो का पुलकित कर से,

वे आज पीटकर शीष विकल हो रोतीं,
मिट रहे धूल मे आँखों के मृदु मोती,
कुररी-सी करतीं क्रन्दन आर्त्त विपिन मे,
बन कर करुणा की मूर्ति आज दुर्दिन मे।

लख माताओ को अपनी आकुल रोते,
मन मे विस्मित बालक आतंकित होते;
रचते अनर्थ के धूमिल चित्र हृदय मे,
संकुचित किन्तु वे रहते अस्फुट भय मे।

वृद्धायें उनको हाथ पकड़ ले जातीं,
नाना प्रकार से थीं उनको समझातीं;
वचनों से वधुओ का आश्वासन करतीं,
कहते कहते ही किन्तु स्वयं रो पड़तीं।

लेकर शिशुओं को गोद लगाकर छाती,
करुणा से विह्वल हो होकर दुलरातीं;
मृदु हाथ फेर कर मृदु अंगों पर उनके,
करतीं वर्णन निज वीर सुतों के गुण के—

"हा वीर वत्स ! सबकी आँखो के तारे,
वृद्धा माता की वय के एक सहारे,
वधुओ के सुख-सौभाग्य, माँग के मोती,
शिशुओं की आशा तुम मे स्वप्न सँजोती !

क्या झूठे ही हैं जग के सारे नाते !
तो आँसू किसका मोल अमोल चुकाते !!
क्या मरण एक है दर्पण इस जीवन का !
जय, कीर्ति, भूति क्या मोह मात्र है मन का !!

था बचपन से ही युद्ध तुम्हारी खेला,
किसने त्रिभुवन मे वार तुम्हारा मेला !
तुम हँसते हँसते समर भूमि को जाते,
आकर चरणो मे शीष सहर्ष झुकाते !

जय तिलक सदा कर धन्य हुई यह माता,
पर हाय ! आज क्यो उलटा हुआ विधाता !
हो गये पुण्य क्या आज हमारे रीते !
होते अनर्थ जो अब अनेक अनचीते !!

देकर अशीष न कितनी बार पठाये,
धन औ बन्दी ले सदा समर से आये;
त्रिभुवन की श्री संचित कर शोणितपुर में,
भर दिया अमित ऐश्वर्य, हर्ष उर उर मे ।

कितने सुर, नर, किन्नर, गन्धर्व बिचारे,
तुमसे बल, विक्रम औ कौशल मे हारे,
आ क्रीतदास-से सेवा सविनय करते,
थे रहे तुम्हारी दृष्टि-मात्र से डरते ।

कितनी अबलायें भर आँखों मे मोती,
कितनी कुमारियाँ सौ सौ आँसू रोतीं,
कितनी अप्सरियाँ—किन्नरियाँ सुकुमारी
करतीं परिचर्या वीर ! सभीत तुम्हारी ।

उन आँखों के पानी से चढ़ी दुधारी,
किस सुर—नर की बन आई मृत्यु तुम्हारी,
क्या जन्मा कोई वीर नया त्रिभुवन मे,
जिसने तुमको कर दिया पराजित रण मे ।

तुमने न किसी का जीवन जीवन माना,
मद में न हृदय का मर्म तनिक पहचाना,
बल से आत्मा के अंकुर निर्दय दलते,
तुम रहे धरा के सुमन नृशंस कुचलते ।

उसका ही प्रायश्चित हुआ क्या रण मे !
तुमने क्या क्या देखा निज अन्तिम क्षण मे !!
तुम हुये मृत्यु मे मुक्त सभी बन्धन से
ऋण हमें चुकाना अभी शेष जीवन से ।

अब है देवों की दया हमारी आशा,
होगी जीवन की क्या नूतन परिभाषा !
यदि उनसे हमको जीवन दान मिलेगा,
तो शोणितपुर नव स्वर्ग समान खिलेगा !”

कहते कहते निज हत जीवन की गाथा,
वृद्धायें रोती पकड़ करो मे माथा,
सुन वृद्ध क्रुद्ध हो हो कर भीतर आते,
वृद्धाओं को आवेश सहित समझाते ।

"चुप रहो, हो गया सब जो कुछ था होना,
अब करो शान्ति, है व्यर्थ तुम्हारा रोना;
है उचित बड़ो को धीरज ही दुर्दिन में,
आश्वासन दो वधुओं को समय कठिन मे ।

मर गये युवक, पर वृद्ध अभी हैं जीते,
क्या बाहु—कोप हो गये हमारे रीते !
हो गईं काल से यद्यपि आज पुरानी,
है शेष अभी इन तलवारों पर पानी ।

हमसे बढ़कर ये बालक वीर तुम्हारे
सबके जीवन के दृढ़ औ दीर्घ सहारे,
हो शान्त, स्नेह से, इन्हे यत्न से पालो
इनके जीवन मे धूल न सहसा डालो ।

आँसू से इनकी आग न अभी बुझाओ,
कातर रोदन से इन्हें न दीन बनाओ;
ये वीरों की सन्तान, पूर्ण यौवन में,
बन वीर, करेंगे बहु विक्रम जीवन में ।"

"भू—लोक, स्वर्ग अथवा इस शोणितपुर मे
क्या सभी योषिताओं के अविदित उर मे
रहती अन्त:स्थित सदा एक ही नारी,
आँसू से भीगी, करुणा से सुकुमारी !"

यह सोच रहे निज चिन्तित भी दृढ़ मन मे,
आ गये वृद्ध ले बालों को प्रांगण मे;
ज्यों बढ़े द्वार की ओर तनिक चल आगे,
गम्भीर नाद से पन्थ नगर के जागे ।

उठ चतुर्दिशाओं से समवेत गगन में,
पथ मे, प्रांगण मे, पुर के भवन भवन मे,
जिसकी प्रतिध्वनि का घोष भयंकर गूँजा;
आक्रमण हुआ क्या यह देवों का दूजा !

शंकित भी सब अपने द्वारों पर आये,
सबने ध्वनि पर निज कान सतर्क लगाये;
दी किन्तु दिखाई सहसा देव—पताका,
उड़ रही गगन मे जैसे दूर बलाका ।

था आगे वीर कुमार देव—सेनानी,
अनुगत थे सैनिक सुर—कुमार अभिमानी;
करते वे जय जयकार घोर पल पल में;
पुर क्षुब्ध हो रहा बार बार हलचल मे ।

देवों की सेना जब पुर—पथ में आई,
निस्तब्ध शान्ति सर्वत्र नगर मे छाई;
हो गया मन्द अन्त.पुर का भी रोना,
स्तम्भित—सा भय से लगता कोना कोना !

आशंकाओं की मौन कल्पना करते,
थे वृद्ध द्वार पर देख रहे सब डरते,
बालो को अंक सशंक लगाते अपने
लखते आशा के आशंका मे सपने ।

कर भ्रमण पथों मे पुर आतंकित करती,
असुरों के मन में भय औ विस्मय भरती,
देवों की सेना राजमहल पर आई
पर्वत पर मानों प्रलय—घटा थी छाई ।

कर दुर्ग द्वार को भंग वेग से क्षण में,
समवेत हुई सब सुर सेना प्रांगण में,
रुक गये सभी भट आकर सभा—भवन में,
हो गये सभा के तत्पर आयोजन में।

भयभीत प्रथम हो भीषण कोलाहल मे,
रोईं प्रमदायें ढाँप वदन अंचल मे;
कोई विलोक उत्पात न अन्त:पुर मे,
निर्भय-सी फिर हो रहीं सशंकित उर मे ।

सेनानी ने निज दूत भेज कर नय से
करके आश्वासित उनको पूर्ण अभय से,
पुर के वृद्धों को आदर सहित बुलाया ।
जन-वर्ग समुत्सुक संग सकल घिर आया ।

तब देख सभा का कुछ आयोजन-क्रम-सा,
अन्त.पुर का मिट चला भयंकर भ्रम-सा,
वधुओं को वर्जित करतीं तीक्ष्ण नयन से,
वृद्धायें लगी निरखने वातायन से ।

जब पूर्ण जनों से सभा यथोचित जानी,
अवसर विलोक कर उठा वीर सेनानी;
औ सिंह-कण्ठ में विजय दर्प भर बोला
(पुर के लोगों ने अपना हृदय टटोला)—

"शोणितपुर के सब वर्तमान अधिवासी,
नि.शंक आज हों देवों के विश्वासी;
हम नहीं ऋणों का व्याज चुकाने आये,
हम नहीं युद्ध की आग जगाने आये ।

हो गया स्वयं ही अन्त भयंकर रण का,
है शोक हमे तारक के वीर मरण का;
त्रिभुवन मे था वह अद्भुत वीर अकेला,
रण मे कब उसका वार किसी ने झेला !

त्रिभुवन उसके बल विक्रम से परिचित है,
पद पद पर उसकी कीर्ति—कथा अंकित है;
शोणितपुर का यह सार्थक नाम निराला,
होगा युग—युग उसकी स्मृति की जयमाला !

इस राजभवन औ पुर के प्रति घर घर मे,
आँसू की अञ्जलि औ करुणा के स्वर मे,
कितने ऋषि, मुनि औ नर नय के अधिकारी,
वर चुके प्राण से उसकी कीर्ति कुमारी !

कितनी अबलाओं के आँसू की धारा,
बन चुकी कीर्ति का अर्घ्य वीर के न्यारा,
कितनी सतियो की आत्म ज्योति से जागी
बन चुकी चितायें शुचि आरती अभागी !

कितनी कुमारियो—वधुओं के रोदन की,
कितने शिशुओं के करुणामय क्रन्दन की,
प्रतिध्वनि में गुंजित है उसकी जयगाथा
सुन जिसे आज भी विनत हमारा माथा !

कितनी सतियों के तप. पूत यौवन की,
बलि चढ़ी, वीर के बनकर धूलि चरण की;
कितनी कुमारियो के अज्ञात प्रणय का
उत्सर्ग बना वरदान वीर के भय का !

इस राजभवन के कक्ष आज अनबोले
कह रहे द्वार—दृग भय—विस्मय से खोले
उसके पौरुष की अमर कथाये कितनी
बन्दी प्राणों की मर्म व्यथाये कितनी !

भीतो पर अंकित चित्र विचित्र प्रणय के,
रस-भरे रूप की लाज—भरी अनुनय के,
कर रहे मौन वर्णों के रंजित स्वर में
घोषित उसकी रस—कला—कीर्ति भव भर में !

हो गया धर्म भी पाप भीति से जिसकी,
बन गया सत्य भी शाप नीति से जिसकी,
जिसने शिशुओ को भी बलिदान सिखाया
जीवन से जिसने मरण मनोज्ञ बनाया !

जिसने कृपाण की धारा पर पलभर में,
ली भेंट धर्म की लाज सहित घर घर मे;
जड़ पूजा का भ्रम भंग किया चेतन का,
अभिमान जगाया धर्म और जीवन का !

जिसने विलास मे भूल रहे अमरो को,
औ शान्ति साधना मे तल्लीन नरों को
जागरित किया दे बहु आमन्त्रण रण के;
मुक्तों को कितने पाठ दिये बन्धन के !

देवों को जिसने शक्ति—मार्ग दिखलाया,
अमरों को जिसने अभय विधान बताया,
मुनियों को जिसने युद्ध पन्थ पर भेजा
सिंहो का जिसने नर को दिया कलेजा !

तारक तारक ही था सुर औ मानव का,
सन्ताप धरा के बना नवीन प्रसव का;
इतिहास रहेगी उसकी अमर कहानी,
गायेंगे उसकी कीर्ति विश्व के प्राणी !

कर दिये प्रमाणित उसने सत्य अनोखे,
खण्डित कितने कर दिये हमारे धोखे,
हमने हृदयंगम कर उससे शर तीखे,
जीवन के कितने सत्य कठोर न सीखे !

बल नहीं किसी का अजय विश्व मे होता,
है बली गर्व मे बीज नाश के बोता;
बल से उद्‌बोधित होता सोया बल है,
होता विनाश ही बल का अन्तिम फल है ।

बल को विवेक का यदि सम्बल मिल जाता,
तो अग्नि—शिखा में मंगल-सा खिल जाता;
बल है विवेक के बिना अन्ध अतिचारी,
पद तले कुचलता जीवन की फुलवारी ।

केवल बल का मद जब विवेक हर लेता,
अभिमानी में वह अनाचार भर देता;
सन्ताप विश्व का बनकर उसकी क्रीड़ा,
दलितों को देती कितनी दुःसह पीड़ा ।

बल का भोजन है अपरों की दुर्बलता,
कायरता पर ही बल का मद नित पलता,
यदि कभी सचेतन होकर जीवन जगता
तो फिर बल—मद का अन्त निकट ही लगता ।

जब तक विलास मे रहे देवता खोये,
जब तक नर अपनी दुर्बलता मे सोये,
तारक ने अपने बल से त्रिभुवन जीते,
औं किये अनर्गल सब अपने मन चीते ।

जब हुआ नरो में एक अनोखा ज्ञानी.
तप—योग—ज्ञान का व्रती, शक्ति का मानी,
सब शास्त्रों मे निष्णात, शान्ति का नेता
शस्त्रों मे अद्भुत, बल—से विश्व—विजेता ।

निज चेतनता से उसने विश्व जगाया,
दृढ़ ज्ञान-भूमि पर बल का वृक्ष लगाया;
उसकी छाया मे आज विश्व निर्भय है;
उसका ही वर यह आज हमारी जय है ।

है आज अन्धबल ज्ञानशक्ति से हारा,
मद हुआ पराजित आज तेज के द्वारा;
होता रण में बस निर्णय केवल बल का,
जीवन ही बनता निकष शेष सम्बल का ।।

यदि शेष वीर हो कोई शोणितपुर में,
बल दर्प अभी हो जिसके गर्वित उर में;
वह बना सभा को समर शौर्य दिखलाये
बल की सीमा का परिचय त्रिभुवन पाये ।

यदि हुआ शून्य बल तो फिर बल-मद त्यागो,
हे निशाचरो ! अब आत्म—ज्योति मे जागो,
शोणित की धारा शोणितपुर मे बहती
अत्याचारों की कथा तुम्हारे कहती ।

शोणित ने ही यह शोणित आज बहाया,
बल-मद ने ही यह नाशक युद्ध जगाया,
अपनी वधुओं के आँसू आज निहारो;
अब कुछ आँसू का मन मे मोल विचारो !

देखो अनाथ इन शिशुओं के जीवन को,
क्या लगा कुलिश आघात आज पाहन को !
कुछ लाज—शील का मान आपने जाना,
कुछ मर्म दु.ख औ करुणा का पहचाना !

समवेदन से विद्रवित हमारे उर हैं,
हम सैनिक भी हैं, किन्तु मूलत. सुर हैं;
बन गया युद्ध तो आपद्धर्म हमारा,
है प्रेम प्रकृति औ नय शिवकर्म हमारा ।

यह नहीं असुर की किन्तु सुरो की जय है,
जित होकर भी सब दानव-दल निर्भय है;
विश्वास करें शोणितपुर के नरनारी
प्रतिशोध न होगी विजय कदापि हमारी ।

यदि शेष शान्ति का मार्ग अन्यतर होता,
तो कभी न, निश्चित है, यह संगर होता,
अत्याचारों की सीमा ही दुखदायी
बन चरम विवशता हन्त ! हमारी आई ।

है शोक हमे विधवा वधुओं का मन मे,
बुझ गया भाग्य का दीप नये जीवन मे;
अवलम्ब छिन गया शिशुओं, वृद्ध जनों का,
आतंक मिट गया किन्तु अखिल भुवनों का ।

सन्तोष यही कर शान्ति सभी जन धारो,
निज दुख मे भी हित जग का तनिक विचारो;
यह अन्त आज जगती के अन्तिम रण का
आरम्भ विश्व मे बने नये जीवन का ।

आलोकित हो नव आत्मा शोणितपुर में,
हो भाव नये समुदित जन जन के उर मे,
हो शक्ति श्रेय की अभयंकर सहकारी
आनन्दपूर्ण हो संस्कृति नई हमारी ।

होगा जयन्त अब नया तुम्हारा नेता,
संरक्षक सबका, नहीं नृशंस विजेता;
सविनय अर्पित इन वज्र करो के द्वारा
यह रत्नमुकुट हो ध्रुव—आलोक तुम्हारा ।"

कह ओज और करुणा के मिश्रित स्वर से,
सेनानी ने अपने पुलकित युग कर से,
सिर पर जयन्त के राजमुकुट पहनाया
आलोक हर्ष का सभा—भवन मे छाया ।

कर उठे जयध्वनि एक साथ नरनारी,
प्रकटी सहसा वह कौन अपूर्व कुमारी !
मन्थर गति से चल सिंहासन तक आई
सहसा जयन्त को जयमाला पहनाई !

जग उठा हर्ष औ विस्मय सबके उर मे,
हो उठे गीत मंगल के अन्त.पुर में,
शोणितपुर के सब आनन्दित नर नारी,
बोले "जयलक्ष्मी यह अभिषिक्त हमारी" ।

पहना जयन्त ने रत्नों की जयमाला,
की वाम पार्श्व में आदृत तारक-बाला,
सम्बन्ध स्वर्ग और नूतन शोणितपुर का
सन्तोष और उल्लास बना प्रति उर का !

जयलक्ष्मी-सी ले पुत्रवधू सुकुमारी,
चल दिये इन्द्र कर संचित सेना सारी,
अन्त.पुर ने अर्पित की रुचिर बधाई,
पुर के वृद्धो ने दी नय-पूर्ण विदाई ।

सब समाचार सुन दूतो से इन्द्राणी,
हो उठी समुत्सुक करने को अगवानी;
आनन्द अपरिमित स्वर्ग-लोक मे छाया,
खोया-सा निज सर्वस्व सभी ने पाया।

नूतन जीवन-श्री सुर वधुओं ने पाई,
उर की विभूति स्वर की सुषमा बन आई;
अप्सरियो के पद थिरक उठे किस लय मे,
किन्नरियों के स्वर उज्ज्वल हुये अभय में ।

दर्पण-से हर्षित सुर-वधुओं के उर के
खिल उठे सुसज्जित भवन-द्वार पुर पुर के,
नन्दन के पुष्पित पन्थों तुल्य रंगीले,
खिल उठे स्वर्ग के मार्ग समस्त सजीले ।

उत्सव का नव आमोद चतुर्दिक छाया,
फैली थी कौन अपूर्व पर्व की माया,
थीं कल्पलतायें फूल रहीं घर घर में
खिल उठे कल्पतरु पद पद दिव्य नगर में ।

दिन मे खिलती थी नन्दन की फुलवारी,
जगती रजनी मे दीपो की उजियारी;
थे राह देखते उत्सुक नयन सुमन-से,
थे स्नेह चाहते दृग-दीपक दर्शन से ।

ऐरावत पर चढ़ इन्द्र और सेनानी,
लेकर जयन्त की विजय-वधू कल्याणी,
सुर नगर द्वार पर जब जय ध्वनि से आये,
बज उठे नगर मे स्वागत—पूर्ण बधाये ।

स्वागत की सज्जा सज्जित कर निज कर से,
दृग-द्वार खोल कर आलोकित अन्तर-से
दृग-द्युति से ज्योतित पन्थ प्रियो का करतीं,
स्वर-निधि से सूने पल आकुल-से भरतीं,

लक्ष्मी सी शोभित, आज वधू-सी भोली,
सोने के थालो मे ले अक्षत—रोली;
कर में लेकर नव-कुसुमों की मालायें,
द्वारों पर उत्सुक खड़ी देव—बालायें ।

'जय जय' ध्वनि औ बाजो के कोलाहल में,
आनन्द हर्ष की अनियन्त्रित हलचल में,
ऐरावत से सुरवर्ग पुरस्कृत आये,
दर्शन मे ही प्रिय, सुर-वधुओं ने पाये ।

सज्जित द्वारों पर आकर अपने अपने,
देवो ने मन मे सफल किये चिर सपने,
शुचि सत्व—स्नेह की सुषमा में कल्याणी,
हो गई दृष्टि के संगम मे लय वाणी ।

जय के पुष्पो की वृष्टि हो रही मग मे,
मानों प्रफुल्ल हो नन्दन आया पग मे;
बिछ रहे पन्थ मे इन्दीवर के दल-से
सुर-वधुओं के दृग चंचल हुये अचल-से ।

लख ऐरावत पर बैठी अद्भुत बाला,
होता कौतूहल विस्मय पूर्ण निराला;
सुर-वधुये कहतीं आपस मे औ मन मे,
जय लक्ष्मी अद्भुत मिली सुरो को रण मे ।

द्वारो पर आ निज शीश स-प्रेम झुकाते,
माथे पर अंकित विजय-तिलक सुर पाते;
उत्सुक हाथो से पहना कर जयमाला,
प्रिय के चरणों मे पड़ती प्रति सुर बाला ।

गल गई युगो की ग्लानि विजय के क्षण मे,
नव भाव जागरित हुये नये जीवन मे,
भूली अतीत की वह उच्छ्रृंखल माया,
मन का आनन्द न तन मे आज समाया ।

पा वैजयन्त के दीर्घ द्वार की वेला,
रुक गया हर्ष का ज्वार सहज अलबेला,
उतरे जयन्त युत इन्द्र और सेनानी,
ऐरावत से, ले जय-लक्ष्मी कल्याणी ।

कर सेनानी का तिलक प्रथम निज कर से,
सिर पर बिखेर कर सुमन विजय के वर-से,
जय वधू सहित पा सुत को नत चरणो में,
हो गया शची का जीवन धन्य क्षणो मे ।

दोनो का करके तिलक हर्ष से फूली
खिल उठी रोहिणीयुत शशि से गोधूली;
अन्त.पुर मे ले गई अंक मे भर के,
बोली कर मे मुख विनत वधू का धर के—

"मेरे जयन्त की जय लक्ष्मी यह आई
इस वैजयन्त ने आज स्वामिनी पाई,
सौभाग्यवती है अमरावती हमारी,
है सफल स्वर्ग की आज भूतियाँ सारी।"

हो उठे गीत मंगल के राजभवन मे,
कर उठे नृत्य हर्षित मयूर नन्दन मे;
नक्षत्र विश्व के देख रहे दृग खोले
जय-पर्व स्वर्ग के आज स्वप्न से तोले।

सुर पुर में जय की प्रथम उषा अब जागी,
बोली जयन्त से शची स्नेह-अनुरागी;
"हम यहाँ विजय के हर्ष-पर्व में फूले
उस पुत्रवती का स्मरण मोद मे भूले,

जिसने कर उर से पृथक पुत्र सेनानी,
अर्पित की हमको जय लक्ष्मी कल्याणी"।
माँ को जयन्त ने सादर शीप नवाया,
तत्क्षण प्रयाण का साज समस्त सजाया।

अभिनन्दन सबका कर सादर सेनानी
चलने को उद्यत हुआ वीर वरदानी
गूँजा कुमार का जय जयकार गगन मे
थे जागे अद्भुत भाव सभी के मन मे।

आशीष सहित दे अभिनन्दन इन्द्राणी
बोली कुमार से प्रेम भरी मधु वाणी—
"करके गिरिजा से प्रणति निवेदित मेरी,
कहना युग युग तक शची तुम्हारी चेरी

प्रति पुत्रवती त्रिभुवन की पावन नारी,
है आज उमा से गौरव की अधिकारी।"
बोले सुरेन्द्र "हे वीर ! तुम्हारी जय हो !
तुम नव संस्कृति के उज्ज्वल सूर्योदय हो;

आलोक विश्व का विक्रम बनें तुम्हारे
सेनानी हो कुमार त्रिभुवन के सारे।
कर देवराज की प्रणति निवेदित शिव से
कहना असुरो का त्रास मिट गया दिव से।"

चढ़ ऐरावत पर ले सुर सेना सारी
चल दिये वीर कैलास ओर ध्वज-धारी,
हो उठे चमत्कृत वैभव से जीवन के,
जनपद औ सूने पथ गिरि, वन, कानन के।

सुन विजय पुत्र की पूर्व चरों के मुख से
थी परम प्रफुल्लित उमा गर्व औ सुख से,
स्वागत के हित कैलास सुसज्जित सारा,
कर रहा प्रकट उल्लास उत्सवो द्वारा।

कर विनत पुत्र को भेंट हर्ष से फूली,
हो उमा स्नेह से गद् गद् सुध बुध भूली,
शंकर प्रसन्न थे प्रणत पुत्र की जय से,
कैलास धन्य था नव-जीवन-समुदय से।

परशुराम के शक्ति योग का मूर्त्त तन्त्र सेनानी
सिद्ध हुआ, पा शोणितपुर में जय-लक्ष्मी कल्याणी;
हुई विजय मे शक्ति-साधना परम कृतार्थ सुरों की,
तारक-वध मे हुई कामना पूर्ण अनन्त उरों की।

शोणित का प्रतिशोध होगया शोणित से संगर में;
असुरो का प्रतिबोध होगया देव—दया के वर में;
बल का दुर्मद चूर्ण होगया शीष—भंग के क्षण मे,
पूर्ण पाप का कुम्भ, होगया भग्न रक्त के रण मे।

हुआ पूर्ण परिणाम प्रकृति के अनियन्त्रित पोषण का,
प्रायश्चित कठोर होगया प्राणो के शोषण का;
प्रकट हुई अतिशय घर्षण से जो पावक चन्दन मे,
हुई प्रज्वलित असुर-मेध के महायज्ञ—से रण में।

देव—देह की समिधाओं ने अमर अग्नि को पाला,
नर-मुनियों के रक्त—हव्य ने की संवर्द्धित ज्वाला;
अबलाओं, शिशुओ का क्रन्दन बीज मन्त्र बन आया,
असुरों का बलिदान यज्ञ ने पूर्णाहुति—सा पाया।

हुआ अपूर्व शान्ति का समुदित पुण्य कर्म के फल सा
रण की रक्त पंक में खिलते उज्ज्वल धर्म-कमल सा,
यज्ञ—धूम की गन्ध मोद बन शुचि त्रिलोक में छाई
त्रिभुवन की विभूति बन रज ने कीर्ति पवन से पाई।

असुरों के अत्याचारों का अन्त हुआ त्रिभुवन में,
जले शान्ति के दीप विश्व के प्रति संक्रान्त सदन में;
हुई देव कन्यायें निर्भय निज नन्दन-विचरण मे,
मुनि-कन्यायें मुक्त मृगी-सी अभय हुई वन-वन में।

अन्त हुई सब उत्पातों की निशा दुरन्त अभागी,
धूमिल क्षितिजों पर त्रिलोक के नई उषायें जागीं;
विकसित हुआ, स्पर्श संजीवन पाकर तेज-किरण का,
शोणितपुर की रक्तपंक मे शतदल नव जीवन का।

टूट टूट कर उल्काओं-से तारक-बन्धु बिचारे
शोणित-सागर मे ऊषा के डूबे ज्यो अंगारे;
जाग्रत जीवन की आभा में मिल प्राणो के भय से
महा-शून्य के नील—निलय मे हुये शेष कुछ लय-से

वसुन्धरा के धूलिकणो मे द्योतित कुछ पथगामी
हुये मानवों औ मुनियो के चरणों के चिर कामी;
कुछ करुणा के ओस बिन्दु बन, संसृति के दृग-दल-से
नव-जीवन के राज कमल मे चमके मुक्ता फल-से।

काया-कल्प समान विश्व के देव—विजय बन आई,
विजक-कीर्ति-सी नव—जीवन की श्री त्रिभुवन में छाई;
आत्मा के अलक्ष्य गह्वर से उमड़ उत्स जीवन के
सरसित करने लगे सुमन नव संसृति के उपवन के।

विजय पर्व मे ही जीवन का गौरव सबने जाना,
निर्भयता का मुक्त तेज था प्रथम बार पहचाना;
वे विलास के स्वप्न, भंग सब होते ज्ञानोदय में,
आत्मा का आलोक प्रकाशित हुआ स्वर्ग की जय में।

आज शची के दिव्य दृगों मे जगी अपरिचित आभा,
अंगो में खिल उठा अचानक किन कुसुमों का गाभा!
किस गरिमा के सौम्य शील से आज अखण्ड कुमारी
दीपित हुई, वधू पर होती स्नेह सहित बलिहारी।

देखा आज सहस्र दृगों से मर्म नित्य जीवन का
देवराज ने, तत्व-ज्ञान से मिटा कलुष तन-मन का,
ज्ञान, कला, श्री, शक्ति, शील के नैसर्गिक अन्वय में
हुआ स्वर्ग का धर्म प्रमाणित सहसा आज विजय में।

आज स्वर्ग की युवरानी का मान देख अनजाना,
अप्सरियों ने मोल कला औ यौवन का पहचाना;
सेनानी के महा मान में औ जयन्त की जय में
देव-कुमारों को नवीन नय विदित हुई विस्मय में।

जब जयन्त ने सेनानी का सत्य स्वरूप निहारा,
शक्ति, शौर्य, जय, परिणय, पद का विगत हुआ भ्रम सारा;
हो जागरित नवीन उषा में जीवन के परिणय की,
करने लगा जयन्त स्वर्ग में प्राण प्रतिष्ठा जय की।

रजनी के अन्तिम प्रहरों में नियम शक्ति-साधन का
बना नित्य क्रम, रति-स्वप्नों में भूले चिर यौवन का;
जिस में खिलती थी यौवन के राग-रंग की खेला,
हुई ज्ञान-तप से आलोकित वह सूर्योदय वेला।

नहीं कला यौवन-विलास का साधन है जीवन में,
हुआ अपूर्व रहस्य सुरों के उद्घाटित नव मन में;
श्रीशिव का आराधन बनता लक्ष्य कला की नय का,
नृत्य बना क्रम लास्य-समन्वित ताण्डव की ध्रुव-लय का,

गूँज उठी किस नूतन ध्वनि में अप्सरियों की वीणा,
किन्नरियों के स्वर में फूटी गीता कौन नवीना;
जीवन के स्रोतों में उमड़ा निर्मल नूतन जल-सा,
खिलता देवों के मानस में चिर कैलास कमल-सा।

होकर सरस पल्लवित होते उजड़े-से नन्दन के
कल्प वृक्ष औ कल्पलतायें ले उपहार सुमन के;
उदित हुई नूतन श्री सुषमा विकसित कुसुम-दलों मे,
फला अमृत बन चिर जीवन का रस अभिजात फलो मे।

नित्य अतृप्त दुरन्त भोग मे लीन अमर यौवन के
अवगत हुये अपूर्व मर्म से सुर सौन्दर्य-सृजन के,
ध्रुव-सा पर्यवसान रहा जो भू के आकर्षण का,
वही स्वर्ग आरम्भ बन रहा श्रेय-सर्ग नूतन का।

अवनी पर आलोकमयी उस नये स्वर्ग की छाया
बनती निर्भय नये कल्प की रूप-गर्विणी जाया;
जीवन की चंचल सरिता के वे सुकुमार बबूले
उसकी रचना के प्रसून बन राग-सुरभि से फूले।

हुये धर्म के मार्ग प्रकाशित पूत प्रशस्त गमन को,
निर्भय ऋषि-मुनि चले सत्य की ऊषा के वन्दन को;
कर्मों के कण्टक-मग मे भी खिले प्रसून प्रणय के,
हुये प्रतिष्ठित जीवन-पथ में नियम चिरन्तन नय के।

उत्पातों से आतंकित जो रहते आश्रम वन के,
मुक्त मार्ग हो गये उन्हीं मे सकल मुक्ति-साधन के;
अचल कूर्म-से जो अन्तर्मुख विमुख हो चले गति से,
पुण्य तीर्थ वे बने प्रगतिमय जीवन की परिणति से।

होकर तम से भीत मूढ़वत् नयन बन्द कर अपने,
रहे देखते जो रजनी में अगणित भीषण सपने,
प्रात किरण ने वे विस्मित जन सहसा आज जगाये,
पलकों में अधखुली मुक्ति के ज्योतिर्लोक बसाये।

तमोनिशा मे मन्द कुटी की दीपशिखा-सी छिपतीं,
मुनि-कन्यायें मुक्त प्रभा मे, आज उषा-सी दिपतीं;
मणियो-सी जिनको गुदड़ी मे ऋषि-मुनि रहे छिपाये,
उनके पुण्य रूप ने वन के शुचि सौभाग्य जगाये ।

जिनको धूमिल संध्या के ही किसी अनिश्चित क्षण मे,
मुनि कन्यायें जल देतीं थीं आशंकित भी मन मे,
रहे अल्प जल से भी जीवित जो शुचि स्नेह-सहारे,
आश्रम के वे मुरझाये तरु हरे हो उठे सारे ।

स्नेहमयी सखियों-सी जिनको वे न विपद में भूलीं,
वे आश्रम की लतिकाये भी मुक्त मोद से फूलीं;
डरते डरते आते थे जो छिपकर भी आँगन में,
वे मुनियो के मृग-शिशु करते निर्भय क्रीड़ा वन मे ।

वधिकों के आतंक-जाल से भीत साँझ से सोये,
नीड़ों मे छिप, नीरवता मे मानों मृत-से खोये,
जाग उठे खग-वृन्द मुक्ति के भव्य प्रसन्न प्रहर मे,
जीवन का संगीत गा उठे निर्भय नूतन स्वर मे ।

भय-से विजड़ित महाशिशिर में प्रहत-कण्ठ-सी दीना,
तरुओ के किस निभृत कुंज में चरम लाज-सी लीना,
नव वसन्त की मुक्त उषा में मुग्ध कोकिला बोली;
अयुत युगों के बाद स्वर्ग की स्वर-निधि सहसा खोली ।

धूमिल संध्या में भी उठते धूम-गन्ध आश्रम के,
जो बनते थे लक्ष्य अलक्षित असुरो के विक्रम के,
यज्ञ-शिखा के अग्रदूत वे, दृग-अंजन, मुद मन के,
करते ज्योतिर्लोक जागरित अस्तंगत जीवन के ।

जहाँ धर्म का शंखनाद भी बन जाता रणभेरी,
मृगछाला को देख टूटते सहसा असुर-अहेरी,
प्लुत, गम्भीर, मन्द्र मन्त्रो का वहाँ गूँजता स्वर था,
संध्या और उषा-सा पूजित गैरिक का अम्बर था ।

जहाँ भाल का तिलक मृत्यु का अविदित आमन्त्रण था,
और यज्ञ-उपवीत काल का कण्ठागत बन्धन था;
मलय-तिलक से वहाँ धर्म का नित अभिनन्दन होता,
अभय अर्घ्य से वहाँ सूर्य का विधिवत् वन्दन होता ।

जहाँ धर्म का नाम पाप बन शीघ्र मृत्यु मे फलता,
जहाँ तोलती धर्म प्राण से जीवन की दुर्बलता,
जहाँ वीर बलि हुये धर्म पर हँसते हँसते रण मे,
मृत्युंजय बन अमर हुये चिर गौरव पूर्ण मरण मे,

वहाँ धर्म की सहज सुपावन ध्वजा मुक्त फहराती;
वीरों का बलिदान बन गया अमर विश्व की थाती;
धर्म प्राण से, प्राण धर्म से आज परस्पर पलता,
हुई विजय मे आज पराजित जीवन की दुर्बलता ।

जहाँ असुर का नाम मात्र सुन कायर नर छिप जाते,
लाज, मान, धन, कीर्ति भेट कर केवल प्राण बचाते,
निर्भय औ स्वच्छन्द वहां पर शिशु भी आज विचरते,
ललनाओं के चरण अकम्पित धरणी पावन करते ।

वही असूर्यंपश्यायें, जो बन्दी राज-भवन मे
रहीं अदृष्ट योग के फल से, संरक्षित जीवन मे,
मुक्त रूप-आभा से अपनी ज्योतित करतीं जग को;
करतीं छवि का तीर्थ अपरिचित अवनी के प्रति मग को ।

ललनाओं ने जहाँ जला कर चिता हाथ से अपने,
समिध-हव्य-से अर्पित उसमें कर जीवन के सपने,
स्वयं सती के तुल्य देह की भेंट सहर्ष चढ़ाई,
दे सतीत्व पर प्राण धर्म की जग में कीर्ति बढ़ाई;

वहाँ आज वधुओं के कर से अंकित चौक सजीले
ऊषा के कमलों-से होते अश्रु—बिन्दु से गीले;
सतियों ने की भेंट जहाँ पर कण्ठों से ज्वालायें
उनकी बलि पर वहाँ समर्पित होती जय—मालायें।

कन्या कुल के लाज—मान पर जहाँ गाज—सी गिरतीं,
शशिमुख की ज्योत्स्ना से कुल में काल-घटायें घिरतीं,
जहाँ दुधमुहीं कन्याओं को काल—भेंट कर दुख से
करुणा के आँसू से धोई भावी शंका मुख से;

वहाँ पार्वती सम कन्यायें अतुलित गौरव पातीं,
उभय कुलों में देहली—दीपक तुल्य प्रकाश जगातीं,
चन्द्रानन आकाश—दीप—सा संध्या के प्रहरों में
रचता ज्योति—पन्थ जीवन के सागर की लहरों में।

जहाँ केसरी—से वीरों ने ले केसरिया बाना,
माना मानव-धर्म धर्म की वेदी पर बलि जाना,
वहाँ अभय स्वच्छन्द विचरते मानव के मृग—छौने;
जीवन के मुख पर दानव के बनते कृत्य दिठौने।

जहाँ मृत्यु की नीरवता में कान चौंकते भय से,
वहाँ निरन्तर कान गूँजते गर्जित 'जय जय जय' से,
जहाँ सुमन में काल—कीट—सा रहता शोक समाया,
जय—उत्सव का हर्ष—पर्व था वहाँ चतुर्दिक छाया।

हुआ ग्रन्थि-बन्धन जब दिव से सुविजित शोणितपुर का,
दूर हुआ आतंक युगों का सुर-मुनियों के उर का;
उत्पातों की क्रान्ति गरजती जहाँ प्रलय के घन-सी,
छाई निर्भय शान्ति अखण्डित बन भूमिका सृजन की।

विजय-पर्व की निर्भयता में सोई आत्मा जागी,
जागृति की ऊषा जीवन के वर्णों से अनुरागी;
खिले शान्ति के शुभ्र शरद मे भावो के शतदल-से,
स्फुटित हुई जिनमे जीवन की श्री अज्ञात अतल से!

नये सर्ग की पुण्य प्रभाती बन नव उदय प्रहर मे
गूँज उठे मधुकर-कवियों के गीत नये नव स्वर में,
संगति से छवि के रवि-कर की वर्ण-विभव-मय तूली
संध्या और उषा मे रचती नित रंजित गोधूली।

प्राणमयी बन कर सुन्दरतम प्रतिमायें पाहन की
बनती रूप और सौष्ठव में उपमायें तन—मन की;
श्रेयमयी बन रही साधना चिर सौन्दर्य—सृजन की
बनी रूप-रस मयी कला थी शुचि संस्कृति जीवन की।

युग युग के सूने खँडहर के कितने भाग अभागे
अभय शान्ति के स्निग्ध करों से सहसा सोकर जागे;
जहाँ शृगालो का विराव ही भंग शून्यता करता,
वहाँ सजग जीवन को जगमग पर्व प्राण से भरता।

तारक का संहार बन गया नव जीवन का वर-सा,
भय से भीषण भुवन, सृजन के नव स्वप्नों से सरसा;
शोणितपुर की जय लक्ष्मी ने बन जयन्त की रानी,
नये स्वर्ग की रची भूमिका भावमयी कल्याणी।

स्वप्नो के अम्बर मे कितने शुभ संकल्प सुमन—से
खिलते आशा की द्राभा मे ज्योतित जीवन कण—से,
इन्द्र धनुष के बहु वर्णों मे संध्याओ मे दृग-की,
जीवन के मरु मे मरीचिका बन मनहर मन-मृग की।

नयन-निशा मे कल्प-कुसुम-की खिलती बहु फुलवारी,
पुण्य पूर्णिमा मे प्राणो की जगती शुचि उजियारी;
उठता जीवन-ज्वार हृदय के उद्वेलित सागर मे,
जागृति का संगीत गूँजता लहरो के प्लुत स्वर मे।

अम्बर के इस स्वप्न-स्वर्ग को मनोमोहिनी माया
होती अवनी पर प्रतिविम्बित बन ज्योतिर्मय छाया;
बहु कामना-कुसुम-से ज्योतित तारे अम्बरतल के
खिलते सौरभ मय प्रसून बन धरती के अंचल के।

भय के कर्दम मे कृमियों-सी कितनी दुर्बलताये
नर-जीवन मे बढ़ी, प्राण की बन कर मृदु ममताये,
दीप्त अभय के प्रखर तेज मे भस्म हुईं वे सारी;
मानवता ने पूर्ण निरामय आत्मा प्रथम निहारी।

काव्य, कला, संगीत, धर्म का लेकर सम्बल मन में,
निर्भयता की शक्ति अमित ले निज निर्बन्ध चरण में,
जीवन के कैलास कूट के पुण्य तीर्थ के मग में,
उत्साही नर निकल पड़े भर नई स्फूर्ति रग रग मे।

खँडहर पूर्ण हुये जीवन से स्वस्थ धरा के व्रण-से,
दूर हुये नूतन मार्गो से क्षोभ नरो के मन से,
असुरो का विद्वेष मिट गया उर से शान्त नरों के,
निर्भयता मे अमल हुये मन मनुजों औ अमरो के!

दबे प्रकृति के विवश भार से, त्रास अनिर्वच सहते,
आत्मयोग-कामी मानव भी जल-से नीचे बहते;
शक्ति-विजय बन गई अर्गला प्रकृत अधोमुख गति की,
अभय भूमिका है आत्मा के साधन की परिणति की।

भय के दीर्घ ताप से शोषित हुये स्रोत जीवन के;
हुये स्वार्थ से आविल, पंकिल, शिथिल स्नेह-स्रव मन के;
सहज प्रवाहित हुये शान्ति के स्रोत अपूर्व अभय मे,
स्वच्छ नवीन प्रगति मे गूँजे गीत नवीन उदय मे।

पुण्य प्रकृति के सुदृढ़ पीठ पर, शुचि संस्कार प्रकृति का
बना सफल आरम्भ मनुज की नव अध्यात्म प्रगति का;
आत्म-साधना के प्रतिबन्धक असुरों को संगर मे,
निर्जित कर बढ़ चले देव-नर निर्भय योग-डगर मे।

अनाचार की आशंका से आतंकित कुल-नारी
रही कल्पनाओं से भय की कुण्ठित सदा बिचारी,
पूर्ण अभय की प्रथम उषा के स्वर्गिक मुक्त पवन से
खिलते सौरभ का प्रसार कर उसके भाव सुमन-से।

जिनको मातायें करतीं थीं कभी न अलग हृदय से
खिल न सके जो दबे कुसुम-से आतंकों के भय से,
कर स्वच्छन्द विहार, खेल वे खग-से मुक्त पवन में,
पाते पूर्ण विकास चतुर्दिक अनियन्त्रित जीवन में।

आडम्बर के इन्द्रधनुष से सज्जित वर्षा-घन-सा
रहा सदा, अध्यात्म स्वच्छ वह खिलता मुक्त गगन-सा;
जिसके ज्योतिर्दीप बने थे कुछ खद्योत बिचारे,
करते उसमें दिव्य आरती अगणित रवि, शशि, तारे।

छाई थी सर्वत्र शान्ति औ निर्भयता त्रिभुवन में,
नई चेतना में निलीन थे सभी नवीन सृजन में,
पुराचीन का भी विधान सब करते अभिनव छवि से,
स्वर्ग और भूतल के वासी विदित हुये सब कवि-से।

खिले कल्पना के प्रसून नव फिर उजड़े नन्दन में,
मर्म भावना का मधु सौरभ बनता प्राण पवन में,
शक्ति-ज्ञान-सौन्दर्य-योग से अवनी के अधिवासी,
बना रहे थे देवों को भी भूतल का अभिलाषी।

अभय और आनन्द पर्व में खेद भूत का खोया,
नई कल्पनाओं ने मन में भव्य भविष्य सँजोया;
वर्तमान में सभी निरत थे निर्माणों में अपने,
जीवन में चरितार्थ कर रहे मन के सुन्दर सपने।

वन-उपवन में बालक निर्भय औ स्वच्छन्द विचरते,
कन्याओं के शील-मान थे गृह गौरव से भरते,
भूल भूत के अनय अभय में पूर्ण प्रतिष्ठित नारी,
करती सुषमा-शील-स्नेह से धन्य धरित्री सारी।

तारक का संहार भयंकर शोणितपुर के रण में,
ज्ञान-शक्ति-बल की कृतार्थता मान, समाहित मन में,
हर्ष, गर्व औ निर्भयता में देव और नर फूले,
विजय-दर्प में सब तारक के तनयों को भी भूले।

थे अजेय पर हुये पराजित सेनानी के आगे,
लेकर अपने प्राण पिता को छोड़, युद्ध से भागे,
केवल बल का दर्प जिन्होंने था जीवन में जाना,
विवश पलायन का दुर्गम पथ, प्रथम बार पहचाना।

होता है बल पूर्ण अन्ध ही यद्यपि सदा अनय में,
दिव्य दृष्टि मिल जाती उसको पर प्राणों के भय मे,
बल-सी ही अजेय बन जाती दनुजों की दुर्बलता,
असुरो का आचार सदा ही नर-देवो को छलता ।

देवों के उदार दृग-पथ से दूर, दूर संगर से,
शोणितपुर से, दूर नरों के पल्ली, ग्राम, नगर से,
तारक के सुत छिपे न जाने किस अज्ञात निलय में,
किया न उनका ध्यान सुरो ने होकर मग्न विजय मे ।

छोड़ भूमि के प्रान्त एक ने सरणि शिखर की पाली,
कर अविराम प्रयत्न शीर्ष पर पहुँचा विद्युन्माली;
वीर पराजित भी, दुर्गम पथ अन्त पार कर बल से,
करने लगा अखण्ड कठिन तप तन्मय अन्तस्तल से ।

तारकाक्ष ने सुगम जानकर समुद्र ग्रहण की घाटी,
सहज अधोगति दृग-जीवन की है निसर्ग परिपाटी;
किस पाताल लोक के अविदित गहन गर्भ के पुर मे,
पाकर शरण हुआ रत तप में, ले दृढ़ निष्ठा उर में ।

पर कोमल कमलाक्ष वीर को असमंजस के क्षण में,
शिखर और पाताल उभय की द्विधा रही मृदु मन में,
साहस कर कान्तार गहन के विजन लोक में आया,
कठिन तपस्या में कोमल तन औ मन पूर्ण लगाया ।

होता असुर प्रकृति का सेवक भोगी और विलासी,
तन-मन उसका अर्थ-काम का सदा मुक्त अभ्यासी;
आपद, युद्ध, इष्ट—साधन में तपोलीन हो त्यागी,
बन जाता पर वह मुनियों से बढ़कर यती विरागी ।

प्राण, भोग, ऐश्वर्य मात्र हैं अखिल अभीष्ट असुर के,
इनमे ही अन्वित हैं उसके काम प्रकृति-रत उर के;
सकल शक्तियाँ सिद्धि-सरणि हैं बस इनके साधन की
तन की, मन की मिथुन प्रेरणा बनती विधि जीवन की।

पलकर प्रकृति-भोग पर उसका प्राकृत बल है बढ़ता,
हो ऐश्वर्य प्रचण्ड तेज से उसका रवि-सा चढ़ता;
अनवरोध ऐश्वर्य दान कर, देवो की दुर्बलता,
देती विजय दर्प, जिसमे है अनय निरन्तर पलता।

प्राण एक ऐश्वर्य भोग का प्रिय आधार अकेला,
होती बस संध्या दानव की प्राण-हानि की वेला;
तजकर सब ऐश्वर्य-भोग वह प्राणो के संकट मे,
लेता पहले शरण त्राण-हित अन्धकार के पट मे।

होती है जब शान्ति सुप्ति की व्याप्त समस्त दिशा मे,
करता है तब वह कठोर तप नित निर्विघ्न निशा में,
भोग और ऐश्वर्य-प्राप्ति ही इष्ट असुर के रहते,
इनके ही हित घोर तपस्वी वन के सकट सहते।

नही प्रकृत ऐश्वर्य-भोग भी अनायास ही मिलते,
नही प्रकृति-फल व्योम-कुसुम-से मात्र काम से खिलते,
होते हैं ऐश्वर्य प्रकृति के संचित विधिवत् क्रम से,
भोग फलित होता है दुर्लभ फल-सा जीवन-श्रम से।

होते हैं यद्यपि स्वभाव से असुर अन्ततः भोगी,
पर ऐश्वर्य-साधना मे वे बन जाते तपयोगी;
योगी के ही तुल्य ध्यान-तप करते प्रिय साधन मे,
सहते कितने क्लेश अविचलित तपोलीन तन-मन मे।

आत्मा का प्रकाश होता फल आत्मयोग-साधन का,
होता जिससे मुक्त स्नेह का स्रोत लोक-जीवन का;
स्नेह-दीप बन कर जीवन मे साधु ज्योति बिखराता,
उसका अल्प कलुष भी दृग का अंजन शुभ बन जाता।

किन्तु असुर के प्रकृति-योग का फल अपने हित होता,
तप के फल से अहंकार ही उसका वर्द्धित होता;
बनता है ऐश्वर्य भोग का साधन केवल उसका,
होता जग के लिये ताप ही तपोयोग—फल उसका।

अत. साधु का आत्म योग है मंगल वर जगती का,
सदा लोक-कल्याण-कर्म ही बनता धर्म कृती का;
आत्मा का प्रकाश करता है पन्थ प्रशस्त जनो का,
उसका स्नेह-प्रदीप जगाता दीप अनेक मनो का।

किन्तु असुर का प्रकृति-योग है शाप धरा का बनता,
उसका वह ऐश्वर्य—भोग ही पाप धरा का बनता;
अनाचार बन अहंकार के इन्द्रायण बहु फलते,
चलते दानव—चरण धरा पर कितने कुसुम कुचलते।

किन्तु प्रकृति तो प्रकृति-योग से ही नित प्रीणित होती,
भोगी के ही लिये रमण के बहु उपकरण सँजोती;
बना भोग को ही विष, उसको यदपि अन्त मे छलती,
रक्त-बीज से प्रकृति-योग की पर परम्परा चलती।

प्राकृत तप ही सर्ग-सरणि मे विजय-तन्त्र बन जाता,
प्रकृति-योग से ही असुरो के होता तुष्ट विधाता;
हो प्रसन्न तप से समृद्धि का उन्हे मुक्त वर देता,
आत्मयोग से वही ऋद्धि की शक्ति सहज हर लेता।

सर्ग-नियम से ही धाता के असुर फूलते फलते,
प्रकृति—ऋद्धि में ही समृद्ध हो अखिल विश्व को छलते;
आत्मा का अमृतत्व प्रकृति की नई ऋद्धि में पाते,
शासन औ ऐश्वर्य युगों तक पर उन पर बलि जाते।

केवल आत्म-योग बन जाता सुजनों की दुर्बलता,
उस दुर्बलता से असुरों का इष्ट अलक्षित पलता;
भूल प्रकृति को आत्मयोग रत सुर-नर मुनि बेचारे,
प्रकृति योग में रत असुरों से कितनी बार न हारे।

पाकर एक बार जीवन में अविदित दुर्लभ जय को,
भूले देव समस्त भूत के त्रास, नाश, औ भय को;
एक बार निश्चिन्त अभय में होकर मानव भोले,
स्वस्थ हुये, चिर-सन्तापों के धोकर करुण फफोले।

अत्याचारों-सा अतीत के भावी का भय भूला,
वर्तमान का नन्दन उनका फिर वसन्त में फूला,
सौरभ औ संगीत उसी का बनकर मोहन माया
सीमा औ विश्राम-क्षितिज बन दर्शन-पथ में छाया।

हुये देव रत पुन शान्ति के नूतन स्वर्ग-सृजन में,
खिलने लगे नये भावों के कल्प-कुसुम नन्दन में;
शान्ति-पूर्ण नव—निर्माणों से धरा नवीन नरों की
स्पर्धा करने लगी स्वर्ग की रचना में अमरों की।

शैल शिखर, कान्तार, अतल की उस दुर्गम घाटी में
तारक के सुत लगे खोजने जीवन की माटी में
स्वर्ण, रजत, आयस औ पारस कठिन साधना द्वारा
योग सिद्धि के हेतु त्यागकर सुख, भय, विस्मय सारा।

तारक पुत्रों का कठोर तप देख प्रसन्न विधाता
हुये, न जग मे प्रकृति-योग का तप भी निष्फल जाता,
हो प्रसन्न ब्रह्मा ने उनको दिया वचन प्रिय वर का
बोले "हों अवध्य, हमको हो पद नित प्राप्त अमर का।"

ब्रह्मा बोले "नहीं अमरता प्राप्य सर्ग के क्रम मे,
नहीं अमरता-कामी रहते प्रकृति-योग के भ्रम मे;
माँगो तुम वर और दूसरा; तप हो सफल तुम्हारा,
प्राकृत फल ही मिल सकता है प्रकृति-योग के द्वारा।"

"यदि अमरत्व नहीं सम्भव है प्रकृति-योग के द्वारा,
एक सहस्र वर्ष तक जीवन तो ध्रुव रहे हमारा,
तीन पुरो मे समारूढ़ हो, हम तीनों त्रिभुवन में
बल, वैभव, धन, धर्म, भोग से हों प्रसिद्ध शासन मे।"

"एवमस्तु" कह कर ब्रह्मा ने मय को तीन पुरो की,
निर्मिति की आज्ञा दे, पूरी इच्छा की असुरो की;
स्वर्ण, रजत औ आयस के पुर तीन महा त्रिभुवन मे
धाता के निदेश से दानव तन्मय हुआ सृजन मे।

अन्तरिक्ष मे एक रजतपुर उसने प्रथम बनाया,
राका का आलोक मूर्त हो मानों नभ मे छाया;
बना सौम्य कमलाक्ष वीर को शासक राजतपुर का
किया बन्धुओ ने निज उज्ज्वल स्नेह प्रमाणित उर का।

भूमिलोक मे अद्वितीय पुर फिर द्वितीय आयस का,
रचा, मूर्त्त हो आया मानों भूपर नभ पावस का,
युगल बन्धुओ के अनुनय से उसका विद्युन्माली,
शासक बना अपूर्व दर्प से पूर्ण पराक्रमशाली।

रचा अन्त में कंचन का पुर दिव में मय दानव ने,
जैसा देखा नहीं कदाचित् देव और मानव ने;
युगल बन्धुओं की अनुमति से तारकाक्ष गुणशाली
उसका शासक बना ग्रहणकर वैभवपूर्ण प्रणाली ।

एक दूसरे की सम्मति से तीनो पुत्र असुर के
शासन बनकर तीन लोक मे निर्मित भव्य त्रिपुर के,
होकर लीन अखण्ड, दर्प से दृप्त, सौख्य-शासन में,
हुये प्रतिष्ठित बल वैभव में पुनः अखिल त्रिभुवन में।

असित व्योम-सा घेर धरा को दृढ़ आयसपुर छाया,
अन्तरिक्ष में राजत-पुर की फैली ज्योत्स्ना-माया;
खिला हैम-पुर सुन्दर दिव में स्वर्गिक स्वर्ण कमल-सा,
फैला उसका विभव विश्व में मधुर दिव्य परिमल-सा।

बने अभेद्य कोट तीनो के स्वर्ण, रजत, आयस के,
उनके भेदन, भंग, नाश थे नहीं किसी के बस के,
असुर-सुतों की भय-प्रसूत भी प्रबल धर्म की निष्ठा,
बनी विधाता के वर से थी उनकी प्रबल प्रतिष्ठा।

आयस पुर का लौह कोट था बना भूमि की कारा,
विद्युन्माली का शासन था अचल खड्ग के द्वारा,
नहीं किसी का साहस होता ऊपर नयन उठाये
रहते सब श्रम-सेवा में रत अपने शीश झुकाये।

शुभ्र रजतपुर की राका थी दृग का रंजन करती,
अल्प कलंक-कालिमा भी थी दृग में अंजन भरती,
हिम-सा उज्ज्वल ज्ञान हृदय में भरता था शीतलता,
ज्ञान-रश्मि का सूत्र-जाल था सब शंकायें छलता।

कांचनपुर कमनीय सभी के बन जीवन का सपना,
किस मधुमाया से लगता था सबको केवल अपना;
उसकी हेमिल प्रभा सभी की दृष्टि चमत्कृत करती,
चिर अ-प्राप्य की प्रीति सभी में अद्भुत ममता भरती ।

बल ही रहा मूल दानव का रक्षित आयसपुर में,
नहीं ज्ञान के फूल और फल लग सकते अंकुर मे,
आत्मा के रस से पोषित हो, कल्प वृक्ष में मन के
जीवन की धरती में खिलते फल-प्रसून साधन के ।

बल में ही आरूढ़ भूमि पर अग्रज विद्युन्माली
बना धरा का पालक—शासक बल औ विक्रमशाली,
ईश्वर का प्रतिनिधि बन भू पर भय से पूजित होता,
धर्म-कला-कोकिल के स्वर में गौरव कूजित होता ।

कह कनिष्ठ कमलाक्ष वीर को लघु अभिजात प्रणय में
अन्तरिक्ष का रजत-ज्ञानपुर दिया दुर्ग-सा भय मे,
कुहरे के नीहार-लोक-सा अन्तरिक्ष मे छाया,
बना धरा का अवगुण्ठन औ अपनी मोहन माया ।

तारकाक्ष मध्यस्थ कुशल ने कांचनपुर का सपना,
बना लिया सहजाधिकार निज ऊर्ध्वलोक में अपना;
उस सौरभ के स्वर्ण-कमल पर लक्ष्मी छवि से खिलती
जो त्रिलोक मे अलभ, वस्तु वह यहाँ सहज ही मिलती ।

इस प्रकार बल, ज्ञान, विभव में समारूढ़ वे पुर थे,
अपनी ही विभूति से पुलकित तीनों के लघु उर थे;
तीनों में आभासित होती त्रिगुण प्रकृति की माया,
भेदों का उत्कर्ष प्रलय का आमन्त्रण बन आया ।

सर्ग २०

राजतपुर वर्णन

घोर युद्ध में वीर पिता का सुन नृशंस संहार,
और दिगन्तों में देवों का सुन कर जय जय कार,
भय कनिष्ठ कमलाक्ष वीर के उर में उठा पुकार,
आँखों मे आँसू बन आया उसका द्रवित दुलार।

संध्या के धूमिल दिगन्त-सा उसके चारों ओर
दृग-पथ का अवरोध सहज बन घिर आया तम घोर,
होकर मानो मूर्त्त वही था बना सघन कान्तार,
कमल नयन से जीवन का पथ उसमें रहा निहार।

क्षितिज-चक्र-सा करुणा-मीलित दृग में ज्योतिष्मान
झलक झलक उठता था तम में अन्तर्हित भी ज्ञान,
उसकी ही खद्योत प्रभा में जीवन का मृदु मर्म,
आभासित होता अन्तर मे बनकर नूतन धर्म।

किंचित् विगलित होता तम-सा उसका वह गुरु शोक,
अश्रु बिन्दु-से दृग में दीपित होते करुणा-लोक,
अन्तरिक्ष के वारि-बिन्दु-से निराधार औ दीन
तम मे औ अवनी में होते ओस-बिन्दु-से लीन।

माता, पिता, बन्धु, स्वजनों का संचित पूर्व दुलार
उमड़ा अन्तर में सहसा बन करुणामय उद्‌गार;
हुआ शुक्र-सा उदित दृगों की द्राभा में द्युतिमान,
अग्रदूत बन लाया जग में जो आलोक-विहान,

हो गुरु तप से दीप्त और पा यथाकाम विस्तार
सूर्योदय बन लगा विश्व में करने प्रभा-प्रसार;
उसमें ही विद्युन्माली ने पाया पैतृक तेज,
तारकाक्ष ने कमल-रेणु सा पाया स्वर्ण सहेज;

जीवन में अवलोक-ज्ञान का प्रथम अपूर्व प्रभात,
खिले सहज कमलाक्ष वीर के नयनों के जल-जात;
विगलित हुआ सघन कानन के तम-सा मन का शोक,
उतरे छिद्रों से अवनी पर कितने ज्योतिर्लोक।

दूर हुआ घन अन्धकार-सा मन का विपुल विषाद,
वन की छाया मे भी खिलता मन में ज्योति-प्रसाद;
श्वासों मे हो उठी प्रवाहित स्वच्छ सुगन्ध समीर,
अन्तर्नाद सदृश कानन में गूँज उठे वानीर।

वृक्ष-कोटरों के नीड़ों में आभा से निर्भीत
ज्योतिपर्व मे विहग गा उठे पुण्य जागरण-गीत;
ऊषा के अर्चन-से सुन्दर स्वर-विभूति-से गान
ध्वनित हुये श्रुति में जीवन के वन संगीत महान।

दिशि-दल में अविचल वन्दी-से तम के अगणित पुंज
गुंजित करते भ्रमर-दलों-से कमलों के वन-कुंज,
ज्योति किरण आई ऊषा में बन विमुक्ति-वरदान.
उड़े पवन में तम-भृंगों के सहसा जाग्रत गान।

जगे उषा के स्वर्ण-क्षितिज की वेदी पर बहु होम,
ऊर्ध्व-शिखा से पन्थ स्वर्ग का रचते ज्योतिष्टोम,
अर्पित हुये हव्य-से उन में नभ के सब नक्षत्र,
खुला सर्ग के आदि पर्व-सा नये कल्प का सत्र।

बना अकल्प्य पुण्य जीवन का मरुजल तुल्य अपूर्व
हुआ कृतार्थ उदय की उज्ज्वल आशा से ही पूर्व;
हुआ चतुर्मुख ज्योति-शब्द का चारों ओर प्रसार
तमः—पूर्ण नीरव कानन में खुले ज्योति-स्वर-द्वार।

कानन की निस्पन्द शान्ति मे जगा नया संसार,
मन्त्रपूत हो हुये प्रवर्तित जीवन के व्यापार;
श्रेय-पूर्ण कर्मों में अन्वित था अपूर्व आनन्द
सम पद-गति-स्वर से संगत थे जीवन के सब छन्द।

श्रेय-शान्ति के दिव्य धर्म से मानों तारक-पुत्र
करता तर्पण प्रेत पिता का मुक्ति-निमित्त अमुत्र,
करुणा और भीति मे जाग्रत ज्ञान-तत्व का बोध,
अत्याचारों का पितरों के बना पुण्य परिशोध।

अभय शान्ति के मुक्त ज्ञान पर हुआ प्रतिष्ठित धर्म,
मंगल के आनन्द पर्व थे जीवन के सब कर्म;
यही सत्व का प्रकृत स्वर्ग था अन्तरिक्ष-आरूढ़,
जीवन के रहस्य उद्‌घाटित जिसमे हुये निगूढ़।

तप के बल से धर्म-स्वर्ग का बन पूजित अधिराज
लगा वीर कमलाक्ष विरचने श्रद्धा-शील समाज,
जिसमे धर्म-ज्ञान जीवन के बन कर अर्थ समस्त,
करते थे विश्वास-तीर्थ का दुर्गम पन्थ प्रशस्त।

पर्वत के निर्मल निर्झर-से करते जीवन दान,
देते जीवो को करुणा से पावन उज्ज्वल ज्ञान,
जीवन, जाग्रति, स्नेह, धर्म,नय, कर्म-ज्ञान की मूर्ति
सूर्य तुल्य आचार्य लोक की बनते जीवन-स्फूर्ति।

हुआ सहस्रकरों से ज्योतित उनका ज्ञान उदार,
बना प्रकृति से विकृत जनों का वह पुनीत संस्कार,
शक्ति और श्री को अन्तर्हित कर वह केवल ज्ञान,
बना नवीन शान्ति-संस्कृति का अद्‌भुत श्रेय-विधान।

ज्योतिपूर सी सरिताओं में कर नित पावन स्नान,
करते थे मुनि निर्भय तट पर आत्मा का ध्रुव ध्यान,
पुण्य आश्रमो मे होते थे तत्वों के आख्यान,
तत्वज्ञान को रसमय करते भक्ति-प्रेम के गान ।

अभय शान्ति में आशंकायें दूर हुईं सब दीन,
वीतराग होकर सब ऋषि मुनि हुये योग मे लीन;
वन्य आश्रमों मे जीवन की खिली विभूति महान,
वे जीवन-सागर के तट के दीप बने द्युतिमान ।

बनी होम की पावन रज ही अनुपम विश्व-विभूति,
उदित हुई अविचल समाधि मे अन्तर्तम अनुभूति;
वीतराग में खिला अपरिमित आत्मा का अनुराग,
अन्तरिक्ष के संकल्पों में जगे धरा के भाग ।

मुनियों के चरणों की रज से अपने उन्नत भाल
पावन कर होते कृतार्थ थे तेजस्वी भूपाल;
मुनियों का मंगल-निदेश था शासन की ध्रुव नीति,
राजाओं का धर्म ज्ञान से बना प्रजा की प्रीति ।

अन्तर्हित कर अर्थ-काम को बना ज्ञान ही मोक्ष,
हुये धर्म में ही जीवन के अखिल इष्ट अपरोक्ष
श्रद्धा औ विश्वास लोक के बन पथ के दृग-दीप,
लगे दिखाने सब जीवन के लक्ष्य अलक्ष्य समीप ।

करुणा के संदिग्ध पलों में असुर पुत्र का मोह
बना सरल मानव का अविदित शिव जीवन से द्रोह,
त्याग शक्ति-श्री को जीवन की केवल पावन ज्ञान,
संस्कृति का आधार-मूल भी बनता विकृति-विधान ।

वही अर्थ औ काम धर्म मे जिनका विहित विराग,
बने धर्म-गुरु औ देवो के अतिरंजित अनुराग;
सत्ता, शासन, शक्ति (ज्ञान से पाते जो विश्वास)
ज्ञान-धर्म को दुर्बलता मे सहज बनाते दास।

धर्म, ज्ञान, नय की संरक्षक बनी नृपो की शक्ति;
बनी ज्ञानियो पर अनुकम्पा उनकी पालक भक्ति;
मुनियो का सन्तोष-गर्व था बना मात्र बहुमान,
बना ज्ञान की दुर्बलता का प्रश्रय मूल प्रमाण।

ज्ञान शक्ति को त्याग बन गया स्वयं दिव्य भी दीन,
पूजित भी वह हुआ शक्ति के स्तम्भो के आधीन,
शस्त्र छोड़ कर दीन अहं का बना शाप उपचार,
आत्मा का विक्षोभ क्रोध मे हुआ सहज साकार।

दुर्बल मन का विवश तन्त्र है सदा वचन का क्रोध,
शाप क्षुब्ध आत्मा की क्षति का है प्राकृत प्रतिशोध;
भक्तों के ऊपर ही बनता वह अमोघ अभिचार,
दुष्ट अनाचारी का उससे हुआ कभी प्रतिकार।

मुनियों के आश्रम मे होते जब अनर्थ उत्पात,
करते यज्ञ धर्म मे जब जब बाधायें दनुजात,
राजसभा मे करते थे मुनि जाकर आर्त्त पुकार,
बनी शक्ति की शरण ज्ञान की रक्षा का उपचार।

देख ज्ञान की सहज दीनता हुआ शक्ति को ज्ञान,
बल को बनकर कवच ज्ञान का हुआ दर्प अभिमान,
रक्षित बन कर ज्ञान शक्ति का बना स्वयं ही दास,
आत्मा मे विश्वास बन गया आत्मा का उपहास।

बना शक्ति के सामन्तो को मुनियो का सत्कार
दर्प गर्व का अलंकार-सा सुन्दर शिष्टाचार,
दीनो का सन्तोष बन गया रक्षित दुर्बल ज्ञान,
मोल त्याग औ तप का बनता केवल मिथ्या मान।

धर्म, ज्ञान, तप, त्याग आदि का गौरव औ सत्कार,
देख शक्ति के सामन्तो के द्वारा अधिक उदार,
हुआ अर्थ को भी उनके प्रति जाग्रत कुछ सम्मान,
हुई अर्थ की भक्ति शीघ्र ही प्रकटित बनकर दान।

धरती के कुबेर मुनियो के श्री चरणो की धूल,
मस्तक पर धारण करते थे निज विभूतियाँ भूल,
श्रम से संचित श्रीमानो के कोष धर्म के हेतु
बन जाते थे अनायास ही पुण्य-स्वर्ग के सेतु।

जो अनर्थ का मूल सर्वथा वही अकिंचन अर्थ,
दान-व्याज से धर्म-ज्ञान के क्रय मे हुआ समर्थ,
दिखा विभव के राजमार्ग का सुन्दर स्वर्णिम द्वार,
किया धर्म औ ज्ञान उभय मे माया का संचार।

हुई ज्ञान की दृष्टि चमत्कृत देख विभूति अपार,
हुआ अकिंचन धर्म देखकर अर्थ-प्रभा-विस्तार,
धर्म, ज्ञान, तप सभी अर्थ के सम्मुख झोली खोल,
बिके दान की गुरु महिमा के हाथ स्वयं अनमोल।

अमित अनर्थो से अर्जित औ संचित सुन्दर द्रव्य,
आया बनकर धर्म यज्ञ का शुचि संदीपन हव्य,
बही धर्म की दीन कुटी के तीर अर्थ की धार,
बहा ले गई कण कण करके सकल धर्म का सार।

किये रत्न, मणि औ सुवर्ण से धर्म पीठ निर्माण,
स्थापित उनमे किये गर्व से पत्थर के भगवान,
स्वयं धर्म की वैभवशाली वनकर स्वर्ण समाधि,
धर्म पीठ बन गये लोक के जीवन की चिर व्याधि।

जीवन के रस-प्राण ज्ञान औ धर्म बने व्यापार,
आत्मा का आलोक बना था तन मन का शृंगार,
अन्तर्हित हो उपकरणो मे गई आत्म अनुभूति,
मन को करने लगे विमोहित ये ऐश्वर्य-विभूति ।

बने दुर्ग-से धर्म पीठ पा राजयोग की शक्ति,
बनी राज सेवा की प्रति-कृति परमेश्वर की भक्ति,
स्वर्ण और रत्नो से सज्जित हुई नृपति-सी मूर्ति,
जड़ प्रतिमा करती भक्तो के सब अभाव की पूर्ति।

बने शक्ति के सामन्तो के हेतु, स्वय भगवान
भक्त जनो को पूर्ण दास्य के शिक्षक मौन महान,
मन्दिर का वैभव प्रसाद औ ईश्वर का शृंगार,
श्रीमानो के यश, समृद्धि का बना मौन व्यापार ।

नही धर्म के इन दुर्गों मे रहा धर्म स्वच्छन्द,
द्वार अनेक नियम से खुलते अथवा होते बन्द,
द्वारो पर एकत्र नियम से भक्तो के दल मूढ़,
प्रभुओ की महिमा-मर्यादा करते उर-मे आरूढ़ ।

जिन्हे धर्म औ ज्ञान छोड़कर थी सबमे अनुरक्ति,
वैभव और शक्ति का जिनकी थी विलास वस भक्ति,
काम-भक्त सामन्त, अर्थ के आराधक श्रीमान,
ईश्वर की जीवन-चर्या का करते नियम विधान ।

श्रीमानो औ सामन्तो के क्रीतदास चिर दीन,
पूजा का अधिकार प्राप्त कर बन आचार्य प्रवीण,
करते थे उनकी ही अर्चा मानो प्रभु के व्याज,
प्रभु का मन्त्री मान पूजता उनको सरल समाज ।

अन्तःपुर की ललनाओं के सदृश स्वयं भगवान,
विभु होकर भी निभृत कक्ष में रहते अन्तर्धान,
भक्तो को थी लभ्य कथंचित दुर्लभ झाँकी मात्र,
सह सकते थे नहीं मनुज की छाया प्रभु के गात्र ।

श्रीमानो औ सामन्तों के तुल्य समस्त सुपास,
पूर्ण-काम ईश्वर के बनते चिर नियमित अभ्यास,
द्वारों और पटो से रहते जन नयनो से दूर,
दीनों की पुकार की सीमा थे कुण्डल केयूर ।

करते हैं अनिमेष विश्व का पालन जो दिन रात,
उठते थे मंगलवादन से नृपति तुल्य वे प्रात,
जिनकी आत्मा की विभूति का अखिल विश्व विस्तार
होता उनके जड़ विग्रह का रत्नो से शृंगार ।

अखिल विश्व की श्रीविभूति है जिनका दृष्टि प्रसाद,
उनका ही नैवेद्य जनों का बनता मौखिक स्वाद,
कण कण मे जिनकी विभूति का बिखर रहा आलोक,
उनके ही दुर्लभ दर्शन से होता हर्षित लोक ।

अणु अणु में हो रहे संचरित जिनके क्रिया कलाप,
जो रवि में तप रहे विश्व का हरने को सन्ताप,
छत्र चमर युत सिंहासन पर वे ही लीलाधाम,
जड़ जीवन की बन बिडम्बना करते नित विश्राम ।

शान्त विश्व की सुख निद्रा के बन भीषण सन्ताप
निशाचरों के तुल्य विचरते जग के जाग्रत पाप,
तब मन्दिर के द्वार बन्द कर सुख से चिन्ता हीन
करते नित भगवान शयन, हो परम शान्ति में लीन।

हरते हैं जो भार धरा का ले भव में अवतार,
बने वही भगवान लोक का स्वयं सनातन भार;
है अभीष्ट अवनी पर जिनका पालक प्रतिनिधि भूप,
बने स्वयं भगवान उसी की प्रतिकृति के अनुरूप।

शक्ति विभव के आडम्बर में विलय हो गया धर्म,
हुए प्रकृति के पोषण में रत माया-मय शुभ कर्म;
भक्त और भगवान लोक को करते मिल कर भ्रान्त,
हुआ धर्म की छाया में ही विश्व पाप से क्रान्त।

अखिल कामनाओं के फल की देकर मिथ्या आश,
धर्म-धुरन्धर थे लोगों के हेतु विरचते पाश;
दीनों के साधन समेट कर स्वयं अधर्मी भक्त,
ईश्वर की छाया में रहते भोगों में आसक्त।

नित्य निवेदित कर अभाव निज जड़ भगवान समीप,
स्वाति-अनुग्रह हेतु दीन जन सेते जीवन-सीप;
आशा की मरीचिका रचती सदा भव्य सुख शान्ति;
स्वयं भ्रान्त हो बना लोक की धर्म अनर्गल भ्रान्ति।

शंखनाद औ घंटाओं की प्रतिध्वनि का रव घोर
फैल मन्दिरों से दिगन्त में भू के चारों ओर;
करने लगा बधिर भक्तों के औ ईश्वर के कान,
डूबा उसमें पीड़ित उर का दुर्बल स्वर-सन्धान।

मन्दिर के अनन्त दीपों का दिव्य दीप्त आलोक,
चकाचौंध कर दृष्टि विश्व की भरता तम से लोक;
अमित आरती की आभा मे स्नेह-दीप की दीन
मन्द किरण प्रतिभा-विहीन हो सहसा हुई विलीन।

दिव्य आरती की आभा से अन्ध स्वयं भगवान
दीनो के करुणामय मुख को कब कर पाये ध्यान;
चकाचौंध से चकित विश्व के भक्त जनों की दृष्टि
देख सकी कब अन्धकार मे लीन पाप की सृष्टि।

भजन और कीर्तन में भूले सकल प्रपंच बिसार
सुन पाये कब भक्त दीन की करुणामयी पुकार;
जिह्वा से कर जड़ ईश्वर का अन्ध अहर्निश पाठ
चेतन जन भी जड़ साधन से हुए विकुंठित काठ।

फूलों की मालाओ से हो पूजित जड़ भगवान
रहे समझते अखिल विश्व को पुष्पों का उद्यान,
जान सके वे कब जगती मे कितने बेर-बबूल
वेध रहे मानव के उर में सन्तत तीखे शूल।

रोम पाट की मसृण मनोहर कोमल भूषा धार
हेम-रत्न-आभरणों से कर जड़ तन का शृंगार,
जान सके भगवान कभी क्या धरती पर कंगाल
नंगे तन पर झेल काटते कितने दुर्भर काल।

भक्त और भगवान सदा ही रहे सुरभि से अन्ध,
कभी जान पाये दीनों के गृह-नरको की गन्ध,
उन नरकों की सीमा तक कब वे चन्दन औ धूप
पहुँच सके, कब जगे गन्ध से वे पुरीष के स्तूप।

चढ़ता जब भगवान चरण पर नित्य अपरिमित भोग,
मधुर प्रसाद पूर्ण करता था जब भक्तों का योग,
देते जड़ भगवान जनों को जब रस पूर्ण प्रसाद,
करती जब जिह्वा नामों का केवल जड़ अनुवाद;

तब प्रसाद के मधुर रसो में भक्त और भगवान,
ज़ान सके क्या, इसी रसा के अंचल में अनजान,
कितने दीन हीन जन अविरत श्रम से निशिदिन चूर्ण,
रूखे सूखे से पारण कर करते जीवन पूर्ण।

जब सहस्र नामो से वंदित होते करुणाधाम,
कितने दीन दुखी जगती मे चिर अज्ञात अनाम,
तरस दया के दो लघु कण को जीवन-साधन-हीन,
क्रूर काल के अन्ध गर्भ मे होते विवश विलीन।

रूप आरती के दीपक पर मोहित भक्त पतंग,
ईश्वर की छाया में करते पोषित निभृत अनंग,
भक्त और भगवान सभी को देकर रूप प्रसाद,
करती कामिनियाँ रहस्य से रंजित मायावाद।

फटे चीथड़ों में लिपटे तब जाने कितने लाल,
पड़े धूल में पथ की कितने हीरक भव्य विशाल,
ज्योतिष्किरणों के तारों में सपनों के ही फूल,
गूंथ अर्चना मे जीवन की रहे धर्म को भूल।

रूपवती कितनी कुमारियाँ छिपा कथंचित लाज,
फटे चीथड़ों मे, करती थीं पालन नित निर्व्याज
साध भरे अपने जीवन का उमातुल्य तप धर्म,
समझा तब कोई जगदीश्वर उनके मन का मर्म ?

स्वरलय के संगीत साज मे सुन न सके भगवान
भूखे नंगों का बेसुर का करुणा-रोदन-गान;
होते जब मन्दिर में गुंजित स्तव के गान पुनीत,
दीनों की कुटियों में होता क्रन्दन का संगीत।

उत्तम भोगो के सोने के भरे सुसज्जित थाल,
भक्त और भगवान प्राप्त कर होते नित्य निहाल;
भूखो के खाली पेटों की तब प्राणान्तक पीर
लगी हृदय मे कब उनके बन समवेदन का तीर।

बन वैभव की मूर्ति मनोहर मन्दिर के भगवान,
बने कुबेरों के लीलामय दिव्य धर्म के प्राण,
कितने ज्ञानी, यती, पुजारी त्याग योग-अभ्यास,
वैभव से विस्मित हो उनके हुये हृदय से दास।

धनिकों की सम्पत्ति बन गये जगदीश्वर भगवान,
वन्दी आप बने, करते जो सबको मुक्ति प्रदान;
जिनकी महिमा का विलास है यह सारा संसार,
वे बन गये अकिंचित्कर-से जड़ हो जगदाधार।

बना इन्द्रियों का अनुरंजक यह वैभव का धर्म,
केवल शिष्टाचार बन गये अखिल पुण्य के कर्म;
छू न गया उसकी विधिगति मे आत्मा का संकेत,
रहे प्रकृति मे निरत प्राण औ मन इन्द्रियों समेत।

शब्द, रूप, रस, गंध आदि को छोड़ न कोई तत्व,
धर्म-साधना में रखता था अपना अल्प महत्व;
वही प्रकृति जिसमे ईश्वर का खिलता रूप अपार,
अवगुण्ठन बन गई धर्म का बन रंजित आधार।

धनपतियों के हेतु धर्म भी बना एक व्यापार,
आत्म साधना बनी प्रकृति का केवल शिष्टाचार,
कीर्ति, मान, यश, लाभ आदि का साधन था बस दान,
बने दास धनिकों के दोनों भक्त और भगवान ।

मन्दिर में गृह, गृह में मन्दिर इच्छा के अनुरूप,
बनता था; भगवान बने थे मन्त्र अमोघ अनूप;
सुख, सम्पति, ऐश्वर्य, कीर्ति के दाता परम उदार,
ईश्वर की विभूति केवल थी धनिकों का अधिकार।

बने खिलौने-से भक्तों के औ धनिकों के हाथ,
सर्वशक्तिमय विश्व-विधाता ईश्वर त्रिभुवन-नाथ;
सिंहासन पर बैठ स्वर्ग के रत्न-पालना झूल,
पा प्रसाद-पूजा रहते थे सदा पूर्ण अनुकूल।

दीन और दुखियों के उर की करुणामयी पुकार,
थी अरण्य रोदन-सम निष्फल और पूर्ण निस्सार,
ईश्वर की विभूति में उनका केवल यह अधिकार,
नंगे भूखे रहे सदा ही ढोते जीवन—भार।

जितना पूजा पाठ आदि का आडम्बर अभिचार,
करते अर्थ-काम के साधक, बना धर्म व्यापार,
उतने ही उनके पुण्यों से होते पाप प्रसूत,
धर्म-स्वर्ग के स्रष्टा भू पर बने नरक के दूत।

जितना हाथों से करते थे ईश्वर का शृंगार,
उतने ही हरते थे निर्भय मनुजों के अधिकार;
जितने जिह्वा से लेते वे शिवशंकर का नाम,
उतने ही मन से करते थे वे अशिवंकर काम।

भक्त पुजारी बन ईश्वर की सेवा के प्रिय पात्र,
निज आत्मा को भूल अलंकृत करते केवल गात्र;
भक्ति ज्ञान की संज्ञा के कर धारण बाह्य प्रतीक,
धर्म, ज्ञान, अध्यात्म, भक्ति की मात्र पीटते लीक।

बनता उनके दृप्त शीष का जटाजूट बस भार,
होती उसमे नहीं ज्ञान की निःसृत पावन धार,
होता तम से रहित न उनका मुण्डित भी हो मुण्ड,
करता त्रिगुण-रहस्य प्रकृति का द्योतित नहीं त्रिपुण्ड।

वह चन्दन का तिलक न करता शीतल उनका भाल,
रहते सुप्त वासनाओं के लिपटे विषधर व्याल,
वह केशर का शून्य भाल पर अंकित शोभन बिन्दु,
बनता है कब तमोनिशा का अमृत ज्योतिमय इन्दु।

वह रोली का बिन्दु भाल का करता शतगुण राग,
खिलता कब वह स्नेह उषा का बन शुचि पुण्य सुहाग;
कब जीवन के भाल-कमल पर खिलती श्री अवदात,
कर कृतार्थ निज पावन छवि से जीवन की प्रति प्रात।

दिव्य आरती की आभा मे रम्य रूप के लोक,
खिलते मन्दिर के प्रांगण में उत्सुक नयन विलोक;
अखिल ज्योति के ज्योतिरूप को पाये कब पहचान,
आत्मा का आलोक प्रकृति में होता अन्तर्धान।

कण्ठ मात्र से सुना जनों को ईश्वर के बहु नाम,
करते जो शत बार शीष से प्रभु को नित्य प्रणाम,
हुआ शब्द के अर्थ-तत्व का उन्हें कभी क्या भान,
हुये कभी अन्तर मे उनके प्रकटित क्या भगवान।

रुचिमय व्यंजन भोग अनेकों प्रभु के पुण्य प्रसाद,
रहे सदा जिनकी रसना के पुनरावर्तित स्वाद,
हुआ उन्हे क्या रस स्वरूप के रस का किंचित ज्ञान,
प्रकृति लीन ने परमेश्वर का पाया कभी प्रमाण।

अंगुलियों के धर्म-चक्र सी चलती अविदित माल,
कर पाई कर-बदर-सदृश कब जग के चक्र विशाल,
कर पाई कब स्मरण सुमिरनी प्रभु को लोकातीत,
हुई प्रकृति की गणना ही बस भजन रहस्य प्रतीत।

कण्ठगता रुद्राक्ष माल बन अलंकार अभिराम,
कर पाई कब भस्म मनोगत दुर्जय तन का काम;
सहस्राक्ष बन देवराज के मन के लोचन लोल,
अप्सरियो के रूपराग पर बिकते रहे अमोल।

जो कुबेर और सामन्तों को करते नित्य प्रणाम,
धन, वैभव, पद, शक्ति तंत्र थे जिनके आठों याम,
जिनकी सीमा रही प्रकृति के भोगों की अनुभूति,
उनको कब हो सकी विभासित प्रभु की दिव्य विभूति।

सदा देह से रहकर भी जो परमेश्वर के पास,
मन से बने रहे मानव के और प्रकृति के दास,
उनकी पूजा, सेवा, अर्चा सब केवल उपचार;
नहीं प्रकृति सेवन से होता आत्मा का उद्धार।

रहे शेष बस अंग धर्म की प्रकृत देह के स्थूल,
गये देह के आराधन में सब आत्मा को भूल;
हो आत्मा से रहित रह गई देह जड़ित पाषाण,
हुये अमृत विभु भी मन्दिर में मृतक-कल्प भगवान।

वे शंकर जो सेवन करते सदा विविक्त श्मशान,
खाकर आक धतूरा करते जो जग का विषपान,
करते जो कैलाश शिखर पर जग का मंगल योग,
वे राजत मन्दिर मे करते ग्रहण अपरिमित भोग।

वही विष्णु जग के पालन का लिया जिन्होंने भार,
धरणी के उद्धार हेतु जो लेते बहु अवतार,
बन शृंगार भोग की प्रतिमा प्राणहीन साकार,
करते इस चेतन जगती मे माया का विस्तार।

किया जिन्होंने वसुन्धरा का पूतिगर्भ से त्राण,
आदि सृष्टि के उद्धर्ता वे श्री वराह भगवान,
भव्य हेम मन्दिर में करते रत्नो से शृंगार,
करते हीरों के प्रकाश मे भी तम का विस्तार।

धर्म-पीठ बन गये प्रकृति की लीला के प्रासाद
पुण्य तीर्थ बन गये पाप के अतिरंजित अनुवाद,
धारण का अधिकार छोड़कर धर्म बन गया भार,
धर्म-घोष मे करता जग का अन्तर हा हा कार।

कर संन्यास वेष को लज्जित लेकर भिक्षापात्र,
नगरों के पर्यटक योग से करते पोषण गात्र,
द्वार द्वार के दीन भिखारी बन कर लज्जा हीन,
योग-तेज से रहित प्रकृति के परिसाधन मे लीन।

बना योग केवल हठ तन का मनका नहीं निरोध,
तनके बल से हुआ कही क्या आत्मा का अवबोध;
नहीं प्रकृति के अनुशासन का साधन तन से त्याग,
मनोयोग का साधन केवल मन का पूर्ण विराग।

रमा देह पर केवल, कर से गहरी भस्म विभूति,
हुई लोक की अस्थिरता की कब मन में अनुभूति,
श्वासो के संयम से केवल करके प्राणायाम,
हुये नियंत्रित कभी किसी के मन के चंचल काम।

योगि वेष धारण कर तन से बन विराग की मूर्ति
मनोकामनाओं की करते छद्म योग से पूर्ति,
भोले जग के सरल दृगो को दिखा दिव्य निज रूप,
मन से सेवन करते गहरा अन्धकाम का कूप।

कुछ विभूतियों से स्तम्भित कर चकित लोक के नेत्र,
करते थे उपसर्ग-साधना छोड़ योग का क्षेत्र,
दिखा देह के आसन अद्भुत नट के कौशल तुल्य,
करते सिद्ध योग में भी वे प्रकट प्रकृति-बाहुल्य।

बुद्धि भूत-तन्मात्र आदि में रही सर्वदा भ्रान्त.
कर पाये वे नहीं अस्मिता की सीमा अति-क्रान्त;
निर्विकल्प होकर कब क्षण को हुये पूर्ण निष्काम,
कब समाधि की स्थिति जीवन की गति का बनी विराम।

कीट पतंगो की हिंसा से जो थे बहुत सतर्क,
करते मानव की आत्मा का वे ही नित्त मधुपर्क;
कर आत्मा का घात स्वयं भी वे कर देहाचार,
करते थे तामिस्र लोक का प्राप्त सहज अधिकार।

धर्माचार बना माया का अतिरंजित आरोप,
जीवन के अध्यात्म सत्य का जिसमें हुआ प्रलोप,
माया ही बन गयी सत्य का प्रिय स्वरूप साकार,
वंचित जिससे हुआ सहज ही यह भोला संसार।

आत्म-साधना के कामी को जो कुछ भी था हेय,
उसका संग्रह भोग बन गया सहज अलक्षित स्तेय;
है अस्तेय त्याग से श्रम के फल का परिमित भोग,
बिना प्रकृति की मर्यादा के होता सफल न योग।

ब्रह्मचर्य के छद्म वेष में पलता गुप्त विलास,
बना प्रेय का पर्व, श्रेय का साधन जो संन्यास;
रूप औ रति के विभ्रम में रहता चंचल चित्त,
जीवन के विलास के केवल थे भगवान निमित्त।

अपरिग्रह बन गया परिग्रह संचय का अतिचार,
भक्त और भगवान बन गये वैभव के अवतार;
धर्मपीठ बन गये अर्थ के औ अनर्थ के केन्द्र,
अवनी पर हो गये अवतरित थे कितने अमरेन्द्र।

तन का शौच बन गया केवल पद का शिष्टाचार,
मन में पोषित रहे प्रकृति के सारे काम-विकार;
अन्तर्गृह में पूर्ण सुरक्षित कर कुबेर का कोष,
बना धर्म उपदेश जनों के हित केवल सन्तोष।

तप था केवल प्रकृति भोग के प्रकृत खेद का ताप,
जप था केवल जड़ जिह्वा का अर्थ विहीन प्रलाप,
तत्व-प्रबोध-हीन शब्दों का पाठ बना स्वाध्याय,
था ईश्वर-प्रणिधान कर्म की जड़ता का पर्याय।

इस प्रकार रज और तमस का उच्छृंखल व्यापार
बना सत्व की छाया में था सुन्दर धर्माचार,
पालन कर सब धर्म रूढ़ियाँ पूजित कर पाषाण,
धर्म-निरत-से भी आकुल थे जग के भोले प्राण।

सुन वीर पिता का निधन भयंकर संगर में,
जय घोष सुरों का सुन कर गुंजित अम्बर में,
तारक का औरस ज्येष्ठ परम विक्रमशाली
भय मे भी क्रोधित हुआ वीर विद्युन्माली ।

अधिकार और पद पाये उसने जीवन में
जो पूज्य पिता से, स्मृत हो आये वे मन में:
"कितना गौरव था औ कितना ऐश्वर्य मिला,
कितनी महिमा से था जीवन का सूर्य खिला,

इस शोणितपुर का जब मैं था युवराज बना
बन भव्य सत्य आया वह शासन का सपना,
नति ले त्रिलोक के आतंकित प्रति जन जन की,
तब धन्य हुई थी वह वेला अभिनन्दन की।

था स्वयं इन्द्र ने कलश उठाया मंगल का
अभिषेक कराया गुरु ने तीर्थों के जल का,
इन्द्राणी ने था तिलक किया अपने कर से
थे बने देवता सभी हमारे अनुचर-से ।

भर मर्म राग किन्नरियाँ अपने मधु स्वर मे,
जय मालाएँ लेकर अप्सरियाँ कम्पित कर मे,
जाती थीं मेरे पद गौरव पर बलिहारी
शोणितपुर में कितने प्रसन्न थे नर नारी।

नभ गूँज उठा चंचल नूपुर के निस्वन से,
प्रतिध्वनित दिशायें हुई सुमङ्गल गायन से,
त्रिभुवन का उत्सव था मेरा अभिषेक बना,
आरम्भ हुआ था जीवन का नूतन सपना।

जगती का वैभव-रूप अखिल जब चरणों में
वन्दन करता था, इस यौवन के नयनों में
सुन्दरता के शत रूप-कमल नित खिलते थे,
रति-छवि के दीपक स्नेह-भरे शत जलते थे ।

मेरी प्रसन्नता से त्रिभुवन हर्षित रहता,
मेरी भृकुटी पर था त्रिभुवन कम्पित रहता,
मेरी अनुकम्पा से त्रिभुवन जीता मरता,
अनुसरण चरण का अखिल विश्व-जीवन करता ।

इन हाथों से कितनों ने क्या क्या वर पाया,
कितनो ने इनसे पाई वैभव की माया;
कितनों ने इनकी असि-धारा मे वेग भरी
हो मग्न, डुबाई जीवन की कच्ची गगरी ।

इन नयनों का निर्देश नियति था त्रिभुवन की,
इन अधरो का आदेश प्रणति था जन जन की;
यह सुरा-पात्र मेरे अभिमानी यौवन का
था रूप-गंध-रस-केन्द्र विश्व के जीवन का ।"

कर स्मरण वीर उस अपने बीते गौरव का,
उस सत्ता औ शासन के युग के वैभव का,
विक्षुब्ध हुआ उस दीन पलायन पर अपने,
आकांक्षाओं के जाग उठे भीषण सपने ।

प्रतिशोध पिता के रण में बध का लेने की,
पौरुष का अपने अन्तिम परिचय देने की
आवेग बन उठी आकांक्षा आहत मन मे
विद्युन्माली के दर्प भरे नव यौवन में ।

हो उठा क्रोध से कम्पित सहसा तन उसका,
चढ़ गया शिखर पर संकल्पों के मन उसका;
फड़के विक्रम के बाहु-दण्ड अति बलशाली
दमका विद्युत-सा तेज-युक्त विद्युन्माली।

तप उठा सूर्य-सा उद्वेजित हो मन उसका,
उद्वेलित-सा हो उठा दृप्त यौवन उसका;
बल-दर्प घिरा उठ आयस-घन-सा सावन का
बन कर अभेद्य-सा कोट काम के साधन का।

दृढ़ शक्ति भूमिका बनी दर्प-मय जीवन की,
वह सिद्ध भूमि सब अर्थ-काम के साधन की,
विज्ञान-ज्ञान-युत धर्म, मोक्ष, साहित्य, कला,
है सदा शक्ति से सब का जीवन प्राण पला।

है रजत शुभ्र बस रम्य पीठ पद-पूजन का,
है कनक दण्ड बस बल सत्ता के शासन का,
है ज्ञान शक्ति का दास सरल आज्ञाकारी
है अर्थ शक्ति की महिमा पर नित बलिहारी।

है उन्मद पौरुष प्राण शक्ति के जीवन का,
बल भुज-दण्डो का औ साहस गर्वित मन का;
सब संकल्पों का साधन है सामर्थ्य-भरा,
उनसे ही शासित रही सदा यह वसुन्धरा।

आयस आयुध है दृढ़ उस बल के विक्रम का,
साधन साहस के निष्ठुर औ निर्मम श्रम का,
सब अर्थ-ज्ञान जिससे कोमल मन में डरते,
सब काम शक्ति के अनुचर-से साधन करते।

विद्युत-सा जब वन खड्ग चमकता वह रण में
भर देता कम्पन नभ अवनी के तन-मन मे;
उस तीक्ष्ण खड्ग की धारा मे बरबस बहते
बुद्बुद्-से मानव जीवन की संज्ञा सहते ।

घिर कर अवनी पर घन-मंडल-सा पावस का
दुर्भेद्य कोट वह कठिन अखंडित आयस का
बनता जगती के प्राणो की निष्ठुर कारा
वन्दी सा जिसमे रहता जीवन बेचारा ।

आयस की यामा में पलती स्वर्णिम ऊषा,
है रत्न-कोष का दुर्ग लौह की मंजूषा,
है प्रलय-वज्र से मन्दिर का रक्षक लोहा,
है धर्म-अर्थ ने सदा शक्ति का मुख जोहा।

'कमलाक्ष वीर का ज्ञान-लोक वह राजत का
वन निराधार था अन्तरिक्ष मे ही अटका,
युग ओर अर्थ औ शक्ति उसे थे खींच रहे
असमंजस में ही धर्म-ज्ञान थे बीच रहे।

नभ के बुद्बुद्-सा ज्ञान-लोक का हिन्डोला,
था अन्तरिक्ष मे मारुत पर दिशि दिशि डोला;
तृण-सा जीवन की धारा पर अस्थिर तिरता,
प्रति लहर लहर मे पंथ-हीन-सा वह फिरता ।

थे शबल शून्य में अन्तरिक्ष के तम-छाया,
थे दिशा-काल औ गति-स्थिति सब केवल माया;
गति और ज्ञान का क्रम सारा मन का भ्रम था,
थी विफल साधना और व्यर्थ जीवन-श्रम था ।

क्या माप दण्ड था पूर्व दिशा औ पश्चिम का,
उत्तर, दक्षिण का तथा ताप अथवा हिम का;
था पूर्व हुआ जिस ओर जभी जिसका मुख था,
था पश्चिम छिपता जिधर सूर्य के सम सुख था।

जिस ओर जभी पद को आश्रय अवलम्ब मिला,
दक्षिण बन कर वह दिशा देश तत्काल खिला,
सारे अभाव का समाधान, औ आशा का,
आश्वासन उत्तर बना . ज्ञान परिभाषा का।

था अन्धकार में जो अलभ्य वह दूर बना,
गति मान रहा जो वह जीवन का पूर बना,
था निकट, लभ्य था अनायास ही जो सुख से;
था इष्ट, रहित था जो श्रम से, संशय-दुःख से।

सापेक्ष नियति के अनियत औ अस्थिर क्रम में
ज्ञानी रहते थे राजतपुर के चिर भ्रम में,
थे ढूँढ रहे वे सत्य सनातन माया में
आलोक खोजते वे अपनी ही छाया में।

थे सदा भूमि की ओर चरण उनके खिंचते
पर नयन स्वर्ग की ओर एकटक थे लखते;
आकर्षित रहता अवनी से नित तन उनका;
उड़ता अम्बर में स्वर्ग ओर खग-मन उनका

इस असमंजस में मुग्ध और भ्रम में भूले
राजतपुर वासी भूल रहे मन के झूले;
अवनी का भी आधार न ढूंढ़ किंचित पाया,
हो सकी हस्तगत नहीं स्वर्ग की भी माया।

असमंजस के उस व्यर्थ भ्रान्ति मय जीवन को,
बल हीन ज्ञान औ करुणा के कोमल मन को,
विद्युन्माली ने मान अनुज की दुर्बलता,
त्यागी मन से ही ज्ञान-धर्म की निष्फलता।

करके आयस-सा क्रूर कठिन अपने उर को,
बल के मय से कर रचित लौह के दृढ़ पुर को,
अवनी के ऊपर सुदृढ़ शक्ति की औ बल की
पाई प्रतिकांक्षा पूर्ण पराजय के पल की।

प्रतिशोध पिता के वीर निधन का संगर में
बन क्रोध दर्प का भाव समाहत अन्तर में,
बन कर आयस का कोट अभेद्य लौहपुर का
विद्युन्माली के वर्म बना निर्भय उर का।

शस्त्रों से सज्जित वीर वेश विक्रमशाली
सम्राट बन गया तेजस्वी विद्युन्माली
दुर्भेद्य दुर्ग-से उस अद्भुत आयसपुर का,
भय से पूजित वह ईश्वर जनता के उर का।

तप महावीर के मुख का आतप तेज बना
रवि सा दीपित वह हुआ विश्व में दृप्त-मना
उसके प्रताप की किरणों से तपती धरणी,
शोषक औ पोषक उसकी महिमा उभय बनी।

वसुधा ने अपना हृदय चीर कर रत्न दिये,
थे विश्व कला ने अनुपम कौशल यत्न किये,
था सहस करों से त्रिभुवन की वन्दित छवि का
पहनाया उसको मुकुट प्रजा ने ही रवि का।

खिल उठा तेज से वदन अपरिमित दीप्ति भरा,
हो गई धन्य पा दूर ज्योति ही वसुन्धरा।
नक्षत्र तुल्य खिल उठे ज्योति पाकर जन थे,
कमलों से हर्षित विस्मित मानव के मन थे।

उस दिव्य तेज पर होकर मानों बलिहारी
सम्पूर्ण लोक की शक्ति और सत्ता सारी
शस्त्रो मे होकर मानों सहसा मूर्तिमती
उस महावीर का अलंकार अनुपम बनती।

हो मुग्ध भीत-सी कान्तिमती कोमल अबला.
त्रिभुवन की वाणी रूपवती कल्पना कला,
थी महाराज के वैभव की महिमा गाती,
उनकी अनुकम्पा मे कृतार्थता-सी पाती।

हो मुग्ध रूप औ यौवन मानों त्रिभुवन का,
पा पुण्यपर्व-सा जीवन का, तन का, मन का,
था नृत्य कर उठा हर्षित हो उनके आगे
यौवन छवि के थे सुप्त भाग सहसा जागे।

चञ्चल मानस की लहरें मानों बन चमरी
उस तेज शक्ति की प्रतिमा पर मन्थर फहरी,
पा एक देवता धन्य हुई छवि बालायें,
हो उठी समुत्सुक कितनी जीवन मालायें।

वह निर्बल और निराश्रय अखिल ज्ञान जग का
कर रहा सचिव बन अभिवन्दन बल के पग का,
अधिकार और पा मान धन्य प्रतिभा होती,
थे कण्ठहार बल के बनते मानस-मोती।

बल-हीन जनों की आकांक्षा ही शासन की
बन सकी प्रतिष्ठा राजा के सिंहासन की,
त्रिभुवन की लक्ष्मी बल विक्रम की पटरानी
बन कर, विराजती जग-वन्दित चिर कल्याणी ।

दुर्बल दीनों के आर्त हृदय की निर्बलता,
पा पाद पीठ में आश्रय पाती निर्भयता,
वन्दन कर जिनका धन्य लोक के शीष बने,
सौभाग्य प्रणति के जीवन के आशीष बने ।

आदर की आशा कितने अनुगामी जन की
जयमाला-सी बन राजसभा सिंहासन की,
बनती शासन का यन्त्र मनोहर दर्प भरा,
होती कृतार्थ पा गौरव जिसका वसुन्धरा ।

चिर मूढ़ जनों की वह वैभव की उपासना
बल की थाती से निर्बल जन को भीत बना,
बनती राजा के इंगित पर चलती सेना
अविचार-पूर्व जिसको सत्ता को बल देना ।

गज, अश्व, पालकी, रथ औ दण्ड तथा बाजे,
बन यान-चिह्न उस बल के वैभव के साजे,
जिनको विलोक कर विस्मित हो लोचन मग के
होते कृतार्थ थे केवल दर्शन से जग के ।

दीनों के अनुदिन श्रम का एकत्रित फल-सा,
सत्ता की आत्मा के सुन्दर तन-सम्बल-सा
प्रासाद कमल-सा खिलता शासन के जल में,
बसती त्रिभुवन की सुषमा जिसके कुड्मल में ।

उस मन्दिर में ही राजभवन के दृप्त-मना
विद्युन्माली था जनता का भगवान बना,
सुमनों, नतियों से होती नित उसकी पूजा,
था उससे बढ़ कर ईश्वर और कौन दूजा ।

उसके इंगित पर निर्भर थी सत्ता जग की,
करती थी केवल दृष्टि सृष्टि सबके मग की,
भृकुटी पर कितने भाग्य-लोक चढ़ते गिरते,
थे कृपा-सिन्धु में बुद्‌बुद-से मानव तिरते ।

बल, काम, क्रोध मे होकर मानो मूर्तिमती
थी प्रकृति लोक में यथाकाम शासन करती
जिसमें आत्मा का मृदु स्वर मानव को भूला,
सँहजन सा जीवन अतिशय गर्वित हो फूला ।

कृति में कृतार्थ थी स्वतः सिद्ध मुख की वाणी,
बनती श्रुतियों का सार आप्त वह कल्याणी,
अन्तर का अनहद नाद योग से जन सुनते,
मन से ही मन के काम कल्पना में गुनते ।

भगवान तुल्य नृप की इच्छा से विश्व बना,
उस ऊर्ण-नाभि के कल्प-तन्तु का जाल तना,
उसमें बन्दी भी वह कर्त्ता शासन करता,
कृमियों का केवल लोक बन्धनों में मरता ।

खिलता बालारुण जब उसके प्रसन्न मुख का,
होता प्रफुल्ल पंकज जग के सौरभ-सुख का,
चन्द्रानन से थे चित-चकोर हर्षित होते
मन-कुमुद लोक के पा प्रसाद प्रमुदित होते ।

उसके प्रकोप का प्रलय सूर्य जब जल उठता,
नक्षत्र लोक-सा लोक ज्वाल में गल उठता,
उल्काओं-से उसकी सत्ता के अधिनेता
उत्पात मचाते, लोक चरण में सिर देता।

पदगति से कम्पित होती डगमग वसुन्धरा,
दृग ज्वालों से जलता जग का उद्यान हरा,
असि के उद्‌गम से शोणित की धारा बहती,
होती जीवन की मर्यादा मज्जित महती।

फल औ फूलों से बढ़ते अगणित अधिकारी
शासन के प्रेमी प्रकृति-लीन सत्ता-धारी,
रवि-से राजा से शक्ति और द्युति पा दमके
अगणित नक्षत्रों के समान सूने नभ के

विद्युन्माली का पल पल अभिनन्दन करके,
राजा के चरणों का सगर्व वन्दन करके,
भोली जनता को वैभव से विस्मित करते,
दासत्व मार्ग को कृति से नित निर्मित करते,

जिस पर सहर्ष चल रही प्रजा भोली भाली;
हो रहा तीर्थ-सा पूजित था विद्युन्माली;
जन आराधन से सत्ता के कृतकृत्य हुए;
मानव निर्बल हो, थे दानव के भृत्य हुए।

शासन की केवल शक्ति मनुज की दुर्बलता,
उसमें ही बल का अनय और विक्रम पलता,
जब समझेगा वह शक्ति-ज्ञान के गौरव को
नन्दन कर देगा इस अवनी के रौरव को।

स्वाधीन बनेगा ज्ञान प्रतिष्ठित निज बल में,
जो पराधीन हैं अभी शक्ति-धन के छल में,
औ स्वप्न भंग कर शक्ति-वित्त के शासन का
अधिकार करेगा ग्रहण लोक-संचालन का।

होगी चरणों की शक्ति ज्ञान की तब दासी,
अनुसरण करेगी आभा का तब छाया-सी,
सैनिक-सा सेवक उसका बल-शासन होगा,
औ क्रीतदास-सा अनुगामी यह धन होगा।

पर त्याग शक्ति-धन बना ज्ञान जब वैरागी,
बल और वित्त को प्रभुता की महिमा जागी,
तजकर विवेक निज, ज्ञान भ्रान्ति का दास हुआ,
शासन-शोषण में निष्फल यह संन्यास हुआ।

वह राजतपुर में बना प्रकृति का अनुचारी,
आयसपुर मे बल को सौंपी सत्ता सारी,
फल वहाँ ज्ञान का जड़ पूजा का भोग मिला,
विद्युन्माली का अनाचार बन यहाँ खिला।

था वहाँ भ्रान्ति मे लोक सदा भूला रहता,
आतंक-भीति मे यहाँ अनय-अनुनय सहता,
होता न प्रकृति को त्याग प्रकृति का शासन है,
अनिवार्य प्रकृति का अन्वय शिव का साधन है।

है चरण घात से प्रकृति धूल-सी सिर चढ़ती,
प्राकृत अभाव से भीति प्रकृति की अति बढ़ती,
फिर वह अभाव ही भ्रान्ति-चक्र दुर्गम बनता,
संन्यास भ्रष्ट हो भ्रान्त राग का क्रम बनता।

होती अभाव की संज्ञा है अनन्त मन मे,
बनता अनन्त वह क्षितिज मनुज के जीवन मे,
जो दूर निरन्तर माया के पट-सा खुलता,
विह्वल करती सन्तत पथ-गति की आकुलता।

मित भाव-ग्रहण है प्रकृति-धूल के हित जल-सा,
आत्मा से अन्वय, सुदृढ़ ज्ञान के सम्बल-सा,
जिससे उर्वर हो प्रकृति सुमन-सी खिल जाती,
धन-शक्ति-ज्ञान को चिर कृतार्थता मिल जाती।

था बना लौहपुर दीनो को आयस-कारा,
जीवन, शासन के हित था उनका श्रम सारा,
था साध्य न कुछ भी जन के अपने जीवन का,
सेवा मे ही था धर्म-सहित पद साधन का।

अधिकार-दृप्त नृप के सब मुखरित अधिकारी,
उन्मद नृशंस सब प्रकृति-अन्ध अत्याचारी,
राजा के पद मे रख जग का वैभव सारा,
गर्वित होते उच्छिष्ट भोग के ही द्वारा।

जब बना स्वर्ग में शक्ति-योग के अन्वय का
नूतन विधान, पथ देवो की दुर्लभ जय का,
तब स्वर्ग पूर्व का बन अपूर्व भू पर उतरा,
उन्मद यौवन से विह्वल होती वसुन्धरा।

जब शक्ति-योग का पीठ बना नन्दन वन था,
जब वैजयन्त मे आत्मयोग का शासन था,
तब कामकुञ्ज बन खिलीं भूमि की फुलवारी,
शत वैजयन्त भू के महलो पर बलिहारी।

देकर जयन्त को नये स्वर्ग के पालन का
अधिकार, भार नव धर्म, नीति औ शासन का,
गुरु शची सहित थे पूर्व इन्द्र, बनकर त्यागी,
निष्काम कर्म और आत्म योग के बस भागी,

वैभव-विलास की महिमा से विक्रमशाली,
तब इन्द्र बना नव अवनी का विद्युन्माली,
रति औ वसन्त से युत ले सब मोहन माया,
अनुचर अनंग बन, अयुत देह धरकर आया।

सौन्दर्य-शक्ति के सृजन-मुखी नव साधन में,
अप्सरियों को जब मिली नई गति जीवन में,
तब आयसपुर की नवकुमारियाँ सुकुमारी
थीं राग-रंग पर तन-मन से जाती वारी।

बनती अनंग का धनु वंकिम तनिमा तन की,
खिचती कानों तक प्रत्यंचा चल-लोचन की,
मन-मृग पर लक्षित भाव भरे अवलोकन के
चलते मनोज के पुष्पवाण सम्मोहन के।

अप्सरियो के कलकण्ठो मे स्वर्गिक वाणी
करती दनुजो के दृप्त काम की अगवानी,
उस हंसवाहिनी के कर की उज्ज्वल वीणा
होती असुरो के श्रुति-रंजन मे ही लीना।

जिसमे आत्मा का संजीवन स्वर भाव-भरा
जीवन की लय पर नभ से अवनी पर उतरा,
वह आत्मज्योति की पुण्य आरती-सी अमला
बनती विनोद का साधन केवल काव्यकला।

नारी के नखशिख अंग अंग के अंकन मे
रत, वह कृतार्थ थी एक काम के साधन में,
थे धर्म, अर्थ औ मोक्ष उसे भूले सहसा,
था अलंकार का भार देह पर दुर्वह-सा।

था एक काम ही धर्म, अर्थ सब जीवन में,
कृति थी कृतार्थ बस रति के ही उद्दीपन मे,
बन गई नर्त्तकी स्वयं नायिका-सी कविता
दीपक का बनता दीन शलभ नभ का सविता।

खद्योत उक्ति के उसके पथ के दीप बने,
खल हास मूढ़ के स्वाति-मुक्ति के सीप बने,
शृंगार, काम औ कौतुक केवल प्रेय हुये,
रति में विलीन-से जीवन के सब श्रेय हुये।

जब अश्रु वृष्टि के प्लावन मे जनता बहती,
हिम-उपल शिशिर के अतिचारों का वह सहती,
जलती निदाघ मे तापों के नित तन-मन में,
रहता वसन्त नित राजमहल के नन्दन में।

नव नव कुसुमों के सौरभ-रस से मदमाते,
भ्रमरों-से नृप-सामन्त मलय में मँडराते,
थे झूम झूम कर कुसुमों का मधुरस पीते,
रस के सागर में हो निमग्न मरते जीते।

पूजा का-वैभव, शक्ति, दर्प, बल शासन की
अवगुण्ठन रंजित डाल दृष्टि पर जन-मन की,
रति, रंग, लास का नाटक थे निशिदिन रचते,
मद औ विलास के भ्रमरों में तृण से नचते।

•

थी सुरा संगिनी असुरों के लीला क्रम की,
भरती रग रग मे स्फूर्ति काम के विभ्रम की,
उन्मद यौवन की आँखों मे जिसकी ऊषा,
उन्मुक्त खोलती भाव-रत्न की मंजूषा।

कितनी विलासिनी कामिनियाँ मद-लहरों मे
उन्मुक्त नाचती निशि के अन्तिम प्रहरों में,
रंजित यौवन का राग रुचिर स्वर में गातीं
तन-मन अर्पण कर बल-वैभव पर बलि जातीं।

तितली-सी रंजित परियों के कुसुमित तन से,
सौरभ के अंचल फहराते संध्या-घन-से,
उनमे ज्योत्स्ना-सी कान्ति अंग की दिप जाती,
स्मित की विद्युत द्रुत नयन वेध कर छिप जाती,

जीवन में निखरी सप्तवर्ण-विधि-सी रवि-की,
साकार छवि-मयी स्वर्ग-कल्पना-सी कवि की,
करके अनंग को देह-दान वह चित्रकला,
होती विलास के आराधन से ही सफला।

जड़ पाषाणों में प्राण-रूप-संजीवन की
पौरुष की कृतिमय कला श्रेय के साधन की,
कब नव जीवन से स्फूर्त कर सकी तन-मन को,
सम्मोहन से वह करती जड़-सा चेतन को।

था रूप डुलाता चँवर शक्ति पर नत सिर हो,
सेवा में रहता तत्पर मन में अस्थिर हो,
प्रासाद-पथों पर बनकर स्वर्ण दण्डधारी,
छवि की रानी का बनता वन्दी प्रतिहारी।

कर रुचिर रूप को शृंगारो के गोपन मे,
कर जाग्रत छवि को मौन अंग सम्मोहन मे,
वैभव के पद पर रूपकली-सी बलि जाती,
उतरी माला-सी प्रात धूल में मुरझाती।

छवि के उपवन मे नित्य नई कलियाँ खिलती,
पल की पूजा की गौरव-गति सबको मिलती,
नव नव अर्चा के शक्ति-देवता अधिकारी,
केवल पूजा के पल की कलिका सुकुमारी।

बल औ वैभव के मन्दिर के प्रति आँगन मे,
मुरझाती कितनी कलिकायें नव यौवन में,
थी वृन्तहीन-सी कितनी खिलती अनजाने,
धरती माता ने केवल जिनके गुण माने।

थी कहीं दूर से भी असुरों को आ जाती,
यदि किसी कुसुम की गन्ध मनोरम मदमाती,
तो भ्रमर तुल्य ही पहुँच कथंचित चर उनके,
चरणों में करते स्वामी के अर्पित चुन के।

थी रूप-कली यदि खिलती कोई आश्रम में,
तो उसे चकित कर बल वैभव के विभ्रम मे,
गंधर्व रीति से बना वासना की दासी,
निष्कासित करते वे अनीति के अभ्यासी।

गृह, ग्राम, कुटी मे कोई उज्ज्वल रूप-शिखा,
भय से सकती थी कभी न अपनी ज्योति दिखा,
यदि कहीं दूर से झलक कान्ति की पा जाते,
दे स्नेह-दान का लोभ बुझा उसको जाते।

कितने मुरझाये फूल, मुकुल कितने कुचले,
मिट रहे धूल में राजभवन की चरण तले,
कितनी नवकलियाँ फिर भी छवि के उपवन की
कर रही अर्चना उनके उन्मद यौवन की।

बनकर अवनी पर उतरे औरस-से रवि के,
कितने उज्ज्वल शुचि स्नेह भरे दीपक छवि के
प्रासाद-पन्थ की रज में चरणों तले पड़े,
मिट, अमर कर रहे भाग्य-लेख अपने बिगड़े।

नक्षत्र-सुमन-से अवनी पर नभ से उतरे,
फिर भी तो कितने स्वर्णदीप शुचि स्नेह भरे,
दृग-शलभ लोक के मुग्ध, चकित, विस्मित करते,
नव ज्योति पर्व-सा प्रासादो मे नित रचते।

हो क्रूर काम के बल-वैभव पर बलिहारी,
बनती विलास की साधन थी केवल नारी,
था लक्ष्य न कोई जीवन का उसके अपने,
उसके अधिकार न थे मन के मौलिक सपने।

अधिकार दर्प औ सेवा के कल्पित क्रम में,
नर थे विमूढ़-से राजभक्ति के चिर भ्रम में,
थे सत्य, ज्ञान औ धर्म कहीं अविदित सोते,
सौन्दर्य और शिव तम में अन्तर्हित होते।

थे बने भिखारी सत्य-ज्ञान के साधक थे,
दुख, दैन्य, दास्य, भय सदा धर्म के बाधक थे,
असुरों के शासन-सत्ता के सन्तत भय से
वे धर्म साधना करते शंकित विस्मय से।

भगवान भूप की अनुकम्पा के साधन थे,
ईप्सित राजा के कृपा, प्रीति, आराधन थे,
नृप चरणों में नत ज्ञानी भक्त स्वतन्त्र बने,
कर भ्रान्त प्रजा को वे शासन के यन्त्र बने।

पाकर सोने की रुचिर शृंखला-सा सोना
पग मे धारण को, दीन प्रजा में अनहोना
यश कीर्ति मान पा, कल्पित मानी और धनी
पोषण करते थे नृप के हित स्वर्णिम अवनी।

शासन सत्ता बल वैभव के संचित भय से,
औ भ्रान्त निरन्तर धर्म ज्ञान के विस्मय से,
कर वहन नियति-सी लौह शृंखला बन्धन की,
सेवा से करते धन्य विवशता जीवन की।

बन राजधर्म उस दीन प्रजा के पालन का
कर्त्तव्य, बना था चिर अधिकार प्रशासन का,
लघु दान दया औ रक्षा की भिक्षा नर को
वरदान बनी, जीवन के कामी पामर को ।

जयकार गूँजता था बल, वैभव, शासन का,
संगीत मधुर बन स्वर्ण-लौह के बन्धन का,
अन्तर्ध्वनि-सा मृदु मर्मराग हत मानव का,
था अन्तर्हित ध्रुव मृत्युमंत्र-सा दानव का।

शासन-सत्ता के मृषा मान-पद में फूला,
सेवा, अनुकम्पा, दान, दया, मद में भूला,
दानव अन्तर का क्षीण नाद कब सुन पाया,
कब मौन क्रान्ति से सजग हुई मूर्च्छित माया।

सर्ग २२

काञ्चनपुर वर्णन

सुन समर में वीर-गति दुर्जय पिता की,
देख ज्योतिर्मय शिखा उनकी चिता की,
तारकाक्ष प्रवीर के भर नयन आये,
भाव कितने ज्योति ने अविदित जगाये!

युद्ध में दुर्जेय, यम-से क्रूर उर में
अतुल कितना स्नेह था करुणा-प्रचुर में!
शैल-से उस वक्ष की वह स्नेह-धारा
रही जीवन का सरस करती किनारा।

वह पिता के साथ सारे कुल जनों का,
नगर औ प्रासाद के सेवक जनों का,
स्मरण कर अनुराग सहसा द्रवित मन में,
घिरे करुणा-मेघ उसके युग नयन में।

पर अमा के शीष पर ज्यों दिव्य राका,
निरख कर प्रासाद पर उड़ती पताका
देवताओं की, हृदय में क्षोभ जागा
हुआ दुःसह युद्ध का वह फल अभागा।

शत्रु का शासन स्मरण कर रक्तपुर में,
पूर्व गौरव का उठा अनुभाव उर में;
हो उठा विक्षुब्ध सागर पूर्व-भय का
क्रोध बड़वा-सा हुआ प्रकटित हृदय का।

सजल दृग में दीप्त विद्युत कौन दमकी!
भाव-मेघों में शिखा वह मौन चमकी!
वेध कर उसकी प्रभा नभ और धरती
स्वर्ग का पाताल-पथ निर्माण करती।

उसी के आलोक ने बन दीप पथ का,
द्वार खोला नियति के किस नव्य अथ का;
क्रोध से कम्पित चरण बढ़ रहे आगे
नयन मे किस स्वर्ग-जय के स्वप्न जागे!

क्षिप्र गति से टूट गौरव के शिखर से
चला करुणा-स्रोत जीवन का किधर से!
चीरता गति से कठोर वसुन्धरा को,
मन्द्र रव से कर निगुंजित कन्दरा को।

प्रति लहर से पटल खुलते सान्द्र तम के,
उदय होते लोक स्वर्णिम-कान्ति-क्रम के;
तिमिर मे आलोक उज्ज्वल जगमगाता
भय-पलायन में नई आशा जगाता।

शिलाओं के लोक में उस तम निचय-से
कान्त केवल सत्व के अस्फुट उदय से,
रत्न उज्ज्वल तीर पर रज, सत्व, तम के
तीर्थ-से पाताल पथ के पुण्य चमके।

पुष्पराग प्रदीप आभा के जगाते,
शिखा-से माणिक्य हीरक जगमगाते,
कान्ति से करते अलंकृत कन्दरा को
नाम से करते यथार्थ वसुन्धरा को।

गर्भ में भू के उतर नक्षत्र आये,
कल्पना के काम्य फल एकत्र पाये,
तेज से तप और श्रम की स्पर्श मणि के
खिले पर्वत मेरु बन जीवन-विपणि के।

वसुमती के चिर अपरिचित अन्ध उर में
स्वर्ग के सोपान-से पाताल पुर में,
पलायन की पंक मे तप के कमल-से
असुर की गति और श्रम के पुण्य फल-से

खिले स्वर्णिम स्वर्ग उसके दृष्टि-पथ में;
तार-सा ऐश्वर्य का पा मन्द्र-अथ में,
तारकाक्ष समस्त पीड़ा ग्लानि भूला,
स्वर्ण-सौरभ से मुदित हो सुमन फूला।

कल्पना के कामगति अति निपुण मय ने:
असुर-श्रम के चरम प्राकृत अभ्युदय ने,
प्रकट कर अपनी मनोहर भव्य माया
स्वर्ण-पुर स्वर्लोक मे अद्भुत बनाया।

वसुमती के आर्द्र करुणा-पूर्ण उर-से
पलायन की पंक के पाताल-पुर से
कामना की नाल की कोमल मृणाली,
वासना की मणिधरी उद्दीप्त व्याली,

पार करती लोक भू, जल औ गगन के,
वायु रवि से ग्रहण कर गति तेज तन के
साधना के स्वर्ग में खिलती कमल-सी
मणि-प्रभा होती प्रभासित कान्त दल-सी।

लौहपुर के वीर आभा से चकित हो
शुभ्र राजत लोक के ज्ञानी नमित हो
स्वर्ग के नवसूर्य-से उस स्वर्ण-पुर की
वारते श्री पर समस्त विभूति उर की।

पार कर पाताल के वसु-पूर्ण पथ को
स्वर्ग में कर अन्त भू के अल्प अथ को
तारकाक्ष त्रिलोक की अद्‌भुत विजय मे
विष्णु-विक्रम का कृती था अभ्युदय में।

स्वर्ण का प्राचीर उज्ज्वल जगमगाता,
दीप्ति से वह दृष्टि जग की तिलमिलाता,
मृदुल भी दुर्भेद्य था वह लौह-बल से
प्रकट भी अज्ञेय था वह ज्ञान-छल से।

देखता था लोक जिसका स्वप्न कवि-सा,
कामना के स्वर्ग में वह अपर रवि-सा
दीप्त छवि से अमित उज्ज्वल स्वर्णपुर था,
दिव्य छाया-पन्थ-सा द्युति से प्रचुर था।

रजतपुर में ज्ञान की मृदु चाँदनी में,
धर्म साधक झीमते श्रुति की वनी में,
लौह-पुर में उषा में मधु रक्त-बल की
दृप्त वीर विभोर रति में काम-फल की,

देखते थे स्वप्न नित जिसके उदय का,
जागरण में अर्घ्य अर्पित कर हृदय का,
सींचते थे कल्प-तरु चिर कामना का
मन्त्र जपते मौन उसकी साधना का।

स्वर्ण सौध अनेक उस कांचन नगर में
दमकते नक्षत्र-दीप समान सर में
मुग्ध विस्मित प्रभा के ज्वाला-प्रसभ से
विकल बलि को, लोक के दृग थे शलभ-से।

खिला स्वर्णिम कमल-सा था स्वर्ग-सर में,
फैलता सौरभ-पराग त्रिलोक भर में,
भ्रमर-से आकुल त्रिलोकी के नयन थे,
चकित, मोहित चतुर्दिक करते भ्रमण थे।

शत स्वरों से कीर्ति उसकी लोक गाते,
कल्पना में स्वप्न उसके रूप पाते,
साधना में लोक का वह साध्य बनता,
अर्चना में लोक का आराध्य बनता।

खिली उसके स्वर्ण-कुड्मल में निरुपमा
तारकाक्ष अधीश की सौन्दर्य-सुषमा,
त्रिजग में आलोक उसका पूर्ण छाया,
मोहती मन विश्व का माधुर्य-माया।

तारकाक्ष अधीश उसका बन निराला,
कर रहा था कीर्ति से जग में उजाला;
काम-वर-सी मिली उसको स्वर्ण-वेला
सब गुणों का बन रहा सागर अकेला।

अनुपमित ऐश्वर्य उसके चरण तल की
वन्दना करते. बिखर रज-से कमल की;
वीर्य भी ऐश्वर्य का बन दास आया,
भूति के आलोक का बन भास आया।

गूँजता यश विश्व की बन मुखर वाणी,
वन्दना करते वचन से अखिल प्राणी,
फैलती श्री विश्व में बन रूप-सुषमा,
विश्व-वन्द्या बनी थी महिमा निरुपमा।

ज्ञान हर्षित धूल लेते थे चरण की,
याचना विज्ञान करते थे शरण की,
स्वर्ण का आश्रय अखिल गुण-ग्राम लेते,
बन सुगन्ध-सुयोग, कर अभिराम देते।

वीर्य, यश, ऐश्वर्य, श्री से पूर्ण युत हो,
ज्ञान औ विज्ञान भूषित, विश्व-नुत हो,
तारकाक्ष त्रिलोक का भगवान बनता,
अनुग्रह उसका त्रिलोक-विधान बनता।

विश्व की वह नियति का बनता विधाता,
लोक का नय·धर्म उससे नियम पाता;
पथ-दिशा-निर्माण उसके चरण करते,
दीप-से आलोक उसके नयन करते।

चित्त के संकल्प सृष्टि-विधान करते,
वचन मुख के, वेद का निर्माण करते,
पलक के उन्मेष और निमेष क्रम में
विश्व होता उदय औ लय प्रलय-तम मे।

धारणा उसकी सनातन धर्म बनती,
भावना उसकी हृदय का मर्म बनती,
कृति बनी आचार का आदर्श उसकी,
मति बनी कल्याण का निष्कर्म उसकी।

धर्म का धारण बना था धर्म उसका,
विश्व का कल्याण था ध्रुव कर्म उसका,
सृजन, पालन, प्रलय थे अधिकार उसके,
एक तन में थे अयुत अवतार उसके।

स्वर्ण की बिखरी चतुर्दिक कान्त माया,
था पराग विभूति-सा सर्वत्र छाया,
पवन पर था कीर्ति का विस्तार होता,
सूर्य उसकी विजय की माला पिरोता।

दया बन उमड़ी हृदय की प्रीति उसकी,
दान बन उमड़ी दया की रीति उसकी,
बनी करुणा प्रेम की पावन प्रतिष्ठा,
अहिंसा मे धर्म की थी सुदृढ़ निष्ठा।

स्वर्णपुर की भूति-सी महिमा उसी की
लोक में छायी रुचिर गरिमा उसी की
तारकाब्ज दिनेश के नक्षत्र जैसे
दीप्त पुर मे लोक थे एकत्र जैसे।

शान्ति का वरदान बिखरा स्वर्णपुर मे,
अभय का उल्लास निखरा लोक-उर में,
प्रेम से पावन चिरन्तन प्रेय होते,
कर्म-श्रम से सिद्ध होकर श्रेय होते।

धर्म के उस भव्य औ स्वर्णिम भवन के
स्तम्भ थे आचार, व्रत, विधि, नियम जन के
सुदृढ़ श्रद्धा हृदय की शुचि आरती थी
शिष्ट वाणी वन्दना की भारती थी।

कामिनी का मान था आचार पुर का,
वित्त का अधिकार था विश्वास उर का,
ब्रह्मचर्य प्रतीक था ध्रुव लोक-नय का,
समादृत अस्तेय था बन वर अभय का।

आयसी तम-पूर्ण कृष्णा यामिनी में,
सत्व की राजत रुचिर सौदामिनी मे,
अरुण स्वर्णिम मधुर रज का भोर होता,
राग का विस्तार चारों ओर होता।

प्रात में ऊषा अतुल सोना लुटाती,
स्वर्ण पर सिन्दूर की आभा चढ़ाती,
चमकता पुर नवल निर्मित आभरण-सा,
ध्वनित होता क्वणन जीवन-जागरण-सा।

स्वर्ण शतदल-से मनोहर स्वर्णपुर मे,
रुचिर केशर-कोष-सा, सन्निहित उर में;
तारकाक्ष अधीश का प्रासाद खिलता,
दूर से आमोद का आभास मिलता।

वित्त पर बलि कर पराक्रम वीर्य अपने,
स्वर्ण कण से बेच मणि-से भव्य सपने,
शौर्य के सामन्त-से नर तेज शाली,
पालते थे द्वार-रक्षा की प्रणाली।

सजग दृग से और सचेतन युग श्रवण से,
युग चरण के नियत सन्तत संचरण से
मौन उद्धत मूर्तिमान निषेध, यम-से
कर रहे प्रतिकोण रक्षित चक्र-क्रम से।

स्वर्ण शतदल पर भ्रमर-से बहु भिखारी
भर नयन में याचना की आर्त्ति सारी,
फिर रहे आशीष ले करुणा वचन में;
दीनता मन की हुई थी मूर्त्त तन में।

ज्ञान, नय और धर्म के दुर्बल पुजारी,
दीनता से हृदय की बनकर भिखारी,
राजमन्दिर के अजिर मे होम करते
धर्म का कृति से कृतार्थ विलोम करते।

अर्थ के प्रासाद में बन अर्थ-कामी,
धर्म का जयनाद करते धर्म-नामी,
देवताओं की विभव की आरती से,
अर्चना करते, समर्थक भारती से।

तारकाक्ष अधीश बन साधक सजीला,
अर्थ का, करता मनोरम धर्म-लीला,
कर समर्पित अर्थ के उपकरण सारे,
प्राप्त करता अर्थ-वर उनके सहारे।

देवता के नाम से पा भेंट सारी,
प्रकृति की, सन्तुष्ट होते धर्म-धारी,
बन सचिव जड़ देवता के दान लेते,
अर्थ-पति को विभव का वरदान देते।

नित्य प्रात. प्रकट श्रद्धा से हृदय की,
रीति पालित कर इसी विध धर्म-नय की,
देवता का पुण्य-युक्त प्रासाद लेकर,
औ द्विजों का वरद आशीर्वाद लेकर।

बाँध वर-से चित्त में बहु स्वर्ण सपने,
तारकाक्ष समस्त जीवन-कर्म अपने
अर्थ के साधक, सविधि आरम्भ करता;
ध्यान उसका योगियों का दम्भ हरता।

अनुसरण करती प्रजा नृप का सदा ही,
स्वर्णपुर का धर्म थी बस सम्पदा ही,
अर्थ-साधन मे निरत थे लोग सारे,
अर्थ में अन्वित हुये थे योग सारे।

धर्म का उपचार केवल अर्थ-हित था,
मोक्ष बस उपदेश-चर्चा में विदित था,
काम पर भी अर्थ का आरोप छाया,
सुहृद् का अनुराग भी बन कोप आया।

धर्म का शृंगार बन वैभव खिला था,
सत्य को संयोग माया का मिला था,
अर्थ-वैभव से मुदित हो प्रथम फूला,
किन्तु माया में स्वयं को धर्म भूला।

प्रकृति-माया के वशंगत मुग्ध होकर,
हो गये भगवान जड़, चैतन्य खोकर,
पूर्ण विभु भी तुच्छ मन्दिर में बसे थे,
मुक्त, बन्दी तुल्य बन्धन मे फँसे थे।

स्वयं श्रीपति दास लक्ष्मी के बने थे,
सदा अविकृत वे प्रकृति से नित सने थे;
स्रोत जो अविदित प्रकृति के रूप गुण का
प्रकृति मे होता स्वरूप विलुप्त उनका।

स्पर्श, दर्शन, ग्रहण में अक्षम प्रकृति के,
शोक से जड़ हुये मानों मूढ़ मति वे,
मृत हुये चिति से रहित-भगवान उनके,
भव्य मन्दिर थे समाधि समान उनके।

स्वर्णपुर का स्वर्ण-मन्दिर स्वर्णकारा,
बना जड़ भगवान का अधिवास न्यारा,
उपकरण सब भव्य वैभव-युत प्रकृति के,
बने दृढ़ आधार जग में धर्म-धृति के।

स्वर्ण के उज्ज्वल शिखर पर जय-पताका,
फहरती थी धर्म की, बनकर वलाका
स्वर्ण-संध्या के रुचिर रंजित गगन की,
कल्पना का मोह बन जन के नयन की।

शंख, घंटा आदि की उस घोर ध्वनि में,
धर्म का निर्घोष गुंजित था अवनि में,
वधिर जिससे श्रवण जग के सुन न पाये,
सत्य के स्वर मन्द जो सर्वत्र छाये।

आरती के दीपकों की जगमगाती,
शत शिखायें, अन्ध जग के दृग बनाती,
ज्योति के अतिरेक से जिसमें भुलाये,
प्रकृति या भगवान को जन लख न पाये।

देवता की अर्चना के पुष्प-चय का,
गन्ध का मधु कोष, भक्तों के हृदय का
बन रुचिर आमोद सब दुर्गन्ध जग की
था भुलाता औ अशुचिता धर्म-मग की।

भक्त औ भगवान का मन-मधुप फूला,
गन्ध रस से, राग में तल्लीन भूला
सुधि जगत के कण्टकों की पुण्य क्षण में,
घाव करते जो मृदुल जग के सुमन में।

स्वर्ण थालों मे सजे नैवेद्य-चय थे,
देख उनको हृष्ट भक्तों के हृदय थे,
अन्नपूर्णा बस रही भगवद्-भवन मे,
दीनता थी दुखी दीनों के सदन मे।

दूर जग के दैन्य से औ दूषणो से,
हो अलंकृत स्वर्ण-रत्न-विभूषणों से,
स्वर्ण के सिंहासनो पर राजते वे,
प्रकृति-लक्ष्मी सहित सुन्दर साजते वे,

भक्त-रत्नों की अलंकृत अर्चना से,
ऋद्धि के रमणीय स्वर की वन्दना से,
तुष्ट हो भगवान जड़ भी मुस्कराते,
सिद्धि के वरदान सब उन पर लुटाते।

नगर के श्रीमान सदनों की लजीली,
रूप, छवि, शृंगार से श्री-सी सजीली,
देवता पर रूप छवि की आरती-सी,
अर्चना की स्वरित सुन्दर भारती-सी,

युवतियाँ एकत्र मन्दिर के अजिर में,
भर हृदय का राग युग लोचन मदिर मे,
दर्शको में धर्म की श्रद्धा जगातीं,
धर्म-चर्या थी सफल सबकी बनातीं।

भक्त औ भगवान पूर्ण कृतार्थ होते,
प्राप्त दोनों को सकल परमार्थ होते,
धर्म की दृढ़ नींव होती अवनि तल में,
पूर्ण होते काम मन के धर्म-फल से।

अर्थ, छवि औ काम के दुर्बल भिखारी,
. देव मन्दिर के सकल अधिकृत पुजारी,
पुष्प, अक्षत, गन्ध, केशर, चन्दनों से,
उच्च स्वर के मुक्तकण्ठ प्रवन्दनों से,

देवता को अष्ट-अंग प्रणाम करते,
इन्द्रियों से अर्चना अभिराम करते,
तुष्ट उससे पूर्ण करुणाधाम होते,
पूर्ण उनके चित्त के सब काम होते।

धर्म- बनता अर्थ का व्यापार जैसा,
कर्म बनता काम का शृंगार जैसा,
कल्प-मोल समान अर्थ अपार आते,
काम-फल से रूप के उपहार आते।

मुक्ति सब की कामना थी बस वचन से,
स्वर्ण-बन्धन बाँधते सब किन्तु मन से,
मोक्ष था सबका अभीप्सित इष्ट मुख से,
किन्तु सब सन्तुष्ट होते देह-सुख से।

भूमि पर भगवान का ऐश्वर्य छाया,
किन्तु मन में रम रहे थे मोह माया,
स्वयं मायाजाल में भगवान खोये,
मोह-निद्रा में, सजग भी भक्त सोये।

अर्थ ही परमार्थ बनकर सब जनों का,
बना अन्तिम साध्य सारे साधनों का,
सरल औ बंकिम जगत के मार्ग सारे,
सब दिशा में अर्थ की थे पग पसारे।

अखिल जीवन-तत्व की लघु कारिका-सी,
एक चपला विश्व की ध्रुव तारिका-सी,
अखिल कर्म-विधान का आदेश करती,
अखिल गति का पथ-दिशा निर्देश करती।

सर्वग्रासी अर्थ पूर्ण अनर्थ होता,
स्वयं के अतिरेक में निज अर्थ खोता,
धर्म-मोक्ष समेत आत्मा दीन होती,
काम के हित देह भी श्री-हीन होती।

हृदय औ मस्तिष्क दोनों क्षीण करता,
बाहुओं को दीन औ बल-हीन करता,
उदर बढ़ता अर्थ की अति कामना-सा,
रूप बनता स्वयं रूप-विडम्बना-सा।

योग अविचल एक आसन पर लगाये,
अर्थ-आगम में सकल परमार्थ पाये,
भोग, भोजन आदि की चिन्ता विसारी,
और भूले साधना में पुत्र-नारी।

अर्थ-योग अनर्थ का साधन बना था,
अर्थ-हीन समस्त-सा जीवन बना था,
अर्थ के ही अर्थ केवल अर्थ-श्रम था,
अर्थ-साधन अत. केवल व्यर्थ भ्रम था।

किन्तु इस चिर भ्रान्ति में ही प्रात होते,
स्वर्ण-वर्णों मे दिवा-सपने सँजोते,
धर्म-काम-समेत तजकर मुक्ति घर मे,
सजग चलते अर्थ की संकुल डगर में,

हो सजग नर-रत्न लक्ष्मी के विपणि में,
खोजते थे स्वर्ग मिट्टी की अवनि में;
अर्थ का व्यापार दिन के संग खुलता,
लाभ की संयत तुला पर विश्व तुलता।

धूप अक्षत पुष्प से कर देव-पूजा,
मौन मन मे मनाते सागर-तनूजा;
अर्थ की ही प्रार्थना कर जोड़ करते,
याचना के वचन मन से होड़ भरते।

भूमिका में धर्म की इस दिव्य-विधि की,
कल्पना में नित्य की नव भव्य निधि की,
अर्थ के व्यापार के सब हाट खुलते,
ऋद्धि-मन्दिर के समस्त कपाट खुलते।

अर्थ का व्यापार रवि के संग बढ़ता,
औ तुला पर ऋद्धियो का रंग चढ़ता,
लाभ से युत हृदय का सन्तोष बढ़ता,
पलों पर पल कल्पना का कोष बढ़ता।

स्वर्ण बिखराती हुई नित साँझ ढलती,
और चाँदी लुटाती रजनी निकलती,
कल्पना के कुसुम-से नक्षत्र खिलते,
नयन-नभ-पथ में अयुत सर्वत्र मिलते।

आरती में सजग कर चिर अर्थ-ज्वाला,
कर विपणि में रुचिर उज्ज्वल दीपमाला,
कर सुगणना नव्य आगत मूल धन की,
देखते थे राह श्री के आगमन की।

इस प्रकार समस्त जीवन अर्थ-पर था,
अर्थ-हित साधन-सदृश जीवन अमर था,
अर्थ-वैभव के प्रदर्शन-पर्व आते,
अर्थ-संचय को कृतार्थ वही बनाते।

कल्प से गृह औ विपणि में कर उजाला,
वर्ष के आरम्भ में कर दीप-माला,
दूर करते तिमिर जग से दीनता का,
क्षय न होता किन्तु मन की हीनता का।

आरती शुचि स्वर्ण थालों में सजाकर,
वाद्य उत्सव-हर्ष के बहुविध बजाकर,
स्वर्ण दीपक से समर्चित कर रमा को,
सफल करते सिद्धि की सुविगत समा को।

सिद्धि-दायक देवता को पूर्वक्रम से,
पूज करके, स्वर्ण की नूतन कलम से,
लाभ-शुभ के सहित नूतन पत्र पट पर,
वर्ष का आरम्भ करते मुद प्रकट कर।

दक्षिणा देकर द्विजों को तोषकारी,
भाग्य-वर से पूर्ण करते कोष भारी,
द्वार जिनके पर्व पर ही प्रकट खुलते,
जब विभव से लोक के दुर्भाग्य तुलते।

जन्म से परिणय मरण तक पर्व आते
विविध, वैभव का महोत्सव सर्व पाते;
जान पड़ता भवन श्री के श्रेष्ठ कुल-सा
उमड़ता था भाव वैभव का तुमुल-सा।

स्वर्णतोरण तुल्य गृह के द्वार सजते,
हर्ष के निर्घोष-से बहु वाद्य बजते,
भर विपुल आनन्द सबके मुदित मन में,
भाग्य से शिशु जन्म होता श्री-सदन में,

जब कि दीनों की दुखी कितनी बिचारी।
क्षीण मातायें वहन कर गर्भ भारी,
निपट साधनहीन पशुओं तुल्य देतीं
जन्म शिशु को; चीथड़ों में ढाँप लेतीं।

जब कि लक्ष्मी की कृपा के पात्र सारे,
वस्त्र औ आभूषणों से तन सँवारे,
स्वर्ण-झूलों से मधुर घण्टा बजाते
हाथियों पर बैठ परिणय हेतु जाते,

अल्प-साधन दीन का अनुराग मन का
दीन होता, व्यर्थ-श्रम कर अनुकरण का;
दीन दुखियों की उदास-मना प्रियाये
म्लान-मन करती प्रणय की प्रक्रियायें।

स्वर्ण-रत्नों से विभूषित जगमगातीं,
अप्सराओं-सी सुसज्जित गीत गातीं,
युवतियों के यूथ छवि-वैभव लुटाते,
पर्व पूर्ण समृद्ध यौवन का मनाते।

जब मरण भी मान-वैभव-पूर्ण बनता
सत्य पथ भी स्वर्ण-रज से पूर्ण बनता,
मर कुटी में, धूल में अज्ञात सोते
दीन कितने! भाग्य को निज शेष रोते!!

इस प्रकार समस्त जीवन अर्थ-पर था,
अर्थ-हित साधन-सदृश जीवन अमर था,
अर्थ-वैभव के प्रदर्शन-पर्व आते,
अर्थ-संचय को कृतार्थ वही बनाते।

कल्प से गृह औ विपणि में कर उजाला,
वर्ष के आरम्भ में कर दीप-माला,
दूर करते तिमिर जग से दीनता का,
क्षय न होता किन्तु मन की हीनता का।

आरती शुचि स्वर्ण थालों में सजाकर,
वाद्य उत्सव-हर्ष के बहुविध बजाकर,
स्वर्ण दीपक से समर्चित कर रमा को,
सफल करते सिद्धि की सुविगत समा को।

सिद्धि-दायक देवता को पूर्वक्रम से,
पूज करके, स्वर्ण की नूतन कलम से,
लाभ-शुभ के सहित नूतन पत्र पट पर,
वर्ष का आरम्भ करते मुद प्रकट कर।

दक्षिणा देकर द्विजों को तोषकारी,
भाग्य-वर से पूर्ण करते कोष भारी,
द्वार जिनके पर्व पर ही प्रकट खुलते,
जब विभव से लोक के दुर्भाग्य तुलते।

जन्म से परिणय मरण तक पर्व आते
विविध, वैभव का महोत्सव सर्व पाते;
जान पड़ता भवन श्री के श्रेष्ठ कुल-सा
उमड़ता था भाव वैभव का तुमुल-सा।

हस्तगत साधन बना उत्पादनों के,
कर नियन्त्रित कार्य सारे, कारणों के,
अर्थ-पति बन, विश्व में शासन चलाते
श्रमिक जीवन-भरण का अधिकार पाते।

अर्थपतियों के लिये सब श्रेय जग के,
और उनके ही लिये सब प्रेय जग के;
दीन का अधिकार केवल पूर्ण श्रम था
भार का निर्वहण उसका कार्य-क्रम था।

अमृत-सी दुर्लभ बनी थी मात्र रोटी,
ऋण बना कैलास की दुर्गम्य चोटी,
मुक्ति था बस काम का पशु भोग उनको,
पर्व पेय, विराम था बस रोग उनको।

चुगा चींटी और मछली भूमि-जल मे,
अर्थ की ध्रुव साधना कर धर्म-छल में,
वे अहिंसा, धर्म औ नय के पुजारी,
सोखते थे दीन की श्रम-शक्ति सारी।

पान, भोजन और भेषज के विधाता
बन, बने थे अर्थपति सब प्राणदाता;
किन्तु उनमें दे मधुर विष प्राण हरते
मनुज के शव पर महल निर्माण करते।

दीन कुटियों से कलंकित स्वर्ण-पुर में,
दीन दुखियों के व्यथा से पूर्ण उर में,
आग किस विद्रोह की अनजान जलती
किस प्रलय की भूमिका अज्ञात पलती।

सर्ग २३

त्रिपुर उपचार

परशुराम के शक्ति-योग के धरणी पर सजीव अवतार
सेनानी ने किया सुरो मे नव जीवन का चिर संचार,
मिला सिद्ध नेतृत्व सुरों की सेना को बन कर वरदान.
हुआ सुरो का शोणितपुर में सफल अत. अंतिम अभियान।

आत्म-योग से अन्वित होकर बनी शक्ति जीवन का श्रेय,
संघ-शक्ति से रक्षित होकर बना दिव्य अध्यात्म अजेय,
देवो के जीवन में जाग्रत शक्ति-श्रेय का अभिनव बोध
असुर-शक्ति के अनाचार का बना शक्ति-बल से प्रतिरोध।

देवो के उर का सम्वेदन बन त्रिभुवन का दुख अपमान,
असुरो के अंतिम अवसर-सा हुआ प्रकट बनकर अभिमान,
असुरों के संचित पापो का हुआ युद्ध फल-सा दुर्वार,
अनाचार के अंतिम क्षय-सा विदित हुआ तारक-संहार।

पर प्रारब्ध पाप के फल-से वे तारक के औरस तीन,
होने लगे फलित त्रिभुवन मे प्रकृति-क्रिया से पूर्ण प्रवीण,
स्नेह-दर्प के मिले पिता से शैशव मे पोषित संस्कार,
हुये त्रिपुर मे प्रकट धर्म, बल, वैभव के बनकर अतिचार।

प्रकृति धर्म के प्रकट अनय का केवल शक्ति-योग प्रतिकार,
किन्तु शक्ति से शिष्ट न होते मन के सूक्ष्म विकृत संस्कार,
बन सकती हैं समर-भूमि मे उद्धत बल की रक्त समाधि,
हो सकती उच्छिन्न न बल से पर जीवन की व्यापक व्याधि।

दृप्त सैनिको का संभव है अस्त्र शस्त्र बल से संहार,
किन्तु पलायन और छद्म पर नहीं शक्ति बल का अधिकार,
धर्म-शांति औ सुख-समृद्धि के त्राता-दाता भूप उदार,
अनाचार का गुप्तचरों के द्वारा करते छद्म प्रचार।

असुरों के अतिचार, सुरों की जागृति का संचित परिणाम,
हुआ शक्ति की चरम परीक्षा तुल्य रक्तपुर का संग्राम,
असुर शक्ति के चरमविन्दु-से थे तारक के अत्याचार,
श्रेय शक्ति की फल काष्ठा-सा था उसका रण में संहार।

पय. पान से मधुर न होते यद्यपि नागों के विष-दन्त,
होता प्राकृत-शक्ति-अनय का नहीं शक्ति-बल रण में अंत,
सजग विश्व का सतत अहर्निश स्नेह-शक्ति-पूर्वक अभियान,
करता है विश्वस्त विश्व मे शान्ति-स्वर्ग का सहज विधान।

दर्भ काँस के उन्मूलन-सा सिद्ध हुआ तारक-संहार,
हुये अंकुरित फिर त्रिपुरो में शेष सुप्त आसुर संस्कार,
विवश पलायन के आगन्तुक भय, करुणा औ उन्मद क्रोध,
ज्ञान-दर्प-वैभव-कांक्षा मे बने पिता के चिर प्रतिशोध।

राजतपुर मे ज्ञान-धर्म का सूक्ष्म छद्म बन करुणा-भीति,
फलित हुआ कमलाक्ष कूट की बन अधर्म की रुचिर अनीति,
शक्ति और वैभव से मोहित दुर्बल, दीन, अकिंचन ज्ञान,
बन अज्ञान बना जीवन का मायामय नय-धर्म-विधान।

आयसपुर मे दर्प-क्रोध से उन्मद भय से कुण्ठित काम,
फलित हुआ विद्युन्माली के बल-वैभव में फिर उद्दाम,
अज्ञ, दीन, बल-हीन प्रजा की अल्पदृष्टि में बनकर शान्ति,
प्रकट हुई शासन सेवा औ पद-नियमों की भूषित भ्रान्ति।

कांचनपुर में भय-करुणा औ क्रोध-दर्प का द्वन्द-विकार,
शान्ति, समृद्धि और सुख का बन छद्म हुआ सहसा साकार,
जिसकी माया के विमोह मे स्वप्नों के स्वर्णिम प्रासाद,
कर निर्मित, श्रम औ सेवा का वहन कर रहे जन अवसाद।

राजतपुर में देख पुजारी औ भक्तों का पृथु पाखण्ड,
तथा धर्म में भी सत्ता औ शासन का आतंक अखण्ड,
धन-वैभव की माया का लख मन्दिर मे महिमा-विस्तार,
कर उठता दीनो का अन्तर किस ईश्वर की आर्त्त पुकार।

आयसपुर मे देख शक्ति औ शासन की प्रभुता उद्दाम,
औ उन्मद विलास का नर्त्तन देख अनर्गल औ अविराम,
देख धर्म औ धन दोनो का सत्ता-शासन के प्रति मोह,
कर उठता था दीन श्रमिक का हृदय सभी के प्रति विद्रोह।

कांचनपुर मे देख अर्थ की छाया में पल रहे अनर्थ,
धर्म और शासन दोनों को देख श्रेय-नय मे असमर्थ,
जीवन औ श्रम की छाती पर चलता धन-जन का व्यापार,
देख दीन के प्राण क्रान्ति की कर उठते थे मौन पुकार।

धर्म, शक्ति, धन की माया में हुआ सत्य जीवन का लुप्त
उगल रहे थे विष अनर्थ का कौन अनर्गल विषधर गुप्त,
हुआ विपाक्त वायुमण्डल था सिसक रहे जीवन के प्राण,
विकल हुये अपनी कृतियों से भक्त, भूप, श्रीपति भगवान।

त्रिपुरों के अनर्थ उपचय से विकल हो उठे तीनों लोक
देवो का जय-हर्ष अन्तत: बना हृदय का नूतन शोक
जिससे आकुल हो जयन्त भी धीर चित्त मे हुआ उदास
गुरुओं का आदेश ग्रहण कर गया स्वयं ब्रह्मा के पास।

एकाकी जयन्त को आया देख अचानक अपने धाम,
बोले ब्रह्मा, "वत्स विजय कर शोणितपुर का गुरु संग्राम,
स्थापित कर चिर शान्ति, अकंटक किये स्वर्ग सम तीनों लोक.
किन्तु सुमन में छिपा कीट-सा कौन नवीन तुम्हारे शोक ?

पाकर तुम-सा पुत्र शची औ इन्द्र हुये त्रिभुवन मे धन्य,
शासन, धर्म, विभूति, कीर्ति मे कल्प तुम्हारा वत्स! अनन्य;
किन्तु विजय के हर्ष पर्व में आई सहसा चिन्ता कौन?
करो हृदय की व्यक्त वेदना, करो वचन से रंजित मौन।"

कर विनम्र निज शीष, जोड़ कर, बोला सादर वीर जयन्त—
"नाथ! आपके ज्ञान चक्षु-से खुले चतुर्दिक दिव्य दिगन्त,
भूमि, स्वर्ग, पाताल लोक के मन-जीवन की कोई बात
रहती अविदित नहीं आपको किसी काल किंचित् भी तात।

हलका करने के निमित्त ही किन्तु हृदय का दुर्वह भार,
विनय निवेदन का अभीष्ट है मुझे क्रमागत शिष्टाचार,
धड़क रहा मेरी हृद्गति मे वह त्रिलोक का हा हा कार
मेरी वाणी मे त्रिलोक का स्वर कर रहा विनीत पुकार।

शोणितपुर के महासमर में करके तारक का संहार
हमने समझा हुआ आज से निष्कंटक सारा संसार.
किन्तु पलायन कर तारक के आतंकित वे औरस तीन,
त्रिपुरो के अधिनायक बनकर रहे विश्व का सुख सब छीन।

धर्म, शान्ति, शासन, समृद्धि का देकर दीन विश्व को दान,
सोख रहे जीवन जीवो का, रच अनेक दुर्भेद्य विधान,
दुर्बल, दीन, दु.खी जीवो के त्रस्त, भीत औ आकुल प्राण,
आज आपके निकट मांगते धात.! पुन अनय से त्राण।

हुये पिता के तुल्य आपके कर से ही ये दुर्जय वीर,
रक्षा-कवच समान त्रिपुर के वे दुर्भेद्य सुदृढ़ प्राचीर,
जिनके उद्भव औ विकास मे रहा आपका वर आधार,
उनका ह्रास, विनाश, पराभव, सभी आपका ही अधिकार।

राजतपुर में ज्ञान बन रहा पुन: शक्ति और धन का दास ,
माया का आडम्बर बनकर धर्म कर रहा निज उपहास ,
प्रकृति-अर्चना से मानो हो जड़ चैतन्य-रूप भगवान ,
बने दीन दुखियों के निष्ठुर क्रूर शासकों के उपमान।

आयसपुर में शक्ति और बल दर्प-विभव का कर विस्तार ,
दान कर रहे दीन जनों को जीवन का महर्घ अधिकार ,
शासन और शक्ति के मद से दृप्त सभी उन्मद राजन्य
विवश प्रजा में नित्य कर रहे नाथ ! अहर्निश पाप जघन्य।

कांचनपुर में ज्ञान-शक्ति औ धर्म-मान सब बन विक्रेय
अर्थ मात्र मे अन्वित करते जीवन के सब सुन्दर श्रेय
सोने के महलों के पद मे पड़े झोंपड़े पंक समान
वैभव के पापो की निधि का करते केवल अनुसन्धान।

नाथ ! त्रिपुर मे ज्ञान, शक्ति, धन बन जीवन के दुर्मद साध्य
फैला रहे अखिल त्रिभुवन मे अनाचार अतिचार अबाध्य।
दीन दुखी आतंकित विस्मित दलित विवश हत भ्रान्त अधीर
प्रजा चाहती सत्य, श्रेय औ सुन्दर मन से युक्त शरीर।

नाथ ! त्रिपुर की दीन प्रजा के अन्तर का वह हाहाकर
बन आया मेरी वाणी में विवश विनय का शिष्टाचार
आज त्रिलोकों के मन-मुख का प्रतिनिधि बन मैं विनत जयन्त
सृष्टि-विधाता से अभियाचित करता इन त्रिपुरों का अन्त।"

हो प्रसन्न, गम्भीर शान्त मुख उज्ज्वल वाणी से समुदार
बोले ब्रह्मा, चतुर्वदन से उठी एक स्वर की झंकार ,
"अविदित नहीं मुझे त्रिपुरो का वत्स ! वेदनामय वृत्तान्त
कर सकता है अन्त न उनका कभी शक्ति का किन्तु कृतान्त।

असुर-शक्ति के तप के बल से हुआ तात ! इनका निर्माण ,
है निमित्त भर सर्ग-नियम का मेरा अवधि-पूर्ण वरदान ,
एकाकी तारक का सम्भव शक्ति-योग से था संहार ,
पर त्रिपुरों का नहीं शक्ति से सम्भव है करना प्रतिकार।

सर्ग-नियम में नहीं अनय का सम्भव है कोई प्रतिरोध ,
है उसका उपचार शक्ति से अन्वित शिव का शाश्वत बोध ,
रक्षा औ पालन के प्रभु हैं तेजमूर्ति वे विष्णु उदार ,
यदि अनन्त है अनय, तथाविध हैं अनन्त उनके अवतार।

रक्त-बीज है अनय, शक्ति से संभव क्या उसका उच्छेद ?
प्रति विनाश के रक्त-क्षेत्र में होते नित अनन्त उद्भेद ,
प्रकट असुर का सम्मुख रण मे करती युद्ध शक्ति संहार
किन्तु असुरता का कुल-क्रम से होता है प्रच्छन्न प्रचार।

यदि अभीष्ट है तुम्हे त्रिपुर के जीवन का करना उद्धार ,
मेरे आशीर्वाद सहित तुम जाओ श्री शंकर के द्वार ,
त्रिपुर-अनय के उन्मूलन मे एक मात्र शिव पूर्ण समर्थ
केवल ज्ञान-शक्ति के साहस हैं अपूर्ण, इस कारण व्यर्थ।

सभी कार्य हैं सर्ग-सरणि के पर्व-अनुक्रम-युत सोपान
शिव के कार्यों में भी मेरी सेवा का सहयोग समान ,
जीवन के रथ का संचालन जिधर करेंगे मंगलधाम
उसके नम्र सारथी का पद मान्य मुझे है सहित प्रणाम।"

सुन ब्रह्मा के वचन ज्ञान से दीपित हुआ जयन्त कुमार ,
संसृति का शिव सत्य भव्य बन हुआ लोचनो में साकार ,
कर प्रणाम, लेकर ब्रह्मा का आशीर्वाद तुल्य वरदान ,
किया वीर ने स्नेह दर्प से श्री कैलास ओर अभियान।

उमड़ रहा था हृदय प्रेम से, फड़क रहे थे बहु शुभ अंग,
चरणों का गतिवेग बन रही मन की महिमामयी उमंग,
कितनी स्मृतियाँ सजग हो रहीं बन अतीत की भूति उदार,
थे मन के संकल्प रच रहे कितने भव्य नये संसार।

देख दूर से ध्रुवतारा-सा वह गिरिपति का उज्ज्वल कूट,
उमड़ हृदय से हर्ष दृगो मे पड़ा रुद्ध निर्झर-सा फूट,
सेनानी को भेंट हृदय से पूर्ण हुये मानों सब काम
दोनो ने युगपत् गिरिजा के किया पदो मे नम्र प्रणाम।

सहज स्नेह से कोमल कर से छू गिरिजा ने उनका शीष
गद्गद् वाणी से दोनों को दिया मधुर मंगल आशीष,
उत्सुकता से फिर जयन्त से पूछा, "सकुशल स्वर्ग समाज
किस कारण से वत्स! अचानक हुआ आगमन तेरा आज?

"कुशल सहित है शची हमारी औ प्रसन्न हैं तेरे तात!
और वधू आनन्द सहित है, शेष न अब कोई उत्पात
सूर्य, चन्द्र, यम, वरुण सहित हैं पूर्ण कुशल पूर्वक आचार्य
होते हैं सानन्द अप्सरा औ किन्नरियों के सब कार्य।"

तब जयन्त ने कहा "कुशल ही सदा स्वर्ग मे रहती मात!
जब तक हैं प्रसन्न हम सब से ये करुणामय पद-जलजात
विषम प्रकृति की सृष्टि किन्तु यह है दुर्गम विस्तृत संसार,
होते ही रहते है इसमे नित्य नये उत्पन्न विकार।

बन्धु स्कन्द ने पूर्व स्वर्ग में कर अपूर्व जीवन संचार
खोला उसके लिये विजय के शक्तियोग का नूतन द्वार,
शोणितपुर में सेनानी ने तारक का करके संहार
किया सदा को दूर स्वर्ग से असुरों का आतंक अपार।

किन्तु पलायन कर तारक के पुत्र युद्ध से मातः तीन,
त्रिपुरों के अध्यक्ष स्वयंभू, बने विश्व-आतंक नवीन
रच कर आयस, रजत स्वर्ण के त्रिपुरों में दुर्भेद्य प्रकोट
अत्याचार अनेक कर रहे धर्म, अर्थ, शासन की ओट।

शक्तियोग से सेनानी के हुआ स्वर्ग तो पूर्ण अजेय
किन्तु सुरक्षित हुआ न छल की आशंका से जग का श्रेय
ब्रह्मा का आदेश ग्रहणकर आया आज आपके पास,
व्यर्थ स्वर्ग की विजय, विश्व में शेष रहे यदि सारे त्रास।

प्रार्थनीय हैं आज हमारे विश्ववन्द्य कैलास-अधीश
मिले विश्व को आज ईश से मंगल का अन्तिम आशीष
विश्वनाथ की परम कृपा से मिटें विश्व के सारे त्रास,
विश्व बने उनकी विभूति औ घर घर बने दिव्य कैलास।"

सुन जयन्त के वचन उमा ने कहा दृगों में भरकर स्नेह
"तात! त्रिपुर के जन जीवन है शोचनीय अति निस्संदेह
कर न सकी यदि शक्ति तुम्हारी संरक्षित जीवन का क्षेम
ज्ञान-शक्ति की स्फूर्ति चाहती अभी कान्ति-सा कोमल प्रेम।

इसी प्रेम के बिना बन गया राजतपुर का ज्ञान विमोह
इसी प्रेम के बिना छा रहा आयसपुर में बल-विद्रोह
इसी प्रेम के बिना स्वर्णपुर पाल रहा केवल व्यापार
बिना प्रेम के ज्ञान, शक्ति औ अर्थ सहज बनते अतिचार।

यौवन की उद्दाम शक्ति कर असुरों का रण में संहार
कर सकती उन्मत्त अनय का प्रतिबल से केवल प्रतिकार
शोणित का शोणित से करके ज्ञान-दीप्त निर्भय प्रतिशोध
उच्छृंखल अनीति का करती यद्यपि पूर्ण सफल प्रतिरोध।

रक्त-बीज यह योनि असुर की दुर्विनीत अत्यन्त दुरन्त,
क्या-गृह गृह के शोणितपुर में हो सकता है युद्ध अनन्त,
नहीं देवसेना कर सकती त्रिपुरों का युगपत् उद्धार
जीवन की सत्ता में दुष्कर है करना निर्बीज विकार।

प्रकट असुर का हो सकता है ज्ञान और बल से संहार
पर प्रच्छन्न असुर का दुष्कर वत्स! युद्ध बल से उपचार
एक तारकासुर की यद्यपि शोणितपुर मे बनी समाधि
किन्तु त्रिपुर की त्रिगुण सृष्टि यह हुई अनंत विश्व की व्याधि।

पूर्ण ज्ञान के विग्रह शिव ही दे सकते वह शुचि आलोक,
शक्ति-प्रेम जिससे अन्वित हो बना सके यह विश्व अशोक,
एक पाशुपत ही कर सकता त्रिपुरों का युगपत संहार,
कर सकती है विश्व जागरित केवल डमरू की झंकार।

आओ वत्स! विश्व-मानव की पीड़ा के जीवन्त प्रतीक!
पूर्व स्वर्ग की वह मरीचिका कर मति-भ्रम के तुल्य अलीक,
करो ईश के निकट निवेदन वे अपने उज्ज्वल उद्‌गार;
होकर द्रवित अवश्य करेंगे शम्भु त्रिपुर-जन का उद्धार।

वत्स! तुम्हारे स्निग्ध हृदय का परिचित बन्धु, परीक्षित स्कन्द
सहयोगी है सदा तुम्हारा यथा काव्य का संगत छन्द,
औ अनुक्त ध्वनि की गरिमा-सी मैं तुमसे पुत्रों से धन्य,
अवनि-गंध-सी बन कुसुमों के वैभव मे अभिजात अनन्य,

कर शिव के चरणो में अर्पित सुमन प्रार्थना-से साकार,
हों कृतार्थ हम औ कृतार्थ हो अनुकम्पा से यह संसार,
आओ मेरे हर्ष-गर्व-से युगल-बंधु तुम मेरे साथ
होंगे नय से और विनय से प्रीणित वत्स! सदा गिरिनाथ।"

जाकर उमा, जयन्त, स्कन्द ने शिव चरणों में किया प्रणाम
आशीर्वाद समेत ईश ने स्वागत किया सहज अभिराम,
स्नेह सहित पूछा जयन्त से "कुशल पिता और माता तात !
हैं सकुशल गुरु, सूर्य, चन्द्र युत देवलोक के जन अभिजात" ।

"नाथ ! आपकी अनुकम्पा से सदा कुशल पूर्वक सुरलोक
किन्तु अनर्थ-अनय त्रिपुरो का बना हमारा नूतन शोक,
यौवन औ अमरत्व भोग से देवलोक अब है न कृतार्थ
त्रिभुवन के सुख शान्ति स्वर्ग का बना अभीप्सित नव परमार्थ ।

सेनानी ने शोणितपुर मे करके तारक का संहार,
किया पराजय की पीड़ा से नाथ ! हमारा चिर उद्धार,
विजय और जागरण स्वर्ग के बने नवीन कल्प के मंत्र,
त्रिभुवन का आदर्श बन रहा आज स्वर्ग का नूतन तन्त्र ।"

भरकर दीर्घोच्छ्वास शोक से बोला शिव से वीर जयन्त
"किन्तु विश्व के परितापों का हुआ न शोणितपुर मे अन्त,
तारक के सुत तीन युद्ध से नाथ ! पलायन कर चुपचाप
त्रिपुरो के अधिपति बन देते त्रिभुवन को बहु-विध सन्ताप ।

ज्ञान-धर्म, शासन-रक्षा औ शान्ति-समृद्धि-नीति का छद्म
बन अधर्म, अतिचार, प्रशोषण सिद्ध हुआ पापों का सद्म ;
धर्म-भ्रान्ति, शासन-मरीचिका औ समृद्धि-छल से आक्रान्त
अन्तर से उद्विग्न हो रहा विश्व अधीर क्षुब्ध औ भ्रान्त ।

है अनीति के अवरोधन मे अक्षम विधि का सर्ग विधान,
और विष्णु का पालन केवल शोणितपुर की विजय समान ;
हो सकती उच्छिन्न न इनसे नाथ ! अनय की गहरी मूल,
शाश्वत मंगल-शान्तिदायिनी केवल इन चरणों की धूल ।"

शिव बोले गम्भीर शान्तिमय वचन स्नेह से पूर्ण उदार—
"प्रकृति और प्रतिरोध मार्ग से चलता यह अपूर्ण संसार;
ज्ञान-शक्ति संयोग विश्व का रक्षित करता पावन क्षेम,
त्रिपुरों से उद्धार विश्व का कर सकता पर जाग्रत प्रेम।

परशुराम ने ज्ञान-योग को अस्त्र-शास्त्र-बल की दे शक्ति
सजग ज्ञान तप के वैभव को अर्पित की अपूर्व अभिव्यक्ति,
बिना शक्ति के ज्ञान पंगु-सा होता सदा दीन श्री हीन,
माया के गम्भीर भ्रमर में होता है तृण तुल्य विलीन।

किन्तु जागरित देवों का वह शक्ति-योग से दीपित ज्ञान
कर सकता है शोणितपुर की युद्ध भूमि में विजय विधान,
त्रिपुरों के त्रिलोक में उगते असुरों के जो बीज अनन्त,
उनका उन्मूलन सम्भव है नहीं शक्ति से वीर जयन्त।

शोणितपुर को धो असुरों के शोणित से, कर पूर्ण पुनीत,
दुर्बलता को जीत शक्ति से हुये स्वर्ग के देव अभीत,
त्रिपुरो का दुख दैन्य आज यदि बना सुरों के मन का ताप
विश्व-प्रेम ही व्यक्त हो रहा सहसा उसमें उनका आप।

प्रेम असुर, नर, मुनि, देवों को धाता का अमूल्य वरदान
अन्तर्हित कर लेता तम में उसे असुर-नर का अज्ञान,
लेकर स्निग्ध ज्ञान का दीपक दो त्रिभुवन को ज्योतिर्दान,
मिलकर दीप अनन्त करेंगे स्वयं नये रवि का निर्माण।

जीवन के मधुरस से गीली शक्ति भूमि पर, ले छवि-ओज
विकसित होंगे अयुत स्वर्ग-से जीवन के अगणित अम्भोज,
अन्तरिक्ष में श्री सुषमा-सा उनका सौरभमय आलोक
जीवन के नूतन प्रभात में धन्य करेगा वत्स! त्रिलोक।

है वृद्धों का धर्म-विरत हो, दें तरुणों को जीवन-ज्ञान
शस्त्र-शास्त्र-का परशुराम की भाँति करें अभ्यास प्रदान,
वीतराग होकर योगी ही दे सकते हैं जग को प्रेम
ज्ञान, शक्ति औ प्रेम अखण्डित रक्षित करते शाश्वत क्षेम।

है युवकों का धर्म शिखा यह ले जीवन की उज्ज्वल हाथ
तिमिर लीन त्रिभुवन का गृह गृह करें ज्योति से पूर्ण सनाथ,
जन जन के अन्तर मे जाग्रत कर जीवन का ज्योतिर्दीप
करें मुक्ति के मुक्ताओ से फलित लोक के मानस-सीप।

मन-मुक्रों मे हो आभासित जीवन की निर्मल रस-कान्ति
जाग्रति का उल्लास बने, वह विवश स्वप्न की कोमल भ्रान्ति;
जीवन का गौरव जाग्रत हो बनकर सहज प्रेम की शक्ति,
जगे श्रेय, आनन्द, शान्ति मे लोकों की उज्ज्वल अनुरक्ति।

ज्ञान, शक्ति औ सहज प्रेम की बन कर जन जन जीवित मूर्ति
करें प्रभात वायु-से जग मे वितरित नव जीवन की स्फूर्ति,
उज्ज्वल स्वच्छ वायुमण्डल मे ले गम्भीर-मुक्त नित श्वास
भरें हृदय में स्वस्थ चित्त से नवजीवन का दृढ़ विश्वास।

जब गृह गृह में जाग्रत होंगे वीर जयन्त और दृढ़ स्कन्द
होंगे सहज प्रवाहित जग में जीवन-स्रोत नये स्वच्छन्द,
पद पद पर जिनके पुलिनों पर होंगे नये तीर्थ-निर्माण
जीवन का परमार्थ बनेगा पुण्य आचमन, सेवन, स्नान।

जीवन के पावस प्रवाह मे मन्दिर, घाट, दुर्ग, प्रासाद
बुद्बुद से विलीन होंगे, ले काई कर्दम सदृश विषाद,
सिकता के निर्मल पुलिनों में प्रतिदिन होगा पर्व समान
जीवन के कण कण मे होंगे पूजित भूति-भव्य भगवान।

होगा जाग्रत जन-जीवन की शक्ति ज्योति का जब विस्फोट,
कुहरे और तिमिर-से होंगे विगलित पल में सकल प्रकोट,
स्वप्नो के कल्पित भवनों-से दुर्ग, कोट, गढ़ औ प्रासाद
होंगे लीन शून्य अम्बर में बनकर जाग्रति के अवसाद।

यह अखण्ड आकाश बनेगा मुक्त सकल लोको की अंक,
मिट जायेगा भाग्य-चन्द्र का क्षय-विवृद्धि का अमिट कलंक,
मिल जायेगा सभी गृहों को मुक्त पवन-रवि का अधिकार
होगा सभी जीव-सदनो मे नभ, जल, पवन, तेज विस्तार।

जन जन के जाग्रत गौरव से कम्पित होगी अन्ध अनीति
दम्भ, दर्प, अतिचार आदि की प्रलय बनेगी भीषण भीति,
धर्म धुरन्धर अन्ध पुजारी मद-विभोर शासक सामन्त
धन-कुबेर, श्रीमान, दानपति सबका क्रान्ति करेगी अन्त।

मुख औ मुद्रा देख सदा जो करते थे प्रसाद का दान
भूल जायँगे उन्हे सहज ही चिर परिचित निष्ठुर भगवान,
खुल जायेंगे सहसा उनके मन मन्दिर के अन्तर्द्वार
माँगेंगे जाग्रत मानव से वे जीने का बस अधिकार।

जिनके सत्ता औ शासन का जन जन के उर में आतंक,
हो जायेंगे अस्त अचानक वे बल-छल के दीप्त मयंक,
जिनके इंगित पर नचते हैं पुतली-से मानव निष्प्राण
जाग्रत मानव की करुणा से माँगेंगे वे जीवनदान।

जिनके दान, दया पर पोषित मानव के सब पावन धर्म,
जिनके वैभव की आभा से आलोकित जीवन के कर्म,
जिनकी श्रद्धा से पोषित हैं जीवन के सब मिथ्या ज्ञान,
जाग्रत मानव से माँगेंगे वे केवल श्रम का वरदान।

भोग और सेवा का साधन बना जिन्हें कर निज आधीन,
धर्म शक्ति वैभव की दे नित भ्रान्ति, भीति, आभरण नवीन,
जीवन के अर्थों से वंचित कर, औ भरकर केवल गोद
तन, मन औ जीवन से करते नर-दानव वीभत्स विनोद,

वही नारियाँ जाग्रत होकर बन जीवन की शक्ति नवीन
बन्दीगृह के भग्न द्वार पर दीप धरेंगी अमृत अदीन,
मानव की संस्कृति का गौरव होगा नारी का सम्मान
नारी के स्वतन्त्र जीवन का स्नेह बनेगा चिर वरदान।

जिनके जीवन के विकास की गति भी बन्धन के अनुकूल,
जिनके जीवन की विभूति है गलियों की बस कृमिमय-धूल
शासन के आश्रय में पलते जो छाया के पुष्प समान
गृह गृह के मन्दिर में होंगे वे बालक पूजित भगवान।

प्रति मानव के शीष और मुख होंगे जब द्विज वेद-प्रवीण
प्रति मानव के बाहु बनेंगे क्षत्र शक्ति के रक्षा-लीन
प्रति मानव की जंघायें जब होंगी अर्थ-काम से पुष्ट
सेवा-श्रम से प्रति मानव के पावन पद होंगे सन्तुष्ट

तब मानव मानव बन मन से औ तन से बन देव समान
होगा नये विश्व का स्रष्टा औ पालक अनन्त भगवान
ज्ञान, शक्ति, श्रम और स्नेह से कर सुन्दर का चिर निर्माण
नव जीवन के पल-पर्वों मे नित्य करेगा हर्ष-विधान

सरल सत्य का प्रेम बनेगा स्वच्छ ज्ञान का उज्ज्वल धर्म
जग जीवन का मंगल होगा श्रेय कर्म का सुन्दर मर्म
सत्य, श्रेय, सुन्दर से अन्वित जीवन की कृतियाँ स्वच्छन्द
सुमनों की सौरभ आभा-सी बाँटेंगीं जग में आनन्द।

जब न शक्ति औ धन-वैभव का अनुचर बनकर पावन ज्ञान,
भ्रान्त-पतित होकर आत्मा का स्वयं करेगा नित अपमान,
ज्ञान, शक्ति-धन-श्रेय-स्नेह को अन्वित कर जीवन के साथ
होगा जब आनन्द शान्ति के नित्य लक्ष्य में पूर्ण सनाथ;

शक्ति और बल-दर्प ज्ञान को बना भीति से अपना दास,
जीवन के सौन्दर्य-शील का जब न करेंगे नित उपहास,
स्नेह-शील-नय से संस्कृत हो जब जीवन की मंगल-शक्ति
स्वच्छ-ज्ञान के शुचि प्रकाश मे होगी नित्य श्रेय की भक्ति;

धन औ वैभव शक्ति-ज्ञान को करके केवल छल से क्रीत
जब न बनेंगे चिर बिडम्बना जीवन की नय के विपरीत,
जब धन-वैभव निश्छल मन से ज्ञान-शील का कर सम्मान
संस्कृत शक्ति और बल द्वारा नित्य करेंगे श्रेय-विधान;

अपने शक्ति और वैभव में होकर पूर्ण प्रतिष्ठित ज्ञान
स्वच्छ ज्ञान के शुचि प्रकाश में शक्ति-श्रेय का कर निर्माण,
ज्ञान-श्रेय के अनुचर बनकर धन-वैभव हो पूर्ण कृतार्थ
जीवन के पुनीत संगम मे सिद्ध करेंगे नित परमार्थ;

जब जन जन के उर में पावन आत्मा का उज्ज्वल आलोक
होगा उदित स्नेह-करुणा का बन कर शुचि मंगल मय श्लोक,
जब जन जन के तन औ मन में छिपी संघ की शक्ति अपार
जाग्रत हो माँगेगी सहसा जीवन का गौरव-अधिकार;

जब जन जन के कण कण श्रम मे अन्तर्हित धन-विभव अपार
माँगेगा शासक स्वामी से शान्ति और श्री का अधिकार,
तब नव चेतनता से होगी भंग युगो की संचित भ्रान्ति
नवयुग का निर्माण करेगी श्रेय मुखी जीवन की क्रान्ति।

अयुत विश्वकर्मा जीवन के अखिल विश्व-जन जब निर्माण
होकर सजग सचेष्ट करेंगे विश्व प्रगति का नव-रथ-यान,
होगा तभी अनन्त त्रिपुर पर वत्स ! सफल अन्तिम अभियान,
होंगे तभी विमुक्त विश्व मे मुक्ति-शान्तियुत सुख के गान।

सतत प्रगतिमय युगलचक्र-से होंगे जिसके रवि औ सोम,
होगा जिसका छत्र अलंकृत नक्षत्रोंमय विस्तृत व्योम,
होगा दृढ़ रथनीड़ हिमालय प्रकृति सुसज्जित शोभाधाम,
पुष्कर भारतवर्ष बनेगा जिसका रुचि, निर्मल, अभिराम।

जिनकी धनुष्कोटि पर आश्रित उदय अस्त के पर्वत कूट
होंगे कूबर-युगल युगंधर अश्वयोग के यन्त्र अटूट,
अग्र अश्व के तुल्य युक्त हो ऋग्-यजु गति के बनें प्रमाण
शक्ति और महिमा से रथ का करें स्वयं ही पथ निर्माण।

इरावती औ सप्तसिन्धु के पार्श्वदण्ड से युक्त ललाम
पृष्ठ अश्व-से अनुगामी हों प्रबल अथर्व और प्रिय साम,
विश्व-विधाता ब्रह्मा लेकर कर मे अपने प्रणव-प्रतोद
करें सारथी बन संचालन जिसका स्वयं सदा सामोद।

सरस्वती जिसकी घंटा बन करें विश्व मे जय निर्घोष
संवत्सर गति बनकर जिसकी करे निवारण पथ के दोष,
मेरे आत्म रूप ही बन कर अखिल विश्व के मनुज प्रवीण
महारथी बनकर जीवन के हों जिसमें विधि से आसीन।

बना मेरु का धनुष, शेष की प्रत्यंचा पर कर सन्धान
अग्नि-शल्य-युत विष्णु-तेज के करें प्रचारित दुर्धर वाण,
एक पाशुपत से पलभर मे होकर भंग त्रिपुर के कोट
जीवन के सुन्दर अन्वय मे बनें श्रेय के अभिनव स्फोट।

शोणितपुर में वह देवों की विजय स्वर्ग-जय का आरम्भ;
त्रिपुर प्रकृति के पाठ तुल्य हैं उदित हुये हरने को दम्भ,
ज्ञान-शक्ति औ श्रेय-स्नेह का जाग्रत कर घर घर मे मन्त्र
जाओ वत्स! करो त्रिभुवन को सब बन्धन से पूर्ण स्वतन्त्र।

जब पावन गुरुमन्त्र तुम्हारा जगा ज्ञान के ज्योतिर्दीप
खोलेगा दीनों के मन के मुक्तामय चिर मुद्रित सीप,
पाकर परशुराम का तुमसे शक्ति-योग का नव सन्देश
जाग उठेगा क्रान्तिगीत बन दीनों का चिर पालित क्लेश।

सूखी आँखों का आँसू बन वत्स! तुम्हारा पावन स्नेह
संघ-शक्ति बन दूर करेगा दीनो के सब भय सन्देह,
छल-बल-धन से जो अब तक थे रहे सदा अल्पो के क्रेय
जीवन के अधिकार बनेंगे सबके वे जीवन के श्रेय।

लोक-विश्वकर्मा से निर्मित जग जीवन का नव रथ-यान,
सतत कालगति से त्रिपुरो पर वत्स! करेगा जब अभियान,
होगी कम्पित धरा, विकम्पित होंगे त्रिपुरों के अधिराज
दीनों के चरणो पर होगा नत प्रभुओं का दृप्त समाज।

जन जाग्रति की धाराओं मे जब पावस का प्रलय प्रवाह
उमड़ेगा अविदित गति-क्रम बन मानव का नूतन उत्साह,
तब तट के तरुओं से गिरकर शक्ति-विभव के सब प्रासाद
खण्ड खण्ड होकर दीनों के गृह के होंगे नव आह्लाद।

स्रोतों के निर्बाध वेग से होंगे भंग सभी प्राचीर
त्रिभुवन में संचार करेगा जीवन का उन्मुक्त समीर,
तुंग तरंगों पर बुद्बुद्-सी तरणी मे प्रभुओं के प्राण
कृती केवटों से माँगेंगे आँसू दे जीवन का त्राण।

अज्ञानों में ज्ञान उदय कर, दे अबलों को बल का बोध
और स्नेह से उन्हें दीप्तकर, करो त्रिपुर-गति का प्रतिरोध,
आत्मा का अनुरोध जागरित जीवन के गौरव का मान
बने तुम्हारी क्रान्ति-प्रगति के पन्थों का क्रम-दिशा विधान।

जाओ वत्स! तुम्हारी जय हो, जाये स्कन्द तुम्हारे संग
जीवन के सैनिक पुत्रों से सफल बने माँ की उत्संग,
त्रिभुवन की माताओं के सुत बन सेनानी और जयन्त
बनें श्रेय के प्रहरी बनकर क्रान्तिदूत जागरित अनन्त।

जाओ वत्स! तुम्हारी जय हो, हों सब सफल तुम्हारे कार्य
त्रिभुवन में प्रबुद्ध यौवन की शक्ति और गति हो अनिवार्य,
स्नेह और सौहार्द तुम्हारा बन मानव का चिर सम्बन्ध
करे श्रेय औ सुख से अन्वित जीवन के सारे अनुबन्ध।"

सुन शंकर के वचन ज्योति से आलोकित हो उठा जयन्त
नई दिशाओं से आभासित सहसा दर्शित हुये दिगन्त,
त्रिपुरों के कोटों में देखा एक नया जीवन-उद्रेक
खिले प्रलय प्लावन में जिसके भाव-कमल अभिरूप अनेक।

"नाथ! आपके अमृत वचन से हुआ आज जग पूर्ण कृतार्थ
त्रिपुरों की अनिवार्य विजय में फलित हुये सारे परमार्थ,
जगदम्बा का स्नेह, आपकी करुणा और स्कन्द का साथ
धन्य हुआ मैं सदा प्राप्तकर, विश्व हुआ यह पूर्ण सनाथ।

शंकर के चरणों में दोनों बन्धु झुका श्रद्धा से शीष,
और उमा का स्नेह भरा ले करुणा से अंचित आशीष,
चले नवीन पन्थ पर अपने करने त्रिभुवन का उद्धार
यथा स्वास्थ्य-वर-से त्रिभुवन के विचर रहे अश्विनी कुमार।

सर्ग २४

त्रिपुर उद्धार

शक्ति-स्नेह-अवतार तुल्य थे वे जयन्त सेनानी,
स्वर्ग-पन्थ पर सोच रहे गति त्रिभुवन की कल्याणी,
त्रिपुरों की पीड़ित जनता के उर मे भाव समाये
करते गूढ़ विचार स्वर्ग की सीमा पर वे आये।

सेनानी को जान स्वर्ग में फिर जयन्त-युत आया,
एक नया उत्साह सुरों के मन-भवनों में छाया,
नये स्वर्ग के निर्माता की कर उज्ज्वल अगवानी
हुई नवीन देवताओ की सहसा प्रीति पुरानी।

हुई सभा समवेत सुरों की फिर नन्दन कानन में,
आये सब सुर-लोक कुतूहल ले नूतन आनन में,
उत्सुक देख जयन्त सभा को उठकर सहसा बोला,
जीवन का नूतन रहस्य-सा उसने क्रमश. खोला—

"तुम्हें विदित है बन्धु! भयंकर शोणितपुर के रण में,
कर तारक-संहार हुये थे हम विजयी जीवन मे,
नव जीवन का गर्व पराजित स्वर्ग लोक ने पाया
आज हमारे शक्ति-योग ने स्वर्ग अजेय बनाया।

किन्तु विजय का गर्व आज भी बन्धु हमारा झूठा,
यद्यपि बना अजेय हमारा सुन्दर स्वर्ग अनूठा,
हैं तारक के पुत्र कर रहे शासन पूर्ण अनय का
त्रिपुरों मे रच जाल निरन्तर छल, बल, धन, भ्रम, भय का।

वे अभेद्य अपने कोटों में करते नित मनमानी
सहते अत्याचार विवश जन दीन-हीन अज्ञानी,
जीवन का अविचार बन रहा उनकी दैनिक चर्या
जग की भूति, कीर्ति, श्री, प्रतिभा करती विवश सपर्या।

राजतपुर के ज्ञान-लोक मे बना सत्य भी माया,
धर्म-ज्ञान पर अर्थ-काम का मोह भ्रान्ति-सा छाया,
वैभव के शृंगार भोग में ईश्वर जग को छलते
भक्ति और श्रद्धा के छल में अनय अनेकों पलते।

आयसपुर के शक्ति-लोक मे बल आतंक बना है,
दुर्बल दीनों को मन के भी सपने वहाँ मना हैं,
अर्थ और पद सेवा करते सामन्तों की भय से,
उन्मद दर्प द्यूत करता है नर-नारी के नय से।

कांचनपुर के दिव्य लोक में बना धर्म-बल धन है,
धनिको के अधिकार अकेले जीवन के साधन हैं;
धर्म और बल क्रीतदास-से धन की सेवा करते
दीन दुखी जन श्रम-सेवा में जीवन के हित मरते।

अंग अंग जकड़ा है जन का धन-बल के बन्धन में
धर्म भ्रान्ति बन रहा अनेकों दीनो के मृत मन मे,
फिर भी अन्तर में आकुल हैं त्रिपुरों के नर-नारी,
मूक क्रान्ति कर रही प्रतीक्षा केवल बन्धु हमारी।

है शिव का आदेश हमें जा त्रिपुरों के घर घर में,
होगी जीवन ज्योति जगानी दीनों के अन्तर में,
संघ-शक्ति का ज्ञान स्नेह से उनमे जाग्रत होगा
विश्व-क्रान्ति में सफल हमारे मन का अभिमत होगा।

दिखा सत्य का मार्ग सत्य औ स्नेह भरे जीवन से,
भ्रान्ति-भीति हम मिटा सकेंगे अन्तर्वेध वचन से,
ज्ञान-स्नेह से जाग्रत होगी नई शक्ति जीवन में,
बन हृदयों का संघ भरेगी जो गौरव जन-मन में।

जीवन के गौरव से परिचित त्रिभुवन के नर-नारी,
होंगे नई क्रान्ति के सैनिक त्याग हीनता सारी,
होगी व्यापक प्रलय उपस्थित एक साथ त्रिपुरों मे,
तब असुरों का पाप खुलेगा बन अभिशाप उरों में।

साहस, स्नेह, विवेक, शक्ति से कर निज पूर्ण उरों को,
स्वर्ग छोड़ कर चलें सभी हम अनय-त्रस्त त्रिपुरों को,
जीवन की जाग्रति का घर घर अलख अखण्ड जगायें
जन जन में भर नई चेतना सैनिक उन्हें बनायें।

जन जाग्रति की क्रान्ति बनेगी युद्ध नवीन हमारा,
होगी सुन्दर सृष्टि विश्व मे इसी क्रान्ति के द्वारा,
होंगे भंग प्रकोट रजत के, आयस के कंचन के,
होंगे जाग्रत आत्म-बोध से सुप्त मूल्य जीवन के।

'आओ त्रिभुवन की जाग्रति में स्वर्गिक विजय सफल हो,
यह जीवित आदर्श हमारा त्रिभुवन का सम्बल हो,
हो कृतार्थ देवत्व हमारा मानव के गौरव मे
बने स्वर्ग आलोक हमारा दानव के रौरव मे।

बैठ शक्ति औ साहस के दृढ़ गतिमय सुन्दर रथ में,
आओ लेकर ज्ञान-दीप हम चलें त्रिपुर के पथ मे,
बजा स्नेह का शंख क्रान्ति के पूर्ण नवीन प्रणव-सा
त्रिपुरों के नूतन विधान में रचें सर्ग-उत्सव-सा।"

कहते कहते यों जयन्त ने शंख गभीर बजाया
अन्तर का स्वर सेनानी ने भर निर्घोष जगाया,
देव-कुमारों ने शंखों में प्राण जगाकर अपने
भरे दिशाओं की पलकों में कितने सुन्दर सपने।

संग शक्ति-सी अप्सरियाँ भी चलीं समुत्सुक मन से,
चलीं योगिनी किन्नरियाँ भी पूत प्रशस्त चरण से,
चला त्रिपथगा तुल्य देवदल अभिमत त्रिपुर-दिशा में,
जगा ज्योति का पर्व त्रिजग की तमोनिलीन निशा मे।

प्रथम ज्ञानपुर में प्रवेशकर मन्दिर एक बनाया,
जिसने उस पुर के भक्तों का विस्मय सहज जगाया,
नहीं देवता उसमे कोई, नहीं आरती अर्चा,
पूजा और प्रसाद किसी की जिसमें सुनी न चर्चा।

विस्मित थे सब लोग देखकर मन्दिर एक निराला,
जगती थी जिसमे सन्ध्या में एक ज्योति की ज्वाला,
बैठ आसनों पर जिसके शुचि सुन्दर स्वच्छ भवन में
करते थे कुछ लोग ध्यान नित पूर्ण समाहित मन में।

घर घर मे जा उस मन्दिर के शुचि-नय-शील पुजारी,
करते दीनों की शुश्रूषा सेवा के व्रतधारी
स्नेह और सेवा से उनमे ज्ञान-प्रदीप जगाते
दिखा सत्य का रूप धर्म की भ्रान्ति निरूढ़ मिटाते।

आ उस मन्दिर के मुनियों से जन जिज्ञासा करते
धर्म, ज्ञान, आचार सत्य के प्रश्न सामने धरते
तो विवेक औ विनय सहित वे समुचित उत्तर पाते
खुलते सभी रहस्य रहे जो अब तक उन्हें भ्रमाते।

ईश्वर तो केवल जीवन है जन जन के अन्तर का,
रूप-नाम केवल आश्रय है मानव के दृग-स्वर का,
मूर्ति और मन्दिर निमित्त हैं ईश्वर की अर्चा के
धर्म-शास्त्र आधार मात्र हैं ईश्वर की चर्चा के।

धर्म-तत्व पूजा-चर्या का अनुभव में अन्वय है,
केवल एक प्रमाण धर्म का दैनिक जीवन-नय है,
विपुल प्रकृति के उपकरणों में धर्म तिरोहित होता,
आत्म का स्वर कण्ठ-वाद्य के कोलाहल में खोता।

यदि ईश्वर का वास विश्व के जन जन के अन्तर में,
तो मानव जंगम मन्दिर है ईश्वर का घर घर में,
उसके आत्मा औ शरीर की सेवा तन औ मन से
सबसे उत्तम धर्म, मुक्ति है उसके आराधन से।

मानव-हित से द्रोह धर्म की छाया में जो करते,
वे अधर्म का आराधन कर दम्भ धर्म का भरते,
पुत्रों के अपमान त्रास से परम पिता की पूजा
जो करते, उनसे बढ़ बंचक कौन विश्व में दूजा।

नहीं सत्य है केवल पालन सदा यथार्थ वचन का,
अर्थ सदा होता है केवल श्रेय लोक-जीवन का,
सत्य, श्रेय औ सुन्दर केवल शुचि अन्तर की वाणी,
होती उसके मौन कर्म से वसुन्धरा कल्याणी।

हुई विवेक-ज्योति से आकुल ज्ञान-मोह की माया,
और विनय-सेवा में सबने मर्म धर्म का पाया,
अर्थहीन-सा जान पड़ा वह सब आडम्बर अपना
भंग हुआ उस सत्य-प्रभा से वह सम्मोहन सपना।

पा जीवन का बोध दर्प से दीप्त नारियाँ जागीं,
आशंकित हो उठे हृदय में कितने भण्ड-विरागी,
अप्सरियों के तप-सेवा में तत्व धर्म का देखा,
खण्डित करती पृष्ठ भ्रान्ति के एक ज्ञान की रेखा।

आत्मा का आलोक ज्ञान है जब यह सबने जाना,
मानव का सम्मान धर्म है यह सहसा पहचाना,
अर्थ-काम से पूर्ण धर्म की भंग हुई जब माया,
तभी ज्ञानपुर के लोगों ने तत्व धर्म का पाया।

हुये नई आलोक प्रभा से दीपित सब नर-नारी,
चेतनता से हुई जागरित सोई सुषमा सारी,
सत्य-ज्ञान ने श्रेय-लोक का द्वार मनोहर खोला
धर्म-तत्व बनकर अन्तर में आत्मा का स्वर बोला।

हुये शंख घड़ियाल आदि के घोष मौन उस स्वर में,
लीन आरती की आभा थी अन्तर्ज्योति-प्रसर मे,
मन्दिर के जड़ भगवानों के सिंहासन भी काँपे
नये जागरण से भक्तों ने स्वप्न पुराने नापे।

नई शक्ति बन नव चेतनता पौर जनों में जागी,
परमेश्वर के पुत्र बन्धु थे आत्मा के अनुरागी,
आत्मभाव से एक हुये सब नव अभिजात अभय में,
दुर्बलता की भ्रान्ति मिट गई करुणा पूर्ण प्रणय में।

एक नया नक्षत्र विश्व के अन्तरिक्ष में चमका,
निर्माता बन नये पन्थ का संसृति के गतिक्रम का,
अस्त हुये जिसकी आभा से राहु, केतु, शनि सारे
शीतल हुये सुधा सागर में धूमकेतु-अंगारे।

राजतपुर के ज्ञान-लोक की लेकर ज्योति पताका,
आयसपुर की तमस अमा में करते जाग्रत राका,
ज्ञान-लोक के विपुल बंधुओं सहित देव गण सारे
आयसपुर की ओर प्रभा के पूर समान सिधारे।

चौंक पड़े उनको विलोक कर आयसपुर के वासी,
विस्मित हुये देखकर आये सैनिक बन संन्यासी,
स्नेह-सहित सौहार्द-समादर पाकर क्रमशः उनसे,
हुये प्रभावित अभय प्राप्तकर ज्ञान-शक्ति के गुण से।

दिव्य ज्ञान-मन्दिर मे उनके कौतूहल वश आते,
विस्मित होते जब ईश्वर के दर्शन कहीं न पाते,
पूजा और प्रसाद रहित थी वहाँ आरती वेला
एक साधना का प्रदीप था करता वहाँ उजेला।

साहस पा सौहार्द-स्नेह से पूछ उठे नर नारी,
"कौन धर्म यह जिसमे कोई प्रभु, पूजा, न पुजारी?"
"है यह जीवन-धर्म" स्नेह का उत्तर सादर पाया,
"प्रभु, पूजा औ भण्ड पुजारी भ्रान्त धर्म की माया।

चिन्मय का अवतार कदाचित् सम्भव है पत्थर में!
हैं चेतन भगवान जागरित जन जन के अन्तर में,
पत्थर के भगवान बनाकर, हृदयहीन अधिकारी
करते भोग, विलास, स्वार्थ का छल भक्तों पर भारी।

और उन्हींने जन जीवन में नृप-सामन्त बनाये,
सब अधिकार तुम्हीं को छल कर इन प्रभुओं ने पाये,
अन्यायी वह ईश्वर जिसने तुमको दास बनाया
ज्ञान-शक्ति से वंचित करके तुमको सदा भ्रमाया।

ईश्वर के स्वरूप को किसने कब अन्तर से देखा,
देख सका कब कौन शून्य में खिंची भाग्य की रेखा,
भाग्य और भगवान अनिश्चित सीमा की संज्ञायें,
गौरव औ पुरुषार्थ छोड़ कर क्यों हम उन्हें मनायें?

जीवन के गौरव के सब जन जन्मजात अधिकारी,
हैं समर्थ पुरुषार्थ मात्र में संसृति के नर-नारी,
मिटा भ्रान्ति को वे विवेक से यदि स्वरूप पहचानें,
दैन्य और दासत्व सभी के हों पल में अनजाने!

हैं जीवन के साध्य सभी के सत्य, श्रेय, सुन्दरता,
भृत्यों के अधिकार नृपों का दम्भ शक्ति से हरता,
परम साध्य ये बना स्वयंभू प्रभु जीवन को अपने,
साधन-पद से भूषित करते सबके सुन्दर सपने।

ज्ञान-चेतना की आत्मा में आभा स्वच्छ जगाओ,
स्नेह और एकत्व संघ में शक्ति अपरिमित पाओ,
प्रलय-सिन्धु-से उमड़ तोड़ दो यह अनीति की बेला,
उदित मुक्ति का सूर्य विश्व मे करे नवीन उजेला।"

नई चेतना जागी जाग्रत मानव के अन्तर में,
ज्वालामुखी प्रशान्त पल रहा पुर के प्रति घर घर में,
प्रकट हुई भूकम्प-प्रलय मे अविदित अन्तर्ज्वाला,
काँप उठा वह कांचनपुर का कंचन-कोट निराला।

आयसपुर से उमड़ प्रलय का सिन्धु भंग कर वेला,
कांचनपुर की ओर बढ़ा कर सीमा की अवहेला,
तारकाक्ष के बन्धु तरंगें देख नयन भर लाये
दीनों ने हो भीत भक्ति से निज भगवान मनाये।

उठा तरंगों के अगणित कर सिन्धु गरज कर बोला—
(सुनकर गुरु गम्भीर घोष उर पौर जनों का डोला)
"नाच रहा है भाग्य विश्व का मेरी इन लहरों में
डूब गये भगवान प्रलय के पहले ही प्रहरों में।

जीवन के तुम नाविक नर हो लो पतवार उठाओ।
चलो तरंगों पर चढ़कर निज पौरुष का फल पाओ।
जीवन के उच्छ्वास तुम्हारे तूर्ण तरंगें मेरी।
गर्जन अन्तर्नाद तुम्हारा: जीवन की रण भेरी।

मर मर कर भी बन्धु न जाना तुमने जग मे जीना,
सींच रहे यह स्वर्ण वाटिका देकर रक्त पसीना,
उगा रहे हो रत्नकुसुम वन दो कौड़ी के माली,
नंगा बदन विलोक हँस रहीं ये तरुओं की डाली।

मानव हो, अपने जीवन के गौरव को पहचानो,
नर हो, तुम अपने पौरुष के वैभव को पहचानो,
देखो निज श्रम और शक्ति के युग युग संचित फल से
जीवन सर में खिले स्वर्ण के ये प्रासाद कमल-से।

अग्नि-शिखा ले दीप्त ज्ञान की आओ संग हमारे,
दीप्त करो जीवन-वेदी में भावों के अंगारे,
सहज स्नेह के शक्ति मंत्र के पावन पुरश्चरण से
सिद्ध करो अमृतत्व; मुक्ति हो जीवित मौन मरण-से।

देखो अपने बाहु जिन्होंने अद्रि न कितने तोड़े,
देखो अपने चरण जिन्होंने मार्ग न कितने मोड़े,
देखो रक्त-स्वेद-बल-साहस औ श्रम-विक्रम अपने
किये जिन्होंने श्रीमानों के सत्य न कितने सपने।

अभी तुम्हारे वीर बाहु में प्रलय-सर्ग का बल है
अभी तुम्हारे धीर वक्ष मे शक्ति-पीठ निश्चल है,
अभी पन्थ की सरणि तुम्हारे दृढ़ चरणो की दासी,
अभी तुम्हारी श्वास मुक्ति की स्वच्छ वायु की प्यासी।

चूर हुये जीवन-धारा में पर्वत सिकता-कण-से,
जीवन के क्रम में बिखरे तुम महाकाल लघु क्षण-से,
दर्पण बन तुम मानवता को सत्य स्वरूप दिखाओ,
प्रलय-सिन्धु बन महाकाल का सर्ग द्वार दिखलाओ।

जाग उठो बन मानवता के प्रलयंकर सेनानी,
गूँज उठे नव सर्ग-भारती क्रान्ति-मुखी कल्याणी
कोटि-बाहु अवतार ईश के कोटि अस्त्र तुम धारो
कोटि कोटि विक्रम से अपने भू का भार उतारो।

असुरों के शीषों-सी खण्डित होकर रत्न अटारी
गिरें हेम-हर्म्यों की, होकर चरणों पर बलिहारी,
निष्कण्टक होकर वसुन्धरा विहँसे नन्दन वन-सी,
जीवन की विभूति विकसित हो सुरभित कल्प सुमन-सी।

शक्ति, प्रेम, आलोक विश्व में शिव विभूति-सा बिखरे,
प्रलय पर्व में स्नात मनुज का रूप सनातन निखरे;
मिटे अर्थ-शासन जगती से, दूर समस्त अनय हो
मंगल का वरदान मनुज को प्राप्त अखण्ड अभय हो।"

सुन श्रमिकों में हुई जागरित जीवन की चेतनता,
स्नेह-शक्ति बन स्फूर्त हो उठी दीनों की निर्धनता,
कृषकों ने भी छोड़ भूमि को नभ की ओर निहारा,
दीख पड़ा उनको उत्तर में जीवन का ध्रुवतारा।

दासों के कण्ठों से निकला "जागो बन्धु हमारे,
आज अन्त हो चुके प्रलय में पाप अनन्त तुम्हारे,
आज विदा दे रही अश्रुभर संसृति तुम्हें पुरानी
नई सृष्टि कर रही तुम्हारी गौरवमय अगवानी।

जागो, आज तुम्हारे स्वर से जागें नभ के तारे,
चलो, तुम्हारी मुक्त प्रगति से चलें शेष-फण सारे,
उठो, तुम्हारे कर-इंगित पर त्रिभुवन के ग्रह डोलें
बोलो, आज तुम्हारे स्वर में हृदय विश्व के बोलें।"

बोल उठे सब एक कण्ठ से 'मानवता की जय हो'
गूंज उठा स्वर अन्तरिक्ष मे 'अन्त समस्त अनय हो'
'जीवन का श्रम, श्रेय और सुख चिर अधिकार हमारा
करना हमको सिद्ध संघ के शक्ति मंत्र के द्वारा।'

मानवता का महासिन्धु उठ प्रलय वेग से उमड़ा,
कंचन कलशों के सूर्यों पर मेघो का दल घुमड़ा,
ललनाओं की रूप ज्वाल की शिखा-बिजलियाँ चमकीं
आज कामिनी काली बनकर प्रलयसर्ग में दमकी।

त्रिभुवन विचलित हुये प्रलय की क्रान्तिमयी हलचल से,
अम्बर आकुल हुआ दीर्ण हो भीषण कोलाहल से,
जग का जीवन यान चल पड़ा किस चिर अश्रुत पथ मे
कौन अलक्षित अन्त हो रहा लक्षित गति के अथ में।

कौन कालगति से चक्रों-से सूर्य और शशि बढ़ते,
प्रगति पंथ पर अश्व वेद के वायु-वेग से चढ़ते,
प्रणव-प्रतोद-मन्त्र की ध्वनि से ओज प्रगति में भरते
भारत-पुष्कर पर बैठे विधि गति-संचालन करते।

गूंज उठी गति के परिचय की घण्टा ध्वनि-सी वाणी,
बैठ चली कैलास-नीड़ पर भव के संग भवानी,
कर श्रुति तक सन्धान शेष की ज्या सुमेरु के धनु की
अग्नि-शल्ययुत विष्णु तेज का शर किस अपर अतनु की

करने निश्चित नियति, शम्भु ने फिर दृग तुल्य चढ़ाया,
किस प्रयाण का पर्व विश्व का भव्य कल्प बन आया,
फहर रही थी शुभ्र कमल की उज्ज्वल वर्ण पताका,
ऊषा के अंचल मे विकसी नभ में निर्मल राका।

रथ के पीछे ऐरावत पर चढ़ जयन्त-सेनानी,
चले देव-सेना युत करने गौरव की अगवानी,
करते जय जय नाद देव-गण, निज यानो पर आये,
गति-जय के निर्घोष गगन में वज्रनाद-से छाये।

रथ में ही अभियान कर रहे संग शंम्भु के मन से,
जले विश्व के ऋषि मुनि-नर-गण रथ के पीछे तन से,
करते नर निर्घोष गर्व से नभ में कम्पन भरते,
करते कम्पित धरा ईश के गण थे नर्तन करते।

आज विश्व-अभियान-पन्थ में उज्ज्वल ज्योति जगातीं
दीप्त शिखा-सी ललनायें थीं गीत ओज के गातीं,
उमड़ा जीवन-सिन्धु भंग कर आज अलंघित वेला
आलोकित कर अयुत तरंगें छवि-शशि खिला अकेला।

हुआ विश्व-अभियान त्रिपुर को आज लक्ष्यकर मन में
आज विजय का ओज झलकता जन जन के आनन मे,
आज चेतना-दीप सूर्य बन उदित हुये अम्बर मे
होने लगे गलित त्रिपुरों के कोट प्रदीप्ति प्रसर में।

जन के गर्वित घोष वज्र-से दिशा कुहर में व्यापे,
गति से कम्पित हुई धरा औ मूल त्रिपुर के काँपे,
उमड़ा जीवन-सिन्धु चतुर्दिक देख त्रिपुर सकुचाये
शंकित मन से सभी देवता कर उपचार मनाये।

प्रलय-सिन्धु में लघु बुद्‌बुद्-से त्रिपुर विकम्पित होते,
शून्य-हृदय प्रति लहर-भ्रमर से अति आतंकित होते,
लगता था सन्देह मरण का तृण का तुच्छ सहारा,
लक्षित होता नहीं चतुर्दिक कहीं अलक्ष्य किनारा।

आयसपुर के लौह दुर्ग में शंकित विद्युन्माली,
हुआ सुसज्जित वीर दर्प से और कृपाण सँभाली,
जान समागत अनाहूत भी आज अन्त की वेला,
दुर्ग चूड़ पर धनुष खींच कर बैठा वीर अकेला।

शिष्टाचार समान मौन ही सब सामन्त पधारे,
अस्त्रों से सन्नद्ध हुये स्थित दुर्ग-चूड़ मे सारे,
कोटो पर आरूढ़ चतुर्दिक सैनिक हुये वचन से
होते शंकित, विस्मित, हर्षित अद्‌भुत आगत रण से।

छाया भय विस्मय कोलाहल आकुल अन्त पुर मे,
धरती कितने रूप यक्ष-सी भावी सबके उर में,
गरिमा से गम्भीर रानियाँ बैठीं मौन भवन मे,
करती भीत विनीत दासियाँ परिचर्या, मृत मन मे।

तारकाक्ष निज कांचनपुर के सज्जित स्वर्ण महल में,
स्तम्भित था अवलोक अन्त को, आकुल अन्तस्तल में;
किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ सदृश था बैठा वह मन मारे,
तक्षक-सा निज गर्भ कोष पर फण-से नयन पसारे।

कर्त्ताओं ने उन ग्रन्थो की लिपि को दृग भर देखा,
जिसमें दीनो के भाग्यों का अंकित था सब लेखा,
द्वारों पर सन्नद्ध खड़े थे सेवक आज्ञाकारी,
शंकित, विस्मित, हर्षित मन में देख कालगति भारी।

रत्न अलंकारों से सज्जित रति को रहीं लजाती,
वे लक्ष्मी-सी ललनायें थीं आज पीटती छाती,
दया दान सत्कर्म धर्म व्रत पूजा के इस फल को,
विस्मित थीं अवलोक भाग्य के इस आकस्मिक छल को।

राजतपुर के ज्ञान-लोक के अन्तरिक्ष में सूने,
काम-रूप से घूम रहे घन भय के बने नमूने,
आज भरे कमलाक्ष वीर के कमल नयन थे जल से
उठते थे निश्वास शोक के आहत अन्तस्तल से।

धर्म-ज्ञान का मर्म आज था सहसा सबने जाना,
मानव की आत्मा में सबने ईश्वर को पहचाना,
थी उपचार-विहीन मौन मृत वह पूजा की वेला
एक आरती का दीपक था मृदु आलोक अकेला।

असमय में भय से आतंकित निर्मल सबका मन था,
आज खुला नयनों में सबके करुणामय जीवन था,
मन्दिर में भगवान मौन थे अपने सूनेपन में
भक्तों के मन की विडम्बना गूँज रही आँगन में।

मानवता का सिन्धु चतुर्दिक उमड़ा आज प्रलय में,
अस्त हो रहे त्रिपुर विश्व के आज अपूर्व उदय में,
थे कोटों के मूल हिल रहे, कलश-चूड़ कम्पित थे,
आज पताका-से त्रिपुरों के अन्तर आतंकित थे।

आज विश्व-अभियान रुद्र का ताण्डव-सा बन आया,
प्रलय-सर्ग का मर्म प्रकृति ने आज अपूर्व दिखाया,
विश्वयान का नीड़ हिमाचल आज अचल भी चल था,
ताण्डव के गति-क्रम से चंचल संसृति का प्रति दल था।

कोटि पदों के निक्षेपो से कम्पित थे गृह-तारे,
नक्षत्रों ने उल्काओ के विस्मित नयन पसारे,
हस्ति-चर्म-सा विदित हो रहा धूसर अम्बर सारा,
रुद्र व्याप्त थे अखिल विश्व मे निज विभूति के द्वारा।

कोटि कोटि कर की मुद्रायें भावों के इंगित-सी,
लोकों के उत्थान-पतन की करती लिपि अंकित-सी,
भावों के आलोक-बिन्दु-से बिखर रहे थे तारे,
लहरों के निस्सीम ज्वार से डूबे क्षितिज-किनारे।

मुक्त-जूट-से फैल रहे थे मेघ प्रलय के काले,
विद्युन्माला-से लहराते मणिधर सर्प निराले,
प्रलयासार टूटता नभ-से बन गंगा की धारा.
डूब रहा जीवन-प्लावन में मानों त्रिभुवन सारा।

किस अनंग के आज दहन को नयन तीसरा खुलता,
त्रिनयन का तप आज प्रकृति की पुन. तुला पर तुलता,
नृत्य-निरत नटराज चतुर्दिक विदित चतुर्मुख होते,
द्वादश दृग-आदित्य प्रलय की नभ मे शिखा सँजोते।

सावन की घन-माला मे ज्यों विधु जूटो में छिपता,
तम मे नूतन ज्ञानोदय-सा उदय उदय हो दिपता,
विस्मित था आलोक तिमिर के आन्दोलित विभ्रम मे,
अस्थिर-सी थी स्थिति त्रिभुवन की गति के अद्भुत क्रम में।

हो शिव में साकार निरत था आज विश्व नर्तन मे,
पलता नूतन सर्ग प्रलय के भीषण परिवर्तन में,
त्रिपुर हो रहे आज प्रकम्पित हृदयों-से त्रिभुवन के,
थे झंकृत हो रहे तन्त्र सब आज विश्व-जीवन के।

हुई तीव्रगति तार-वेग पर स्थिति में मानों लीना,
सर्ग-कूट पर मानों सहसा प्रलय हुई आसीना,
पावस-धनु पर खींच शेष-ज्या कर आकुंचित कर को,
छोड़ा शिव ने चढ़ा शूल पर सिद्ध पाशुपत शर को।

हुई धनुष टंकार त्रिदिव मे वज्र-घोष-सी छाई,
विद्ध त्रिपुर युगपत् विलोक कर गिरिजा मृदु मुसकाई,
खण्ड खण्ड हो कोट त्रिपुर के मर्यादा-से टूटे,
प्रासादों से ज्वालाओं के धूम गगन में छूटे।

हुये समाधि-लीन मन्दिर मे देवों सहित पुजारी,
भस्म हुआ कमलाक्ष पुष्प-सा ज्वालाओं मे भारी,
विद्युन्माली की समाधि था खँडहर रंग महल का,
स्तम्भों से हो रहा नियन्त्रण सामन्तों के दल का।

तारकाक्ष निज रत्न-राशि को देख देख रह-रह-सा,
गर्भ-कोष में कांचनपुर के अस्त होगया सहसा,
बुद्बुद् से हो गये विलय वे त्रिपुर प्रलय के रय में,
था उनका अवशेष न कोई परिचित सर्ग-उदय में।

मानवता की महाक्रान्ति के धीर मनस्वी नेता,
त्रिभुवन की नूतन संस्कृति के वे अभिजात प्रणेता,
युद्ध, शान्ति, नय, धर्म, कर्म मे सखा स्नेह-अभिमानी,
एक देह-मन के युग कर-से वे जयन्त-सेनानी,

मानवता के प्रलय-पूर के बन दो धीर किनारे,
मर्यादा औ दिशा दान कर थे दे रहे सहारे,
किया रक्त-प्रतिशोध जिन्होने शोणितपुर के रण में,
बिछा रहे वे वीर हृदय अब त्रिपरो के प्रांगण में।

कांचनपुर के स्वर्ग लोक के ये विमूढ़ व्यापारी,
प्राणों पर कर रहे निछावर आज सम्पदा सारी,
मानवता का मर्म बोध दे इनके प्राण बचाओ,
स्नेह, शक्ति, सौहार्द, ज्ञान से श्री को धन्य बनाओ।"

सुन जयन्त औ सेनानी की भावमयी मधुवाणी,
हुये नवीन सृजन मे तन्मय क्रान्तिदूत वरदानी,
खिली शान्ति की उषा प्रलय के भीषण कोलाहल मे,
नई सृष्टि-सी उदित हो रही जीवन की हलचल मे।

उदय हुआ कैलास कूट पर नये सर्ग का रवि था,
नये विश्व का गीत रच रहा मानव का ध्रुव कवि था,
विश्व भारती के मंगल-सा शिव का डमरू बोला,
शिव ने आज नवीन सर्ग का सूत्र मर्ममय खोला।

अन्ध गुहाओं से दीनों की दूर तिमिर कर मैला,
आतप औ आलोक मुक्त हो मुक्ति-प्रभा-सा फैला,
जीवन का स्वच्छन्द स्वच्छ नव वायु-प्रवाह त्रिपुर मे
दिव्य गन्ध भर, हर्ष-वीचियाँ उठा रहा उर उर में।

मानवता के प्रलय सिन्धु की शान्त तरंगें होतीं,
नई सृष्टि के चरण आज वे वेला-तट पर धोतीं,
तट-पर खेल रहे शिशुओं को देकर मूँगा मोती,
जीवन के शिव व्यापारों के मार्ग विमुक्त सँजोती।

अन्तरिक्ष में उगा ज्ञान का सूर्य अनामिल छवि से,
गन्धकोष निज खोल कली ने कहा जागरित कवि से—
"आज न कलियो के कानों में केवल मधुरस घोलो,
नये सर्ग के बीज मन्त्र की भव्य अर्गला खोलो।"

सर्ग २५

शिव धर्म वर्णन

मानवता के प्रलय सिन्धु के उद्वेलन में,
त्रिपुरों का लय हुआ सर्ग के पहले क्षण में;
उगा प्रलय से नये सर्ग का स्वर्ण-सवेरा,
मिटा अनय, भय, भ्रान्ति, दैन्य का अखिल अँधेरा।

बही मुक्ति की स्वच्छ वायु जग के उपवन मे,
खिले अपूर्व गन्ध के शत दल लोक-सुमन मे;
अन्तर का स्वर मुक्त कण्ठ की बना प्रभाती,
उदित नई रुचि मुक्ति-पर्व के सर्ग सजाती।

खिले अपूर्व भाव के सौरभ विश्व-सुमन में,
छाया पर्व अपूर्व मुक्ति का अखिल भुवन में;
जाग्रत था कैलास आज कितने जीवन से
जन्मा कितना भव्य विश्व कितने भीषण से!

आज पूर्ण आनन्द-योग मे स्थित शंकर थे,
शिव मे अन्वित आज सत्य संयुत सुन्दर थे;
दर्शन आज अपूर्व दृष्टि का पावन फल था
उनके ही हित वहाँ विश्व समवेत सकल था।

सरस्वती के सहित पधारे विश्व विधाता,
आये लक्ष्मी सहित विष्णु त्रिभुवन के त्राता;
आई इन्द्र समेत शची शाश्वत कल्याणी,
कर सबका सत्कार प्रीति गिरिजा ने मानी।

अवसर जान अपूर्व भारती सहसा बोली,
(सस्मित स्वर मे लक्ष्मी ने चिर-सुषमा घोली)
"हुये महेश्वर शंकर अब जग के त्रिपुरारी"
शिव से संस्कृत हुई प्रकृति अब विधे! तुम्हारी।

तप का पूर्ण अपूर्व पुण्य फल फला उमा का,
सफल हुआ सौभाग्य अखण्डित आज रमा का;
आज शची की हुई साधना सचमुच पूरी,
त्रिपुर-विजय में मिटी आज त्रिभुवन की दूरी।

शिव का वैभव आज विश्व के उर में छाया,
आज सर्ग ने मार्ग पूर्ण मंगल का पाया;
सफल विष्णु के आज हुये वे विक्रम सारे,
लोक नयन में श्री ने नूतन स्वर्ग संवारे।

आज चतुर्मुख वेद हुआ कृतकृत्य भुवन में,
त्रिभुवन का सौभाग्य खुला शाश्वत त्रिनयन में;
मंगल जाग्रत हुआ विष्णु का शेष-शयन में,
हुये सत्य, शिव, सुन्दर अन्वित जग-जीवन में।

आज इन्द्र ने फल सहस्र नयनों का पाया,
आज शेष ने पुण्य सहस्र फणो का पाया;
हुईं सिद्धियाँ-पूर्ण देव-मनुजों की सारी,
काम-दहन शिव सिद्ध हुये बनकर त्रिपुरारी।

पा जयन्त की विजय-वधू सुरपुर की रानी,
वाञ्छित वानप्रस्थ शची को मिला भवानी!
मिली मुक्ति आनन्दमयी इनको जीवन में,
बाँटें ये वरदान स्वर्ग के अब त्रिभुवन में।

परशुराम का आज हुआ व्रत पूर्ण अधूरा,
शक्ति-योग को शिव ने आज बनाया पूरा;
भव-वैभव से भव्य हुई शतगुणित भवानी
नये सर्ग का सूर्य बना उसका सेनानी।

भाग्यवती अब कौन तापसी विजय-कुमारी,
उमे ! बनेगी विश्व-मंगला वधू तुम्हारी;
किसके तप का तेज भाल का बन ध्रुवतारा
धन्य करेगा विश्व, प्राप्त कर वैभव सारा ?"

लक्ष्मी ने भर हास कहा. "जय हो कल्याणी,
धन्य विश्व के भाव हुये पाकर यह वाणी;"
कहा उमा ने, 'धन्य हुआ पद से गृह मेरा
खिला यहाँ जो विश्व उदय का नया सवेरा।"

शिव बोले, "मैं हूँ कृतार्थ इस गृह के सुख से,
वर्णनीय आनन्द आज का अमित न मुख से।"
सबके मन का मोद खिला छवि बन आनन में,
खिले अमित आनन्द पर्व दीपित लोचन में।

दिव्य ज्योति की दीप-शिखा बन कर त्रिभुवन मे
आलोकित कैलास-कूट हो रहा गगन में;
आभा-सा आनन्द अमित त्रिभुवन में छाया,
ज्योति-बिन्दु में रत्न सिन्धु लोकों ने पाया।

आज विजयिनी मानवता के जीवन-सर में,
खिला शुभ्र कैलास कमल-सा उदय-प्रहर में;
सौरभ-सा आनन्द पूर्ण त्रिभुवन में छाया
आज श्वास में प्राणगन्ध जीवों ने पाया।

नये सर्ग के बाल सूर्य की किरण-कुमारी
जीवन पर आनन्द-उत्स करती बलिहारी,
गूँज रहे मधु गीत आज रस के त्रिभुवन में,
खिलते रस के पर्व आज गिरि, गृह, कानन में।

नव जीवन की वायु मन्द शीतल सुखकारी,
हुई प्रवाहित स्वच्छ मधुर आनन्द-विहारी;
श्वासों में आनन्द प्राण नूतन-सा भरता
अमृत स्पर्श उल्लास हर्ष से पुलकित करता।

हुआ मानसर ध्वनित विश्व मानस-सा लय से,
हो आन्दोलित जीवन के आनन्द-मलय से;
अमृत गीत प्रति-ध्वनित हो उठा विश्व गगन में
बोल उठा आनन्द मुखर उसके निस्वन में।

आत्मा का आलोक प्रकृति को दीपित करता,
आत्मा का रस आज प्रकृति में जीवन भरता;
आत्मा का आमोद प्रकृति की गन्ध सुहानी,
आत्मा का संगीत प्रकृति की मंगल वाणी।

आत्मा का निश्वास-स्पर्श जीवन की आशा,
आत्मा का अनुवाद बना जीवन-परिभाषा,
प्रकृति हुई चरितार्थ आज बनकर त्रिभुवन में
आत्मा का मन्दिर पवित्र जीवन उपवन में।

अर्चा का अधिकार प्राप्त कर गौरव शाली,
सुमन हुये कृतकृत्य, धरा को मिली निराली
जीवन की निधि, सफल हुई चिर अन्तर्ज्वाला
बने आज भूकंप सृजन की सुन्दर माला।

पुराचीन के निभृत गर्भ से शिशु-सा जागा,
भव्य भविष्यत आज रूप-रस से अनुरागा;
खिली लतायें जीर्ण आज नूतन फूलों से
आज नये फल फले पुरातन की मूलों से।

खिला हिमालय ज्योति-दीप-सा भवसागर का
किस आभा से चमक उठा मुख लहर लहर का
जीवन की नव ज्योति अखिल त्रिभुवन में फैली,
हुई प्रकाशित वहाँ अमृत जीवन की शैली;

नव जीवन के पर्व हिमाचल के आँगन में,
उत्सव-से बन खिले नयन, मन, भू, गिरि, वन में;
प्राण स्फूर्त्ति से प्रकृति सजग होकर पाषाणी
नव जीवन की बनी व्यंजना मय मधु वाणी।

सत्व सरणि-सी वेगवती उसकी धारायें,
भागीरथी समान तोड़ पाहन-कारायें;
वसुन्धरा के पृथुल वक्ष की बन जयमाला
गातीं रसमय राग ओज—गति—पूर्ण निराला।

सरिताओं के रुचिर तीर नीरव निर्जन-से
सजग हो उठे जीवन के नूतन गुंजन से;
छवि के कोष समान मनोहर स्वर्ण कमल-के,
हुये सुरों-सम वदन प्रफुल्लित मानव दल के।

पुण्य पार्वती-सी पर्वत की रूप-कुमारी,
तपस्विनी-सी जीवन की ज्योतिर्मय नारी,
अप्सरियों के कान्त अंग में पूत सती-सी
थी जीवन का सहज तरुण तप-सा तपती-सी।

बन शिव के अवतार तपस्वी दृढ़ व्रत धारी,
नर अति निर्मल-शील, वासना कर बलिहारी
नारी के तप, शील, स्नेह पर पूर्ण प्रणय से
करते जीवन धर्म प्रपालित संगत वय से।

नर-नारी के पुण्य योगमय तपश्चरण के
पावन फल-से, दिव्य-पर्व-से शुचि जीवन के,
होते पुत्र पवित्र वीर योगी सेनानी
शील - स्नेह - नय - धर्म-श्रेय - सेवा - अभिमानी।

सुन्दर स्वस्थ प्रसन्न शिवमयी जीवन शैली,
अखिल विश्व में सौरभ-सी हिमगिरि से फैली;
धाराओं से धरणी ने जीवन रस पाया,
सफल हुआ रसदान प्राप्तकर सुन्दर काया।

अमरावती समान सजे बहु नगर निराले,
सरिताओं के तीर, सुघड़ साँचे में ढाले;
जिनमें सुन्दर, स्वस्थ और शिव जीवन पलता
जीवन का निर्माण प्रकृति की बनी सफलता।

करके कल्प निवास भूमि देशों के वासी,
जीवन में सौन्दर्य-स्वास्थ्य के बन अभ्यासी;
दे समर्थ सहयोग मिटाकर सब बाधायें
सम्भव करते शिव जीवन की सब सुविधायें।

सरिताओं के यन्त्र-बन्ध की विद्युन्माला,
ग्राम ग्राम में करती निर्मल नित्य उजाला;
रत्नों-से खिल उठे तिमिर के पाषाणों में,
खिला नया आलोक प्रकृति के भी प्राणों में।

वसुन्धरा ने हृदय समुन्नत अपना खोला,
मणि-रत्नों से मानवता ने श्रम को तोला;
खिले कण्ठ में स्वेद-बिन्दु बन हीरक माला,
धूल भरे हाथों ने रज से स्वर्ण निकाला।

शत शत औषधि प्रस्थ खिले गिरि के अंचल में,
अमृतमयी औषधियाँ बहु फलतीं द्रुम दल में;
प्रकृति-व्याधियाँ जो मानव के तन की हरतीं
करके स्वस्थ शरीर हर्ष से मानस भरतीं।

निविड़ गुहा में असुरों की आँधी के भय से,
करके अवनत शीष सदा ही सहज विनय से,
स्नेह-पूर्ण भी रहे मन्द द्युति से जो जलते,
जीवन के शुचि स्वप्न शिखा मे जिनकी पलते,

वे ही ज्ञान-प्रदीप व्योम के रवि-शशि बनते,
आज शिखा के शलभ ज्योति-छवि के कवि बनते;
उनके शुचि सौन्दर्य-तेज के गीत निराले,
आलोकित कर रहे विश्व मे नये उजाले।

निर्भय होकर ज्ञान खिला निज मौलिक छवि मे,
दीपक का आलोक जगा जीवन के रवि में;
आत्मा के शुचि गन्ध-राग द्युति मे उज्ज्वल-से
मानस मे खिल उठे प्रभा के स्वर्ग कमल-से।

दृप्त असुर, नृप सामन्तों के भीषण भय से,
निकल सकी जो शक्ति न जन के सुप्त हृदय से,
आज जागरित मानवता के मुक्त उदय में,
जाग उठी हो उत्कण्ठित अभिजात अभय मे।

मानवता के आत्मगर्व के जाग्रत क्षण में,
मुक्त हुई वह शक्ति स्नेह के अभिवन्धन में;
बनी अनय का मन्त्र-बन्ध वह त्रिपुर विजय में
सत्य, श्रेय, सुन्दर की रक्षा पूर्ण अभय में।

बनी सदा अभिजात कुमारी श्रीमानों की,
जो तितली-सी रही महल के उद्यानों की;
आज वधू बन वह दीनों की स्वयंवरा-सी
श्री समृद्धि बन रही श्रमिक चरणों की दासी।

जो श्रम-कण से रहे भूमि को स्वर्ग बनाते,
किन्तु नरक मे रहे कष्ट से काल बिताते,
वे ही श्रमिक किसान बने फल के अधिकारी,
आज अस्त हो गये सकल छल के व्यापारी।

बनकर श्रम का पुण्य आज श्री हर्षित होती,
लोक-श्रेय की आज करों से माल पिरोती;
सब अनर्थ का मूल अर्थ भी सार्थक होता
होकर श्रम से फलित बीज श्रेयों के बोता।

भग्न हुये परिकोट त्रिपुर के आज प्रलय में,
जीवन की वातास बही उन्मुक्त उदय में;
ज्ञान, शक्ति औ स्नेह श्रेय रूपों में अपने,
होकर समुदित, सत्य कर रहे सुन्दर सपने।

होकर श्रम का पुण्य अर्थ भी श्रेय बना था,
आत्मा का अनुयोग कठिन भी प्रेय बना था;
होकर अन्वित काम श्रेय में धन्य हुआ था,
तप से ऊर्जित जीवन ही पर्जन्य हुआ था।

बना ज्ञान आलोक सभी के स्निग्ध नयन का,
बनता वैभव स्नेह सभी के उज्ज्वल मन का;
सब के मन औ नयन स्नेह-रंजित अनुरागे,
आत्म-भाव, एकत्व शक्ति नूतन बन जागे।

मानव ही रह गया एक ईश्वर की आशा,
जीवन ही बन गया धर्म की नव परिभाषा;
आत्मा का परमार्थ अर्थ मे अन्वित होता,
आत्मा का परमार्थ काम से सरसित होता।

घर घर आज पुनीत-धर्म मन्दिर-सा होता,
शिशुओं में अवतार नित्य ईश्वर का होता;
उनकी पूजा बनी धर्म नूतन संस्कृति में;
जड़ विग्रह हो उठे सचेतन नव जागृति में।

घर घर का आनन्द बनी उनकी ही लीला,
जननी हुई कृतार्थ जन्म से ही जय शीला;
हुआ विश्व भगवान बाल का पुण्य पुजारी,
करते थे सर्वस्व निछावर निज नर-नारी।

नारायण-से नर आत्मा के रूप बने थे,
स्रोतों से हो एक सिन्धु-से कूप बने थे;
होकर संस्कृत प्रकृति विभूति बनी जीवन की,
माया ही श्री बनी श्रेयसी नारायण की।

लज्जित करती दिव्य देह की दीप्ति सुरों को,
आत्मा की चिति दीपित करती स्निग्ध उरों को;
बनते मंगल भाव मूक भी मन की भाषा,
था कृति मे अनुवाद बना जीवन परिभाषा।

मानवता थी मानदण्ड नूतन संस्कृति का,
आत्म भाव था मूल मन्त्र नूतन संसृति का;
नहीं मनुज को मनुज मानते जो अतिचारी,
उनको काल कृतान्त बने अन्तिम त्रिपुरारी।

स्वाभिमान स्वातन्त्र्य यथा सबको प्रिय अपने,
बने दूसरों के भी त्यों ही सक्रिय सपने;
ईश्वर का सम्मान मनुज का आदर करना,
धर्म पोत है जिससे जीवन सागर तरना।

नारी का बहुमान बना संस्कृति की वेला,
जीवन सागर रहा शान्त जिसमें अलबेला;
मानवता की मर्यादा थी निर्मल नारी,
शक्तिमती श्रीमूर्ति मनोहर औ सुकुमारी।

संसृति के भगवान बाल की पूजित माता,
है जिसका वात्सल्य विश्व को सरस बनाता;
वह युग युग की आतंकित औ लांछित नारी,
महिमा मण्डित हुई प्राप्त कर गरिमा सारी।

शील-शक्ति में अन्त हुआ सब असुर अनय का,
रहा न कारण शेष मुक्त नारी को भय का;
निर्भयता में खिली भूति नारी के मन की,
बन अपूर्व अनुभूति नरों के नव जीवन की।

निर्बलता मे रही सदा जो नर की दासी,
साधन जिसको सदा मानते रहे विलासी;
आज जागरित मानवता के मानस-सर मे,
खिली पद्मिनी-सी पुनीत वह उदय प्रहर में;

जिसका सुन्दर रूप शाप बनता जीवन का,
अंगों का उत्कर्ष पाप बनता यौवन का;
अनियन्त्रित उन्माद रूप-यौवन बन नर का,
करता धर्म-विधान दुष्ट छलबल से स्मर का;

रही दया पर जो नर की जीवन भर पलती,
नर को छलकर रही सदा अपने को छलती,
मौन, शील, संकोच, धर्म निर्मित कर अपने,
अर्पित करती रही चरण मे नर के सपने;

जो मन्दिर मे रही भक्ति के फूल चढ़ाती,
नर ईश्वर को रही सदा अनुकूल बनाती,
दयामयी दयनीय धर्म पर जाती वारी,
ज्ञान-शक्ति से हीन वही श्रद्धामय नारी;

रही शक्ति के कण्ठ डालती जो जयमाला,
बस अर्पण का स्वप्न पलक मे जिसने पाला;
जीवन करती रही शक्ति-बल पर बलिहारी,
ज्ञान-शक्ति से हीन वही चिर निर्बल नारी;

श्रीमानों के रत्नकोष की दीपक ज्वाला,
तम को देती रही स्नेह से पूर्ण उजाला;
रहे तोलते जिसे अर्थ के अन्ध पुजारी,
स्वर्ण तुला -पर, वह श्री की उपमा-सी नारी;

अलंकार ही मान स्वर्ण के जो बन्धन को,
सार्थक करती रही अर्थ के भी जीवन को;
अर्थ-काम पर रही मुक्ति करती बलिहारी,
ज्ञान-शक्ति से हीन वही लक्ष्मी-सी नारी;

रहे भ्रमाते भ्रान्त धर्म से जिसको ज्ञानी,
रहे सताते जिसे शक्ति बल के अभिमानी;
करते जिसका मोल रहे धन के व्यापारी
ज्ञान-शक्ति-धन रहित वही चिर वंचित नारी;

ज्ञान ज्योति-सी आज नई जाग्रति के पल में,
पूर्ण प्रतिष्ठित हो आत्मा के अक्षय बल में;
अर्थवती होकर समर्थ बनकर सुकुमारी,
ज्ञान-शक्ति-श्री-मूर्ति बनी जग - वन्दित नारी।

खिली भारती तुल्य युगों की वह अज्ञानी,
हुई कण्ठ में मन्द मुखर वीणायुत वाणी;
जगी ज्ञान की दीप्ति लाज से नम्र नयन में,
आत्मा का आलोक-रूप खिलता आनन में।

वासक-सज्जा तुल्य रूप-रति-सी सुकुमारी,
हुई दर्प से दीप्त दिव्य दुर्गा-सी नारी;
आत्म-शक्ति का ओज जगा कोमल भी तन में,
जगा नया विश्वास वन्दिनी के जीवन में।

अर्थ चूमता चरण ज्ञान, क्षमता, कौशल के,
अलंकार सब हुये नई गरिमा में हलके;
आभूषण, शृंगार, वस्त्र पर जो बलि जाती,
उसका स्वच्छ स्वरूप देख श्री आज लजाती।

उसका स्वच्छ स्वरूप खिला बन ज्ञान निराला,
उसका सात्विक स्नेह बना बल की जयमाला;
अलंकार-धन हुये शील-नय पर बलिहारी,
एक रूप में श्री — सरस्वती — दुर्गा नारी।

ज्ञान, शक्ति औ श्री की शाश्वत पुण्य त्रिवेणी,
कर निज गति से पूत विश्व की पर्वत श्रेणी;
पद पद पर पथ में जीवन के तीर्थ बनाती,
जीवन का संगीत मुक्त गति-लय से गाती।

उसका निर्मल ज्ञान दीप बनता जीवन का,
आत्म-शक्ति का ओज मान बनता यौवन का,
बनता स्नेह समर्थ अर्थ जाग्रत यौवन का,
बनता वैभव शील मुक्ति मे भी बन्धन का।

स्वच्छ रूप का दीप ज्योति बन पुरुष-नयन की,
करता दीपित दिशा तमोमय नर जीवन की;
सम्बल बनकर आत्म-शक्ति दुर्बल मानव की,
रचती नित्य समाधि आज निर्जित दानव की।

स्वच्छ शील की श्री प्रकाश बन श्रीमानों का,
करती सारा मान भंग उनके दानों का;
ज्ञान, शक्ति औ शील पूर्ण बन श्री की सुषमा,
रही भूमि को बना स्वर्ग की सुन्दर उपमा।

श्री – सरस्वती – दुर्गा – सी उसके अंचल मे,
पलता शिशु-सा विश्व पूत यौवन के बल में;
रूप-चेतना-शक्ति नई कर निर्मित नारी,
मानव को भगवान बना होती बलिहारी।

हुई आज साकार श्रेयसी प्रभु की माया,
स्निग्ध अंक में उसको जग ने ईश्वर पाया;
धर्म, ज्ञान का मर्म आज मानव ने जाना,
आज प्रेम मे दिव्य सार जीवन का माना।

हुआ प्रतिष्ठित मन्दिर-सा जग का घर घर था,
अमृत-ज्योति का फूट पड़ा सुन्दर निर्भर था;
मानव का ध्रुव धर्म बनी बालक की पूजा,
विदित हुआ भगवान विश्व मे और न दूजा।

स्नेह-भरे दृग-दीप आरती उसकी करते,
अश्रु-हास की सुमन-भेंट चरणों में धरते;
अर्चा मे कर भेंट विश्व की निधियाँ सारी,
पाते पुण्य प्रसाद प्रेम-पूरित किलकारी।

रस-सौरभ से पूर्ण स्नेह का हृदय-कमल था,
अर्चा का आनन्द भक्ति का स्वर्गिक फल था;
जग ने सकल पदार्थ सहज जीवन में पाये,
अर्थ-काम भी मुक्ति-धर्म-नय-से बन आये।

नग्न देह में दीप्त दिव्य देवों-सा तन था,
निर्मल मन मे पुण्य-पूत मानव का मन था;
थी नयनों की अमल ज्योति में श्रद्धा सारी,
करती थी आनन्द-वृष्टि निश्छल किलकारी।

डगमग पग की मुक्त प्रगति जग मार्ग बनाती,
मृदुल करों की कृति नित नूतन सर्ग खिलाती;
हो आकुल उल्लास भरे जीवन के सुख से,
बोल उठे भगवान प्रकृति के सुन्दर मुख से।

ये सजीव साकार विश्व के ईश्वर कवि-से,
रचते सृष्टि नवीन नित्य पोषण कर रवि-से;
बनते जब अवतार बाल ईश्वर के नर में,
रहते रक्षित क्षेम लोक के संसृति भर में।

धर अनन्त अवतार स्वयं ईश्वर ने जग में,
छोड़े कण्टक शेष नहीं मानव के मग में;
पदचारी अनन्त प्रभुओं के सतत चरण से,
उग न सके जीवन पथ में फिर कण्टक तृण से।

युग युग में भगवान स्वयं बनकर अवतारी,
कर न सका निर्मूल दनुज की संसृति सारी;
ये अनन्त भगवान बने शाश्वत त्रिपुरारी,
आज मनुज के ईश्वर से दानवता हारी।

शोणितपुर मे अन्त हुआ दनुजों के बल का,
त्रिपुर विजय में अन्त हुआ उनके सब छल का;
हुये प्रलय में मग्न आज दनुजों के नेता,
जीवन-रण में हुआ अन्त में मनुज विजेता।

गृह गृह था कैलास सत्व के ऊर्जित चय-सा,
नर नर था शिव तुल्य साधना में तन्मय-सा;
थी गिरिजा-सी तपस्विनी नारी नय-शीला,
थी कुमार में सफल युगल जीवन की लीला।

विजयी मानव बने अयुत शंकर त्रिपुरारी,
शक्ति मूर्ति पार्वती बनी प्रति पूजित नारी;
था प्रत्येक कुमार सहज शिक्षित सेनानी,
थे कृतकृत्य समर्थ सभी भार्गव-से ज्ञानी।

परशुराम के तुल्य विश्व के वन्दित ज्ञानी;
शक्ति-योग से शिक्षित करते बहु सेनानी;
अयुत देवसेनायें शिक्षित लख त्रिभुवन में,
रक्तपुरों के तारक सब हत होते मन में।

दिव्य कामना के स्वर्गों के नित्य निवासी,
सहस्राक्ष औ शची सहज बनकर संन्यासी,
शोणितपुर के जयी जयन्तों की चिर जय मे,
हो कृतार्थ, परमार्थ खोजते नूतन नय मे।

बन जीवन के सखा इन्द्र-सुत औ सेनानी,
करते जाग्रत क्रान्ति लोक में चिर कल्याणी;
जिससे कम्पित त्रिपुर प्राण-जीवन को डरते,
मनोजात ही त्रिपुर अनेकों पल पल मरते।

शंकर के अवतार सदृश नर जीवन-योगी,
तप.शक्ति से बने त्रिपुर-जय के उद्योगी;
विश्व प्रकृति के त्रिपुरों को नित खण्डित करते,
आत्मा की छवि से जीवन को मण्डित करते।

रहती विश्व-विभूति रमी रज-सी शुचि तन मे,
आत्मा की अनुभूति अखण्डित जगती मन में:
ज्ञान-शक्ति का अर्थ-सहित अन्वय जीवन मे,
था पाशुपत त्रिशूल त्रिपुर-हन्ता क्षण क्षण में।

तप: ज्योति से पूत उमा-सी उज्ज्वल नारी,
स्नेह-शक्ति से बना सहज नर को त्रिपुरारी;
गृह गृह में शिव वास दिव्य कैलास बनाती,
भू में कृति-स्मिति-दृष्टि-कृपा से स्वर्ग खिलाती।

दीप शिखा कैलास बना था उज्ज्वल जग की,
हरता अन्ध अनीति अखिल जीवन के मग की;
ज्योतिर्धारा तुल्य स्वच्छ सरितायें बहतीं,
जीवन की आलोकमयी गीतायें कहतीं।

ध्रुव-सी निश्चल ज्योति-शिखा योगी के मन-सी,
आत्मा के निर्मल प्रकाश का शुचि दर्पण-सी,
ध्रुव-इंगित से दिखा लोक की उत्तर आशा,
रचती जीवन के स्वरूप की शिव-परिभाषा।

मानस में ज्यों अमल स्नेह रस बढ़ता जाता,
अमृत शिखा में नई ज्योति औ प्रभा जगाता;
धूम तुल्य घिरते कजरारे मेघ गगन में,
बनते अंजन दिव्य लोक के सजल नयन में।

वह पर्वत की वायु श्वास बन नव जीवन की,
बनती नूतन स्फूर्ति जागरित तन की, मन की;
प्राणों में संचार नये प्राणों का करती,
स्वस्थ रक्त से जीवन में नव आत्मा भरती।

वह पर्वत का स्वच्छ नीर निर्मल जीवन-सा,
प्राणों के हित अमृत-तुल्य शुचि संजीवन-सा;
सर में दर्पण, सरिता में बन जीवन धारा,
सुमनों में भरता पराग आत्मा का सारा।

वह पर्वत की भूमि कठिन भी वसुन्धरा-सी,
सुमनों से रस राग मयी थी गन्ध-परा-सी,
रत्न और औषधियों की आभा में जगती,
दिव्य लोक-सी उदय हुई अवनी पर लगती।

तेज-पुञ्ज-सा था स्वरूप गुरु गरिमा शाली,
जीवन में साकार हुई रसमयी प्रणाली;
विश्व-कमल कैलास स्वर्ण छवि से था खिलता,
छवि-पराग मे गन्ध-स्वर्ण का अन्वय मिलता।

खिल उठते नव गन्ध-ज्योति से शत शत दल थे,
मुग्ध भ्रमर-से मंडराते नभ में बादल थे;
मधुर गन्ध-आमोद सुमन को सुरभित करता,
श्रुतियों में था मधुर राग-रसमय स्वर भरता।

वसुधा के अन्तर में बहती रस की धारा,
होता मधुर राग से गुंजित गिरिवन सारा;
जीवन के इस गौरव गिरि के दुर्गम पथ में,
हुआ प्रवाहित सहज स्रोत रस का शतपथ में;

मुक्त हार बन वह धरणी के स्निग्ध हृदय का,
अलंकार बनता भू-नभ के उच्च प्रणय का;
तेज-प्रेम - आलोक - समन्वय विभु - जीवन का
बन जाता आदर्श सहज ईप्सित त्रिभुवन का।

मणिरत्नों मे तेज फलित होता वसुधा का,
पुष्पवनों में खिलता गौरव प्रेम-सुधा का;
गिरि-कुहरों से ज्ञान-प्रभा की रसमय धारा,
निर्झरिणी-सी ज्योतित करती गिरिवन सारा।

मुनि - देवों-से दीप्त तेजभास्वर मानव थे,
दृग में ज्योतिर्लोक जगे प्रतिभा-सम्भव थे;
स्नेह-सुरभि से भरे मनोहर रूप-कमल थे,
जीवन के कृति, ज्ञान, प्रणय शाश्वत सम्बल थे।

मानव ही था बना विश्व का नया विधाता,
मानवता का बना नया मानव निर्माता;
मानव में साकार हो गये विधि, हरि, हर थे,
वे अदृष्ट के रूप अयुत जीवित सुन्दर थे।

नारी में साकार हुई थी वीणा - पाणी,
नारी में ही मूर्त्त हुई लक्ष्मी कल्याणी,
हुई उमा की तपःशक्ति से जाग्रत नारी,
ज्ञान, शक्ति, श्री नारी मे अन्वित थी सारी।

सर्ग २६

शिव नीति वर्णन

दीप्त हुआ जीवन प्रदीप-सा ज्योतिर्मय कैलास,
फैल गया त्रिभुवन मे उसका स्निग्ध पुनीत प्रकाश;
जागे क्रान्तिमयी संध्या में ज्योतिर्लोक अनेक,
जीवन के स्रोतो मे जागे नव रस के उद्रेक।

घन-अंजन से सजल दृगो में भर शीतल आनन्द,
किये भव्य कितने स्वप्नों के लोक पलक में बन्द,
कान्त कल्पना के अंचल में पल कर जो अभिजात,
खिले सर्ग के नये विश्व मे बन जाग्रति के प्रात।

जाग उठा कैलास-दीप बन नये सर्ग का सूर्य,
गूँज उठे निर्झर निःस्वन मे जागृति के द्रुत तूर्य;
नई चेतना-सा त्रिभुवन में फैल गया आलोक,
जीवन-धाराओं में गूँजे नव जागृति के श्लोक।

हुई प्रवाहित नये श्वास-सी स्वच्छ सुगन्ध समीर,
हुये नये रागों से गुंजित जीवन के वानीर;
खिली नई कलियाँ उपवन में भर अधरों मे हास,
मुकुलों के उत्सव-सा फैला जीवन का उल्लास।

उगे पुराने बीजों से ये अंकुर आज नवीन,
नये सर्ग की भव्य भूमिका बना पुण्य प्राचीन;
नये अंकुरों के कोमल दल उत्सुक नयन पसार,
देख रहे अगणित स्वप्नों का सफल भव्य संसार।

नये मन्दिरों में जीवन की जगी आरती कौन,
बोल उठे ये कौन देवता आज युगों से मौन!!
गूँज उठा यह कौन गगन में नये सर्ग का गान!
आज मुक्ति में मुखर हो उठा किसका निर्भय मान!!

"जागो मानव के जीवन में ज्योतिर्मय भगवान!
उतरो अम्बर से अवनी पर स्वर्गिक स्वर्ण-विहान!!
नई प्रभा, आनन्द, शक्ति से जग का जीवन भर दो,
नये जागरण में स्वप्नों को पूर्ण सत्य का वर दो।"

प्रात वन्दना कर मन्दिर में दिव्य देह-युत बाल,
फिरते जीवन की सरिता में बन स्वच्छन्द मराल;
उषा-अरुण-से स्वस्थ मुखों से बिखराते द्युति-राग,
नव मुकुलों-से वितरित करते रसमय गन्ध पराग।

जीवन के पर्वत निर्झर-से चपल, चटुल, गतिमान,
गाते थे उन्मुक्त पन्थ पर जीवन के जय-गान;
उमड़ उमड़ पड़ता गति-क्रम में जीवन का उल्लास,
बिखर बिखर पड़ता वचनों से उर का उर्मिल हास।

विहग बालकों-से तज तरु औ नीड़-तुल्य गृह-गोद,
जीवन के स्वच्छन्द पर्व में मना रहे आमोद;
कर अपने कोमल हाथों से शीतल जल में स्नान,
बनते ओस-धुले कमलों के वे उत्तम उपमान।

मुकुलों-सी मृदु स्वस्थ देह में भरा सुरभि-सा रूप,
जगती देव-तुल्य अंगों में जीवन-दीप्ति अनूप;
तपःपूत उज्ज्वल अनंग-से थे कुमार साकार,
लगती थीं कुमारियाँ पावन रति-की-सी अवतार।

अपने ही कोमल हाथों से बाँध कमर में कच्छ,
धारण करते मृदु अंगों में वस्त्र मनोहर स्वच्छ;
सज्जित होकर बड़े गर्व से करते सुख संलाप,
करते मधुर-सत्व-मय रुचिकर स्वादु कलेऊ आप।

जग उठती पा पोषण तन मे नव जीवन की स्फूर्ति,
होती थी हर्षित प्रसाद पा प्रति सजीव प्रभु-मूर्ति;
भरता नई शक्ति प्राणो मे सत्वपूर्ण आहार,
प्राणो का उल्लास उमड़ता बन स्वछन्द विहार।

पाकर प्रकृति और मानव का वह मौलिक वरदान,
रचते थे मानव जीवन का पावन मंगल-गान;
होता अखिल दुरित क्षय जिससे औ विघ्नों का नाश.
महाकाव्य का शिव जीवन के होता भव्य विकाश।

मुक्त निर्झरों-से पर्वत के गाते गतिमय गान,
भर देते ध्वनि-कोलाहल से मन्दिर का उद्यान,
उमड़ उमड़ पड़ते उत्सव के उत्स तुल्य कल हास,
बिखर बिखर पड़ता फेनों-सा जीवन का उल्लास।

खिल उठते स्वर्गिक सुमनो-से दिव्य मनोहर बाल,
होती हर्षित धरा प्रीति से पुलकित प्रातःकाल,
देख पूर्ण सुन्दर सुमनो से जीवन का उद्यान,
हो उठते प्रसन्न अम्बर के उत्सुक दृग औ प्राण।

हरिण-शावकों-से अंगों मे भर कर मुक्त उमंग,
भरते थे स्वच्छन्द चौकड़ी निज गुइँयों के संग;
क्रीड़ा, कौतुक, कोलाहल से मन्दिर का उद्यान,
बनता प्रति नूतन प्रभात में जीवन का उपमान।

विहगो के गुंजित कलरव मे मिल कोलाहल घोर,
करता दूनी हर्षमयी वह नव जीवन की भोर,
स्नेह-कर्म-गति-ज्ञान-शब्द का पंचामृत पाथेय,
बनता सदा सत्य नारायण की पूजा का श्रेय।

हिलमिल कर क्रीड़ा कुञ्जों में करते नव निर्माण,
पाते सत्य प्रतिष्ठा सुन्दर भावी स्वप्न विधान;
बाल विधाता प्रति प्रभात मे रचते नूतन सर्ग,
न्यौछावर होते थे जिस पर अगणित सुन्दर स्वर्ग।

आँख मिचौनी की क्रीड़ा में होती कितनी खोज,
खिल उठते थे किस रहस्य को पाकर मुख अम्भोज;
उछल कूद क्रीड़ा कन्दुक का कौतुकमय स्वच्छन्द
बनता था व्यायाम मोदमय जीवन का आनन्द।

बनता था क्रीड़ा विनोद ही जीवन का निर्माण,
खिलते थे अन्तर सौरभ से बालक पुष्प समान;
सहज स्वतन्त्र सरल जीवन का क्रीड़ा-पूर्ण विनोद,
सुरभि-हास-सा था लोकों के उर का पूर्ण प्रमोद।

करुणामयी विश्व माता-सी सिद्ध योगिनी कौन,
अन्तर के आनन्द पूर मे मग्न, मोद से मौन,
परमेश्वर की प्राण-प्रकृति की प्रतिमा-सी साकार,
हर्षित नयनों से विलोकती सुषमा का संसार।

देख पथों के तट पर बिखरी यह आनन्द विभूति,
पथिकों के अन्तर मे जगती जीवन की अनुभूति;
लख आनन्द-पर्व जीवन के, पथिकों के व्यवसाय
जीवन के आनन्द-योग के बनते मधुर उपाय।

बने बाल-मन्दिर नगरों में पद पद भव्य उदार,
ग्राम ग्राम में पारिजात-से कर सौरभ संचार,
भरते थे मानव-जीवन में नन्दन का आमोद
हृदय प्रफुल्लित कर, करते थे सफल लोक की गोद।

कर कृतार्थ शिक्षा-लीला से जीवन की शुचि भोर,
नन्दन के स्वच्छन्द हरिण-से जाते गृह की ओर;
बिखराते पथ मे जीवन का रागपूर्ण मकरन्द,
कल्प-कुसुम-से भरते गृह मे सौरभ-सा आनन्द।

बाल मन्दिरो के समीप ही थे युवको के स्थान,
होता था जिनमे जीवन के यौवन का निर्माण;
बाल-सूर्य-से उषकाल मे आकर कान्त किशोर
करते थे जीवन के साधन रुचिमय कठिन कठोर।

परशुराम के तुल्य अनेको जीवन के आचार्य,
करते के सम्पन्न स्नेह से शिक्षा के गुरु कार्य;
शास्त्र-सहित शस्त्रो का देकर श्रेयपूर्ण दृढ़ ज्ञान,
करते जीवन के भवनों के स्तम्भों का निर्माण।

द्वाभा के धुँधले प्रकाश मे कर व्यायाम अनेक,
करते वीर जागरित तन में वीर्य-ओज-उद्रेक;
शक्ति-स्फूर्त्ति भर उर मे करते शस्त्रो का अभ्यास;
श्रेयोन्मुख वर्चस्व विश्व मे मंगल का विश्वास।

बीजों से तारक-त्रिपुरो के पूर्ण प्रकृति का रक्त,
जय कर सकता ज्ञान उन्हें बन केवल पूर्ण सशक्त;
शक्ति-योग से ही कर सकता ज्ञान सुरक्षित श्रेय
अतः ज्ञान पूर्वक युवको का शक्ति-सिद्धि शुभ ध्येय।

हैं प्राकृत पशुधर्म मनुज के जन्मागत संस्कार,
स्वाभाविक है अन्ध प्रकृति का अनियन्त्रित अतिचार;
है जीवन मे शुद्ध ज्ञान ही मंगल-पथ की दृष्टि,
किन्तु शक्ति के बिना न सम्भव श्रेय-सुरक्षा-सृष्टि।

बिना शक्ति के अक्षम रहते दुर्बल तप औ ज्ञान,
असुरों के उत्पात सिद्ध हैं इसका पूर्ण प्रमाण;
असुरों का अवसर बन जाते ज्ञानी दुर्बल दीन;
भय, शंका, भ्रम में हो जाते धर्म-ज्ञान भी हीन।

नहीं प्रकृति मे अनुशासन के निहित प्राकृतिक यन्त्र,
अनुशासन चेतन आत्मा का धर्म सदैव स्वतन्त्र;
ज्ञान, शक्ति, आनन्द सनातन हैं आत्मा का रूप,
इनसे विरहित देह प्रकृति का केवल जंगम स्तूप।

रक्त बीज में लीन असुर नित रहता सदा सचेष्ट,
सदा अपेक्षित है इसके हित उद्यम यत्न यथेष्ट;
इसका केवल मार्ग प्रकृति का साधन से संस्कार,
जीवन में सम्भव न प्रकृति का कभी पूर्ण प्रतिकार।

करता है संस्कार प्रकृति का सात्विक मन का स्नेह,
स्नेह शक्ति का सिद्ध पीठ बन यही प्राकृतिक देह,
तपः पूत होकर बनती है असुर कुलो का काल,
बनता तथा पाशुपत शिव का कोमल ज्ञान-मृणाल।

स्वतन्त्रता औ स्वाभिमान का स्नेह पूर्ण सत्कार,
बाल मन्दिरों में बालों का करता शुभ संस्कार;
माता, पिता, बन्धु गुरु सबका शील समन्वित स्नेह
पाकर, दिव्य रूप बनते थे उनके मन औ देह।

मानव के चरणों मे लिपटी युग से धूल समान,
गन्धवती वह धरा देह में पाकर मानों प्राण;
कुसुमों के रस-रूप-राग से विकसित होती नित्य,
होता उदित क्षितिज पर इसके जीवन का आदित्य।

जीवन-रवि निज सहस करों से तेज, राग, रस तोल,
करता सृजन धूल से सुन्दर रुचिमय रत्न अमोल,
जिनकी दिव्य कान्ति मे पाकर जीवन का परमार्थ,
होते सकल लोक के लोचन पूर्ण प्रसन्न-कृतार्थ।

कुसुम और रत्नों मे पाकर प्रकृति रुचिर संस्कार,
करती दिव्य देह-मन्दिर मे आत्मा का सत्कार;
सहज स्वयंभू—से बालक कर जीवन का निर्माण,
बनते थे अनन्त रूपो मे धरती के भगवान।

युवक आश्रमो मे कर वे ही शक्ति साधना घोर.
नम्र भाल, पर ज्ञान करो मे लेकर शस्त्र कठोर;
शेष असुरता के बीजों के उन्मूलन के हेतु,
सेनानी-जयन्त बनते, ले जीवन का जयकेतु।

दुर्निवार यह प्रकृति प्राप्त कर दिव्य ज्ञान-आलोक,
और स्नेह के रस से सिंचित बनकर पूर्ण अशोक;
तथा ज्ञान की सिद्ध शक्ति में पाकर नित्य त्रिशूल,
वे दानव संस्कार भीत-सी रही निरन्तर भूल।

ज्ञान-शक्ति के ही कूलों मे बहता जीवन स्रोत,
इनकी छाया मे जीवन के सारे क्रौञ्च-कपोत.
अन्नचयन, निर्माण नीड़ का औ स्वच्छन्द विहार,
कर सकते हैं निर्भय होकर शिशु-पालन औ प्यार।

नये विश्व के नर-नारी सब शिव औ उमा समान,
तपःसाधना की दृढ़ता मे देकर प्रीति-प्रमाण,
तपः प्रीति के पुण्य फलों-से शस्त्र-शास्त्र-निष्णात,
अर्पित करते समुद लोक को सेनानी अभिजात।

संसृति के शिव और उमा के अगणित अमृत कुमार,
ज्ञान, शक्ति, नय, स्नेह, शील से रचते नव संसार;
मंगल - मन्त्र लोक - जीवन के तप - साधन से सिद्ध,
ज्ञान, स्नेह, नय, सत्य श्रेय से करते विश्व समृद्ध।

कुसुमों के उल्लास हर्ष से खण्डित कर सब शोक,
बरसाता आनन्द विश्व मे जिसका अमृतालोक;
रहता था पुलकित प्रमोद से जीवन सिन्धु अपार,
खिलता था प्रभात में नूतन सुषमा का संसार।

ऊषा की स्मिति से होती थी दीप्त अरुण की कान्ति,
होती थी परि-व्याप्त विश्व मे स्वस्थ सजग शुचि शान्ति;
निशाचरों हित काल-चक्र-सा होता समुदित सूर्य,
मानव के जागरण मन्त्र - से ध्वनित हो उठे तूर्य।

शस्त्रों का अभ्यास तथा कर पूर्ण प्रचुर व्यायाम,
सिंह - किशोरों - से करते थे वीर युवक विश्राम;
रवि किरणों से स्वर्ण जलों में कर शुचि प्रात. स्नान,
बैठ आसनों पर करते थे युवक योग औ ध्यान।

है शरीर का स्वास्थ्य भूमिका जीवन की अविवाद,
होता दृढ़ आरूढ़ उसी पर जीवन का प्रासाद;
स्नेह संघ की अस्त्र - शस्त्र से शक्ति पूर्ण सम्पन्न,
अनय - वृत्तियों को असुरों की कर सकती अवसन्न।

स्नेह - ज्ञान के आत्म योग के बिना देह - प्रासाद,
सुन्दर सुदृढ़ शून्य मन्दिर है, जीवन का अपवाद;
प्रेत पिशाचों का बन जाता शून्य भवन आवास,
फलती जीवन की विडम्बना बनकर अगणित त्रास।

प्राण प्रतिष्ठित कर मन्दिर मे संस्कृति के अनुकूल,
दिव्य देवता और पुजारी, चढ़ा विनय के फूल,
स्वास्थ्य पूर्ण होता संस्कृति का पाकर अन्तर-योग,
होते बाधित विजित विश्व के विचिकित्सित सब रोग।

स्वास्थ्य और बल स्नेह ज्ञान से पाकर सुन्दर श्रेय,
बनते हैं मानव जीवन की मंगल शक्ति अजेय;
स्नेह-ज्ञान ही दीप्ति दीप-से जीवन-नयन समान,
रक्षा और श्रेय के पथ पर करते नय-सन्धान।

शक्ति, धर्म, नय के सेनानी बनकर युवक किशोर,
स्थापित करते जन जीवन में सुन्दर शील कठोर;
छिपे प्रकृति के अन्धकार मे मानव के अविनीत,
असुर, प्राण के कामी, रहते सदा सशंक सभीत।

नारी के निर्मल जीवन की वही पुरातन पंक,
रूप-शील के शशि-मानस का रही सदैव कलंक,
आज तेज-रवि के प्रकाश मे करती उदित सरोज,
बना रूप आनन्द, श्रेय का साधक पुण्य मनोज।

✓ जिसके रूप, शील यौवन के ध्रुव आतंक समान,
थे उच्छृंखल मानव करते दनुजो का अपमान;
वही कुमारी नारी करती तपः कान्ति का ध्यान,
✓ निर्भय और स्वतन्त्र तपस्या. करती उमा समान।

दण्ड-दर्प से भीत संकुचित वे कुसुमों-से बाल,
खिलकर बन न सके जीवन की जो सुन्दर जयमाल,
निर्भय मुक्त प्रकाश सूर्य का पाकर पावन ओज,
जीवन सर में खिलते बनकर पूर्ण प्रसन्न सरोज।

एक सूर्य के तेज रूप से जैसे सन्ध्या-भोर,
वीर बाहुओं की छाया मे पलते दोनो ओर,
युवकों के बल, शक्ति, शील, नय, तप, छवि का आलोक,
फैलाता आनन्द-अभय था, करके लोक अशोक।

अभय बालकों के जीवन के सौरभमय उद्यान,
कर आमोद हर्ष से पूरित जन जीवन के प्राण;
औ कुमारिकाओं के निर्भय तप शील-छवि-छन्द,
बिखराते मधु रूप-हास का पूत राग-मकरन्द।

युवक-आश्रमों मे विलोक कर शक्ति-ज्ञान का ओज,
खिलते तेज प्रभा से उत्सुक बाल-वदन-अम्भोज;
योगी, व्रती, वीर ज्ञानी औ शील दर्प नय वान,
बनते युवक कुमारी-कुल के प्रिय आराध्य महान।

गृह गृह में अभिजात उमा-सी सुन्दर औ सुकुमार,
करतीं थीं कुमारियाँ सन्तत साधन का सत्कार;
तप, व्रत, नियम, योग चर्या में मनोयोग से लीन
पावन करती थी मनोज का ओज सहज स्वाधीन।

था यौवन का सहज रूप ही अलंकार अपरूप,
औ प्रसाधना कान्तिमती था शुचि लावण्य अनूप;
सरल वेशभूषा मे खिलता रूप और लावण्य,
रूप, शील, नय, तपोदर्प में था कन्दर्प नगण्य।

नत हो जाते नयन लोक के पावन रूप विलोक,
हत हो जाते शील स्नेह से अखिल विश्व के शोक;
शक्ति, ज्ञान, नय, तप, साधन की बन प्रेरणा प्रचण्ड,
होते थे कृतार्थ जीवन मे शील-स्वरूप अखण्ड।

शक्ति-गिरा-श्री का अवनी पर एक रूप अवतार,
करती थीं कृतार्थ युवकों का संयत शिष्टाचार;
रूप, राग, तप, योग, शील की देवी-सी आराध्य,
वीर्य, शील, नय, विक्रम, तप से थी जीवन की साध्य।

कुसुम-पादपों-से जीवन के बाल-वृन्द सुकुमार,
पाते थे अभिषेक स्नेह का सबसे निज अधिकार;
प्रति नर-नारी ने पाई थी ज्यों अनन्त सन्तान,
युवकों औ कुमारियों का था रंजित भव्य विधान।

ब्रह्मचर्य मे ज्ञान-शक्ति का संचय कर भरपूर,
बनते थे कुमार जीवन मे शस्त्र-शास्त्र के शूर;
शक्ति, ज्ञान, बल, दर्प, रूप से प्रचुर प्रबुद्ध कुमार,
करते थे पावन पद-रज से गृह-जीवन का द्वार।

कर मर्यादा विधि से सेवित जीवन के प्रिय भोग,
करते थे कृतार्थ यौवन मे दृढ़ कुमार कृति योग;
श्रेय, शक्ति सौन्दर्य, स्वास्थ्य, छवि रूप, स्नेह में काम
जीवन की विभूति, बन, बनता था अनन्त अभिराम।

पुण्य उमा-सी तपोयोगिनी बालायें नत भाल,
पहनाती सुन्दर स्वप्नों के सुमनों की जयमाल;
कान्तकुमारों के कण्ठों मे, भर रंजित अनुराग,
स्नेह-समर्पण के आदर मे होता सफल सुहाग।

स्नेह-शील की मर्यादा का शुचि आनन्द विनोद,
भर देता उल्लास हर्ष के नव-जीवन से गोद,
होता नव सौन्दर्य-सृष्टि में काम प्रकाम कृतार्थ,
बनता सुन्दर श्रेय राग औ रस पूरित परमार्थ।

जीवन के सौन्दर्य - विधाता माता-पिता उदार,
बनते पालन - हेतु विष्णु और श्री के शुभ अवतार;
जीवन का श्रम, स्नेह, अर्थ कर न्यौछावर उस हेतु,
जीवन के संस्कृति सागर का रचते सुन्दर सेतु।

पशु का पूर्ण धर्म जीवन का धारण औ उपभोग,
प्रकृति प्रदत्त अर्थ उसके हैं, नहीं अपेक्षित योग;
पशुओं के समर्थ शिशुओ के सहज सकल व्यापार,
किन्तु सृजन - निर्माण चाहता संस्कृति का संसार।

करते थे कुमार - मन्दिर में युवक किशोर कुमार,
ज्ञान, शक्ति, तप, योग आदि के पालन पुण्याचार;
तेज - स्वरूप प्रभात सूर्य को देते अर्घ्य पुनीत,
औ समवेत कण्ठ से गाते उज्ज्वल जीवन गीत।

"हे तेजस्वी सूर्य! विश्व के शक्तिमान आधार!
तेज शक्ति आलोक तुम्हारे करें लोक - उपकार;
उज्ज्वल शतदल कमल खिलें शुचि मानस मे जीवन के,
रूप, राग, रस, गन्ध, ज्योति मे फलें श्रेय त्रिभुवन के!"

गौरी मन्दिर में कुमारियाँ करके मंगल गान,
नित्य माँगती थी गौरी से जीवन का वरदान;
"हे तपस्विनी बाल योगिनी! सदा तुम्हारी जय हो,
जग मंगल मे सफल हमारा तप, व्रत, शील, प्रणय हो।"

सिंह कुमारों की सेना का लख पथ में अभियान,
पुलकित होते हर्ष गर्व से लोकों के मन - प्राण;
दृग - दीपक की सहज आरती बारम्बार उतार,
करती थीं कुमारियाँ मन से निज जीवन बलिहार।

जीवन की जंगम फुलवारी तुल्य कुमारी वृन्द,
भरते थे लोकों के मन में सौरभ—सा आनन्द;
पावन रूप शील संयम पर न्यौछावर कर प्राण,
ज्ञानी वीर कुमार मांगते ईश्वर से वरदान।

शिव मन्दिर में शुचि सन्ध्या में भर अन्तर का स्नेह,
करते प्रकट विनम्र हृदय से जीवन के सन्देह
नर—नारी सेवा—व्रत—धारी, धीर सचेत उदार,
स्नेहालाप सहित करते थे नम्र विवेक—विचार।

सन्ध्या को, उद्यान प्रान्त में कर निश्चिन्त विहार,
नर, नारी, शिशु, बाल, कुमारी, युवक, किशोर, कुमार;
दिव्य अंक में पुण्य प्रकृति की जीवन का आनन्द,
करते लाभ, यथा रुचि रचते प्राण काव्य के छन्द।

वृद्ध केहरी—से करते थे वृद्ध मन्द पदचार,
होते हर्षित, देख सामने रुचिर भव्य संसार;
अभी झाँकता था नयनों में चिर रमणीय अतीत,
अभी गूँजते थे कानों में मधुर पुरातन गीत।

देख कल्प—वन कुसुमित अपना होते पूर्ण कृतार्थ,
होती सफल साधना पाकर जीवन में परमार्थ;
बाल, कुमार और युवकों की लख लीला स्वच्छन्द,
पाते थे केवल दर्शन से जीवन का आनन्द।

हरिण शावकों—से भरते थे मुक्त चौकड़ी बाल,
सन्ध्या का मधुराग चूमता उनके अरुणिम गाल;
पग में पवन वेग भरता था औ प्राणों में श्वास,
बनता था उत्साह खेल का जीवन का विश्वास।

लहराते थे मुक्त पवन में बालाओं के बाल,
सन्ध्या के मेघों में जैसे रवि—रश्मियाँ अराल;
सन्ध्या के रंजित मेघों—से रुचिर वस्त्र—पट—वेश,
करते थे अवनी पर अंकित नभ का रंजित देश।

उद्यानों की प्रकृति—भारती रच जीवन का काव्य,
स्वप्नों के सौन्दर्य बनाती सभी सहज सम्भाव्य;
पुष्प—लताओं औ तरुओं के मधुर रागमय छन्द,
भरते थे मानव जीवन में नन्दन का आनन्द।

लक्ष्मी के अनन्त वैभव से भरे पुरों के हाट,
अर्थ—मन्दिरों के खुलते थे जिनमें स्वर्ण कपाट;
जीवन के नय, स्वास्थ्य, धर्म का कर अपार सम्मान,
होकर सार्थक अर्थ बना था जीवन का वरदान।

कस्तूरी मृग के सौरभ का बन अन्तःस्थित कोष,
बना विभूति काम जीवन की नय—संगत निर्दोष;
जीवन के कुड्मल—मुकुलों का केसर—सुरभि—पराग,
कुसुमों से तन, मन, यौवन में भरता स्नेह—सुहाग।

सोने के मोती—सा संचित कर खेतों का अन्न,
करता था नगरों को सन्तत स्वास्थ्य शक्ति सम्पन्न;
उद्यानों के कन्द, मूल, फल बन प्राकृत वरदान,
करते थे रस, रूप, राग मय उज्ज्वल कान्ति प्रदान।

बने अन्नपूर्णा के मन्दिर ग्रामों के आगार,
जिनके अंचल मे पलता था सुषमा का संसार;
स्नेह और श्रम से वसुधा की निधियां अतुल समेट,
करते कृषक-श्रमिक ईश्वर-से सदा लोक की भेंट।

स्वास्थ्य, रूप, नय, शील, धर्म का साधन था व्यापार,
श्री-मन्दिर में थे जीवन के प्राप्य शुद्ध आधार;
मधु, घृत, दूध स्वस्थ जीवन के अमृत तुल्य पाथेय,
शुद्ध स्वच्छ निर्दोष, प्राप्य थे प्रिय जीवन के प्रेय।

अल्प चिकित्सा की विचिकित्सा करता आयुर्वेद,
था आरोग्य स्वास्थ्य, औषधि था श्रम का शुचि प्रस्वेद;
युवकों के आदर्श अनुत्तम थे अश्विनी कुमार,
स्वास्थ्य, शील, सौन्दर्य, शक्ति का अन्वय था उपचार।

धर्म-तुला के तुल्य अर्थ की तुला बनी थी सत्य,
धर्म-श्रेय-साधक जीवन में बने अर्थ के कृत्य;
धर्म-मुक्ति में अन्वित होकर अर्थ बना अभिराम,
जीवन का आनन्द स्वस्थ बन हुआ श्रेयमय काम।

जीवन में अन्वित होकर थी कला बन रही नित्य,
जीवन का स्वरूप बनकर था सम्वर्द्धित साहित्य;
कथा बन रही थी जीवन की गति का भव्य अतीत,
काव्य बन रहा था जीवन का रुचिर श्रेय संगीत।

जीवन के जीवित अंकन थे नाटक के प्रिय दृश्य,
अभिनय की ध्वनि से होती थी प्रकृति अवश्या वश्य;
जीवन के सत्वों का करते दर्शन अनुसन्धान,
स्वस्थ और सम्पन्न बनाते जीवन को विज्ञान।

गृह, आश्रम, उद्यान, विपणि में करती कला विलास,
होता था आनन्द-स्रोत में सफल अखिल आयास;
जन जन के जीवन मे था श्रम, धर्म, कर्म औ श्रेय,
श्रेय, स्वास्थ्य, आनन्द पूर्ण था जीवन उत्तम प्रेय।

कला और साहित्य प्रकृति का कर पुनीत संस्कार,
बनते थे मानव-संस्कृति के सृजन-शील आधार;
करते थे उद्योग समाहित संस्कृति के सब भोग,
करता था आनन्द भोग को जीवन का रस-योग।

था जीवन का कर्म न केवल श्रम अथवा व्यापार,
कला, धर्म, साहित्य आदि मे था सबका अधिकार;
श्रम उद्यम के स्वच्छ स्वेद में भर आनन्द-पराग,
जीवन को करते कृतार्थ थे कला-काव्य-अनुराग।

ज्ञान, भोग, धन, श्रम औ उद्यम बन जीवन-सर्वस्व,
करते नहीं दीर्घ जीवन को मनुजों के थे ह्रस्व;
बना समन्वय नव जीवन का सुन्दर औ शिव कर्म,
सफल और आनन्द पूर्ण थे जीवन के सब धर्म।

भूत पिशाच समान नियति के वे अनियन्त्रित यन्त्र,
थे न मुक्त मानव जीवन में मृत शासन के तन्त्र;
मानव के आनन्द-मुक्ति के बन वे अनुचर दास,
सुख, सुविधा, सौन्दर्य, ऋद्धि का करते नियत विकास।

उद्यम क्षेत्रों में जीवन का खिला नवीन विहान,
मानवता का श्रम-पशुओं ने पाया चिर वरदान;
स्वच्छ निवासों में जीवन की श्री का स्वच्छ विकास,
बना अन्ध मदमय जीवन का गौरवमय उल्लास।

था न मनुज का शासक निर्मम दानव-सा विज्ञान,
मानवता से शासित होकर बना स्वर्ग-वरदान;
स्वास्थ्य-श्रेय में अन्वित होकर उसकी अमित विभूति,
जीवन में आनन्द हर्ष की बनी सुचिर अनुभूति।

ज्ञान, चरित्र, शक्ति सेवा का गौरवमय उत्कर्ष,
बनता था अधिकार पदों का, नहीं स्वार्थ-संघर्ष;
निज सामर्थ्य, शील, क्षमता औ इच्छा के अनुसार,
माननीय जन कर सकते थे पद गौरव स्वीकार।

दम्भ, दर्प शासन का साधन था न राजसी राज्य,
शासन औ सेवा दोनों थे जीवन मे अविभाज्य;
दीन दु:खी अज्ञान जनों का राज्य न था आतंक,
करते थे निज धर्म कर्म औ पर्व सुजन निश्शंक।

मानवता की ज्ञान-शक्ति ही मानों सहज उदार,
अनुशासन को हुई प्रकृति के, शासन में साकार;
श्रेय शील सुजनों को करता शासन अभय प्रदान,
मनुजों के प्राकृत प्रमाद का करता दण्ड निदान।

ज्ञान, शक्ति, आचार, शौर्य की मूर्ति समर्थ उदार,
सैनिक, शासक औ अधिकारी थे प्रभु के अवतार;
दुर्बल मानव के प्रमाद के थे सशक्त प्रतिरोध,
सुजनों के शुभ श्रेय नीति के थे सदैव बल-बोध।

मदिरा, अस्त्र, शस्त्र, शासन से युत अधिकार विधान,
कर सकते मानव समाज में नहीं नीति-निर्माण;
अधिकृत कर तप, ज्ञान, शक्ति से संयम औ उपचार,
कर सकता कल्याण लोक का शासन का अधिकार।

धर्म अर्थ औ काम मुक्ति का अन्वय-पूर्ण विधान,
करता था मानव समाज में शिव नय का निर्माण,
ज्ञान, शक्ति, तप, क्षेम आदि का श्रेयान्वित उद्योग,
करता था कृतार्थ मानव का जीवन-साधन-योग।

सर्ग २७

शिव संस्कृति वर्णन

कैलास शिखर की ज्योतिर्मयी पताका,
फहरी अम्बर में बन जीवन की राका;
फैला उसका आलोक अखिल त्रिभुवन में,
छाया अनन्त आनन्द विश्व जीवन में।

मिट गये विश्व जीवन के संकट सारे,
मानवता से थे असुर सदा को हारे;
मिल गये धूल में वे त्रिपुरों के गढ़ थे
नव चेतनता मे जाग्रत मानव दृढ़ थे।

दुर्बलता में जो अपनी योगी ज्ञानी,
असुरों की सहते रहे सदा मनमानी;
वे आज शक्ति से बन जीवन के नेता,
नूतन संस्कृति के बनते पूज्य प्रणेता।

हो आज ज्ञान से पूत शक्ति मानव की,
बन पूर्ण विजयिनी वह प्राकृत दानव की;
बन रही स्नेह से दीप्त श्रेय की सुषमा,
बन रहा लोक जीवन जीवन की उपमा।

बन अर्थ श्रेय का आज सचेत विधाता,
बन रहा दिव्य मानव का जीवन दाता;
उपकरण आज मानव जीवन के सारे,
बन रहे लोक मंगल के सहज सहारे।

बन स्वास्थ्य, योग औ संयम का सहकारी,
बन रहा काम था जीवन मे उपकारी,
होकर कृतार्थ वह पावन स्नेह सृजन में,
भगवान बन रहा था रसमय जीवन में।

स्वच्छन्द शील बल कौशल था बचपन में,
था ब्रह्मचर्य का तेज भरा यौवन में;
था स्वास्थ्य और सौन्दर्य रक्त - सा तन में,
आनन्द शान्ति का वैभव प्रमुदित मन में।

दिन की आभा में तेज - प्रदीप्ति भरी थी,
शुचि अमृत कान्ति से निशा - अमल निखरी थी;
सन्ध्या अम्बर में रत्न अनन्त खिलाती,
ऊषा अवनी पर थी सुवर्ण बिखराती।

पल - लहर बनाती जीवन की ध्रुवधारा,
अनुभूति और स्मृति बनती युगल किनारा;
हिमगिरि से होकर उदित उदधि को जाती,
पथ मे जीवन के गीत मनोहर गाती।

पल में पल के दल अविदित मिलते जाते,
सुन्दर जीवन का पट अभिरूप बनाते;
जिसमे जीवन की श्री अनन्त छवि खिलती,
जल - चादर मे दीपक द्युति-सी झिलमिलती।

सुन्दर अतीत रंजित गौरव में अपने।
रचना भविष्य के भव्य मनोहर सपने;
बन वर्तमान का सत्य भविष्यत खिलता,
अविरत गति मे जीवन - सरि को पथ मिलता।

पल पल यामों से थे दिन रात बनाते,
थे पक्ष, मास ऋतु, वर्ष निरन्तर आते;
प्रतिवर्ष हर्ष से संवत्सर जब आता,
नूतन जीवन का नव उत्साह जगाता।

कृषकों के श्रम कण बनकर जिनमें मोती
खिलते जिनमें थी लक्ष्मी पुलकित होती ;
वे हरे भरे औ पके खेत लहराते,
भू को वसुन्धरा वैभवमयी बनाते।

नव जीवन का रस छाया नव पल्लव में,
मधु मूर्त्त फलो-फूलों के नव उद्भव में,
गुंजित होते मधु कोष भरे उपवन में
खिल रहे अमृत के पर्व अखिल जीवन में।

सरिताओ में भी नव जीवन भर आया,
किन नई उमंगों से समीर लहराया ;
बढ़ चला तरणि में तेज नये जीवन का,
ज्योत्स्ना मे खिलता ओज नये यौवन का।

विज्ञान, कला साहित्य, योग नव जागे,
नूतन जीवन से सभी अतुल अनुरागे ;
जागी जीवन में थी अभिनव सुन्दरता,
हो रही मर्त्य पर बलि अज्ञात अमरता।

साहित्य जगा नव भावों से जीवन के,
जागे नव स्वर से दीप अनन्त गगन के ;
गीतों में उतरे नये स्वप्न अम्बर से,
जग उठे कल्प के नूतन मन्वन्तर-से।

कवियों ने छवि के सर्ग नवीन जगाये,
स्वरकारों ने थे नूतन राग उठाये,
नृत्यों में खिलती नयी भंगिमा-धारा,
बोला नूतन स्वर जीवन का इकतारा।

चिर आत्म योग में नई चेतना जागी,
जीवन की स्थिति नव गतियों मे अनुरागी;
आनन्द खिला नव पर्वों में जीवन के;
थे मिले मुक्ति को सर्ग नये बन्धन के।

विज्ञान-कला से कौशल के जीवन को;
नव रूप, रंग, पथ मिले नवीन सृजन के,
जागी विभूतियाँ नूतन जीवन रस में
अनुभूति उर्मियाँ उठीं नई मानस में।

हो प्रकृति प्रफुल्लित नव यौवन के रस में,
भरती जीवन का रुधिर नया नस नस में;
थी आज गर्व से फूली धरती माता,
थे पुत्र बने स्वर्गों के नये विधाता।

हो रही अन्नपूर्णा पूजित खेतों में,
सन्देश नये तरुओं के संकेतों में;
खेतों में संचित उद्यम के नव यश थे,
तरुओं पर छाये रस के अमृत कलश थे।

खुल गया हिमालय जीवन के कुड्मल-सा,
चल पड़ा चतुर्दिक गुंजित मधुकर-दल-सा;
हो चला द्रवित मानस किस करुणा क्रम से,
जग पड़ा सहज कैलास योग के श्रम से।

दृग कोटर में उमड़ी करुणा जीवन की,
गूँजी कलकल में नव रागिनी सृजन की;
औषधियो में था नया रूप-रस छाया,
कण-कण में परिचय नव जीवन का पाया।

जग उठे मार्ग सूने पथिकों के स्वर से,
बस रहे शून्य शिखरों पर नये नगर-से;
उत्साह हर्ष से भरे सकल नर-नारी,
उल्लास भरी थी पुलकित संसृति सारी।

जग उठे मान पा आज देवता दिव के,
हो उठे सचेतन जागृति से गण शिव के;
आरोहण में था मान मनुज ने पाया,
मानव ने था भगवान हृदय में पाया।

नव चेतनता से तीर्थ स्वर्ग के जागे,
नत आडम्बर थे सद्भावों के आगे;
सरितायें उमड़ी वेगवती संस्कृति की,
जीवन धारायें बन शाश्वत संसृति की।

जीवन धारा ने नया मोड़ था पाया,
अविदित गति से नूतन संवत्सर आया;
छाई वसन्त की श्री थी पृथिवी तल में,
चैतन्य धन्य था सुषमा के अंचल में।

यह प्रकृति पहन सुन्दर वासन्ती सारी,
हो रही स्वयं अपनी छवि पर बलिहारी;
उस पर नीलाम्बर ओढ़ नवीन निराला,
ले भुवन मोहिनी प्राणों की वरमाला,

वरदान बाँटती नव जीवन के रस के,
गा रही गीत पृथिवी पुत्रों के यश के;
लखकर मानव की सुन्दर सृष्टि निराली,
ईश्वर ने मानव में निज प्रभुता ढाली।

उस नये सर्ग के नव प्रभात की छवि में,
स्वर्णिम आभा से दीप्त नवोदित रवि में.
स्थापित कर नूतन कलश विश्व मंगल का;
बीजारोपण - सा किया साधना - फल का।

कर प्राण - पीठ में शक्ति प्रतिष्ठा विधि से,
कर रुचिर अर्चना जीवन की ध्रुव निधि से;
कर समाराधना महाशक्ति की मन में,
नव तेज जागरित हुआ लोक जीवन में।

समवेत सुरों के महातेज की प्रतिमा,
शाश्वत मंगल की मूर्तिमती वह महिमा;
दुर्गादेवी वह ज्योतिष्मती भवानी,
महिषासुर - मर्दन - करी लोक - कल्याणी,

वह सिंहवाहिनी कोटि — अस्त्र - कर - धारी,
मानव संस्कृति की निकष निर्मला नारी,
पूजित थी बन संसृति की मंगल माता,
जिसमें नवीन जग पुण्य प्रतिष्ठा पाता।

प्रतिपत् - सन्ध्या में नूतन संवत्सर की,
निर्मला द्वितीया कला यामिनीवर की,
शिव की चूड़ामणि बन आभा फैलाती,
नव ज्ञान चेतना दीप्ति मनोज्ञ जगाती।

अनुदिन बढ़ उसकी कला कान्त कल्याणी,
फैलाती अमृतालोक, विश्व के प्राणी
रस और ज्योति से अंचित हो जीवन में,
पाते जीवन का फल शुचि संबोधन में।

वह मधुर वसन्ती यामा की उजियारी,
बिखराती स्वर्ग - विभूति भूमि पर सारी;
प्रमुदित लोकों के मन.कुमुद हो जाते,
आलोक पर्व मे नयन सफलता पाते।

आलोक - तेज बढ़ते जग के जीवन मे,
खिलती विभूतियाँ संसृति के आँगन मे;
पा शक्ति - भूमिका जीवन की कल्याणी,
होती वसन्त - श्री मे रोमांचित वाणी।

शुचि ऋतु की ऊष्मा में बढ़ तेज तरणि का,
बनता प्रचण्ड तप योग - निलीन अवनि का;
तप - शील - मयी धरणी के नित्य निवासी,
हो उठते शीतल रम्य स्वर्ग - अभिलाषी।

पर्वत के शीतल शिखर तीर्थ बन नर के
खिल उठते बनकर स्वर्ग पथिक जीवन के;
वह पुण्य हिमालय स्वास्थ्य शान्ति का दाता,
बनता जग की नव संस्कृति का निर्माता।

वे हिमतुषार की धारायें ध्वनि - शीला,
करती कृतार्थ पथिकों की जीवन लीला;
पीयूष सदृश शीतल सुमधुर जल उनका,
देता प्रमाण जीवन मे अपने गुण का।

वन, उपवन औ पन्थों में पूजा वट की,
थी बनी शरण - सी आतप के संकट की;
घन औ विशाल आकार छत्र - से छाये,
पशु औ पथिकों के वट रक्षक कहलाये।

पुर के उपवन की पंचवटी में गहरी,
बालक व्यतीत करते लम्बी दोपहरी;
शिक्षा, विनोद, क्रीड़ा, कौशल कृत्यों में
आलाप. कथा, अभिनय. उद्यम, नृत्यों में।

प्रभु की करुणा के अयुत छत्र-से छाये,
वट-वृन्दों की छाया में सब जन आये;
विश्राम काम, आलाप यथारुचि करते,
जीवन की शीतलता ज्वाला मे भरते।

आतप के संकट में जीवों ने जाना,
भगवान स्वयं अवतरित हुये बन नाना;
उनका ही रक्षक श्यामल रूप निराला,
कर रहा निवर्तित आज प्रकृति की ज्वाला।

योगी मुनियों-से योगारूढ़ अचल-से,
वरदान शान्ति के दे पल्लव कर-तल से;
करते कृतार्थ थे प्रकृति और संस्कृति को,
आश्रय देकर जीवन की धृति, गति, कृति को।

वे क्षुद्र बीज सिंचित जीवन के रस से,
हो महाकाय पल्लवित वृद्धि के यश से;
बन रहे आज ज्वाला में जग की छाया,
इनकी पूजा मे धर्म रहस्य समाया।

इस धर्म-छत्र के मानों आकर्षण से,
घिरते अनन्त के दृग में करुणा-घन-से;
बन रही नयन का अंजन-सी घन-माला,
कर रही शान्त जीवन की आतप-ज्वाला।

आषाढ़ी सन्ध्या की वह उन्मन बेला,
हो उठी समुत्सुक देख घनों की खेला;
पहली बूंदों से हर्षित दादुर बोले,
पशु, पक्षी, बालक हर्ष विकल हो डोले।

तपती धरती ने पल्लव के करतल से,
निर्जल व्रत का पारण कर नभ के जल से,
विश्वास शान्ति की भरकर गहरी श्वासें,
किन पुण्य फलों की अन्तर मे की आसें।

टूटी अनन्त की आकुल करुणा धारा,
हो गया परिप्लुत रस से भूतल सारा;
उमड़ीं सरितायें औ सागर लहराये,
हर्षित जीवों ने गीत सृजन के गाये।

मेघों - से उमड़े भाव जनो के मन मे,
छा रहा सृजन का उत्सव - सा जीवन मे;
जीवन - स्वप्नों के बीज धरा मे बोये,
भावी संसृति के चित्र अनन्त सँजोये।

वट औ वृक्षों के पादप वन उपवन मे,
कर रहे समारोपित सब हर्षित मन मे,
पुर और पथों की सीमा पर निज कर से,
भावी मानव को वर्तमान के वर - से।

हो रही प्रकृति की छटा मनोज्ञ निराली,
छा रही चतुर्दिक दृष्टि - प्रिया हरियाली;
पक रहे आम किन पुण्यों के मधु - फल - से,
कुंजें गुंजित थी विहगों के कलकल से।

नाचे मयूर हर्षित हो वन उपवन मे,
करते क्रीड़ा उत्फुल्ल विहंग गगन में;
बालक गाते जयगीत पन्थ-आँगन मे,
उमड़ा जीवन का उत्सव-सा सावन में।

बिछुड़ों को आई सुधि सामोद भवन की,
वधुओं को आई याद मधुर बचपन की;
ले चले बहन की विदा हर्ष से भाई,
माता ने बिछुड़ी सुता वक्ष में पाई।

झूली सखियों के संग मनोहर झूला,
गा उठीं गीत बचपन के, यौवन भूला;
हो उठे ग्राम, गृह हर्षित किस उत्सव से,
जीवन के गुंजित गीतो के कलरव से।

आनन्द हर्ष से नाच उठे नर नारी,
हो रही प्रफुल्लित प्रकृति मोद से सारी;
आनन्द पर्व-सा अखिल भुवन में छाया,
गीतों में गूँजी रस की मोहन माया।

करके भाई के नम्र भाल पर टीका,
अंकित अँगुली से अक्षत औ रोली का;
कोमल कर से बाँधी दृढ़ कर में राखी,
निश्छल जीवन के सहज प्रेम की साखी।

बन वीर बन्धु की बहन निर्मला नारी,
बनती संस्कृति की सुषमा काम-कुमारी;
इस मिथुन सृष्टि का मर्म पुनीत निराला,
बन रहा प्रकृति पर मानव की जयमाला।

माथे पर अंकित तिलक तृतीय नयन-सा
शंकर के, करता अविदित काम दहन-सा;
हो प्रकृति पूत मानव के ही जीवन मे,
रचती विमुक्ति के पर्व प्रचुर बन्धन मे।

नारी का नय औ मान, माप संस्कृति का,
पथ उसका शुचि संस्कार निसर्ग प्रकृति का;
है मिथुन सृष्टि सीमा पशु के जीवन में,
मानवता का आनन्द आत्म-बन्धन में।

है अधिक काम से जीवन की परिभाषा,
है अधिक देह से मन की स्नेह-पिपासा;
तम-रज से बढ़कर सत्व-श्रेय जीवन में,
मानवता का मंगल उसके वर्द्धन में।

है सत्व प्रकृति का मंगल पन्थ विधाता,
है सदा सात्विकी प्रकृति मनुज की माता;
गुंजित भगिनी के स्निग्ध करों के द्वारा,
नूतन स्वर पाता जीवन का इकतारा।

करके रस निर्भर संसृति के जीवन को,
भर नये राग से जीवन के गुंजन को;
सावन भादों की घटा गगन में खोई,
नभ की आँखें खिल उठीं स्नेह से धोई।

निकला नवीन रवि नई प्रभा फैलाता,
आलोक-तेज जीवन में ज्योति जगाता;
निर्मेघ गगन की सन्ध्या में विधु-लेखा,
अंकित करती नवयुग की पहली रेखा।

उत्तर पद मे करने को शक्ति प्रतिष्ठा,
जागी जीवन की पुन. मानवी निष्ठा;
फिर शक्ति पीठ में पूजित हुई भवानी,
जीवन के युग पद की संगति कल्याणी।

जीवन के युग कर-पद-दृग की दृढ़ धृति-सी,
अनुभव की निष्ठामयी धीर संस्मृति-सी;
वीप्सा से अंचित मातृ शक्ति की पूजा,
है एक चरण गति अनुगति का क्रम दूजा।

दिन दिन बढ़ती शशि कला कान्ति से दूनी,
आलोकित होती जीवन-रजनी सूनी;
फैली अवनी मे शारदीय उजियारी,
खिल उठी कुमुदिनी-सी संसृति सुकुमारी।

रजनी में शशि का अमृतालोक बिखरता,
दिन का मुख रवि की द्युति से मधुर निखरता;
आलोक पूर्ण जगती का जीवन सारा,
ज्योतिर्मय ने द्युतिकर से स्वयं संवारा,

आलोक-अमृत भर भर पलकों के प्याले,
पीते जीवन के रसिक नवीन निराले;
उन्मुक्त गगन सुन्दर रमणीय धरा का,
खिलता यौवन का रूप रुचिर अजरा का।

गिनते जीवन के स्वप्न सुमन-से तारे,
सुनते अनन्त के तन्त्र शान्ति से सारे;
रस, ज्ञान, मोद की करते अगणित बातें,
खिलती प्रभात बन कर रसिकों की रातें।

स्वप्नों के सौरभ-सी चाँदनी निराली,
अंचित करती नव यौवन की हरियाली;
सैकत पुलिनों पर चाँदी की रज बिखरी,
जीवन की निधियाँ अमृत कान्ति से निखरीं।

शिव की विभूति - सी भू - अम्बर में छाई,
अनुभूति अमृत - जीवन में मधुर समाई;
रचती स्वप्नों के लोक निशा सुकुमारी,
करती सत्यों के स्वर्ग उषा बलिहारी।

उस मधुर शरद् के स्वच्छ शीत मे पलती,
जीवन की लक्ष्मी गृह मन्दिर मे खिलती;
वे रोग दोष के मूल दूर कर सारे
जन जन ने रुचि से निज गृह-द्वार संवारे।

जग उठी अमा में जीवन के जड़ तम की
आलोक - सृष्टि मानव आत्मा के क्रम की;
जागे जीवन के दीप स्नेह से बारे,
उतरे अवनी पर अन्तरिक्ष के तारे।

उतरा भू पर आलोक स्वर्ण अम्बर का,
साकार हुआ आलोक पर्व अन्तर का;
जगमगा उठा जीवन का नया उजाला,
नयनो का उत्सव हुआ नवीन निराला।

मानव जीवन मे श्री सुषमा - सी जागी,
उस पुण्य पर्व से हुई धरा बड़ भागी;
हो उठी शक्ति सुन्दर श्री - स्नेह - प्रभा से,
जागी जीवन की उषा प्रदीप्त अमा से।

वसुधा के रत्न किरीट समान चमकता,
तारों के नभ-सा उज्ज्वल दीप्त दमकता,
जगमग जाग्रत हिमवान अपूर्व छटा से,
जागे ज्योतिर्मय लोक अनन्त घटा से।

उस ज्योति-पर्व की पुण्य निर्मला ऊषा,
पावन भावों की मधुर मुक्त मंजूषा,
शुचि सरल स्नेह से भरी बहन वह भोली,
करती भाई के अंकित अक्षत रोली।

वीप्सा से उन्मीलित वह तिलक निराला,
फिर फिर प्रकटित कर शम्भु तेज की ज्वाला;
शिव काम-दहन का मर्म हृदय में भरता,
उद्घाटित संस्कृति का रहस्य ध्रुव करता।

निष्काम प्रेम की प्रतिमा भगिनी भोली,
भरती रत्नों से जग जीवन की झोली;
आवृत्ति तिलक की हो स्मृति की दृढ़ निष्ठा,
यह पुण्य स्नेह संस्कृति की बने प्रतिष्ठा।

ले रुचिर शरद की श्री-सुषमा की महिमा,
आलोक-स्नेह की ले गौरवमय गरिमा,
हेमन्त शिशिर के हिम तुषार में तपती,
यह धरा उमा-सी मन्त्र प्रेम का जपती।

हेमन्त-शिशिर में जीर्ण-शीर्ण हो झरते
तरु-पत्र, प्रकृति का अंचल जो थे भरते;
बन आज अपर्णा धरा उमा-सी अचला,
कर रही त्याग से कठिन तपस्या सफला।

हेमन्त - शिशिर मे जो धरती मे सोये,
उगते वसन्त मे बीज शरद के बोये;
अवनी पर नये अंकुरों की हरियाली,
फैलाती सुन्दर मनहर छटा निराली।

बन भव्य भूमिका मधुर वसन्तागम की,
रंगीन विजय बन धरती के तप - श्रम की,
खिल उठती सरसों के पीले फूलो मे,
जय गीति गूंजती सरिता के कूलो मे।

ले नये रुधिर की उज्ज्वल कोमल लाली,
खिल उठी पल्लवो से तरुओ की डाली;
अरुणिम अधरो से प्रकृति मधुर मुसकाती,
कोकिल के स्वर मे गाती नई प्रभाती।

फैली सुषमा की सुरभि समस्त भुवन मे,
गुंजित जीवन का राग नवीन पवन मे
उमड़े भावों के स्रोत नये जीवन मे,
पा रहा अमरता जीवन नवल सृजन मे।

इस सृजन पर्व की सुषमा मे कल्याणी,
हो उठी मुखर जीवन की रसमय वाणी;
उड़ चले हंस मानस - मुक्ता के भागी,
मानव जीवन मे हंसवाहिनी जागी।

कर सत्य - श्रेय का तत्व विवेक - प्रवीणा,
वादित करती जीवन की मंजुल वीणा;
हो रही भारती पूजित आज भुवन मे,
हो रही आरती संविद् की जीवन में।

वह शक्ति भूमिका तेजमयी कल्याणी,
हो रही सफल पाकर जीवन की वाणी;
माता - भगिनी का निश्छल स्नेह हृदय का;
कृत कृत्य हुआ आलोक प्राप्त कर नय का।

जीवन में पाकर ज्ञान प्रेम की निष्ठा,
होती संविद् के नय की अमर प्रतिष्ठा;
आलोक - आरती मे जीवन संस्कृति की,
हो रही पूर्ण, परिणति मानवी प्रकृति की।

शुचि, शक्ति, स्नेह, श्री तपोज्ञान - अन्वय मे,
हो रहे श्रेय सम्पन्न सुजीवन - नय मे;
जीवन साधन के फल से मंगलकारी,
अन्तर से पूजित हुये आज त्रिपुरारी।

शिव में ही अन्वित परिणति सब साधन की,
शिव में कृतार्थता मानव के जीवन की;
शिव में ही है सुन्दर की पावन पूजा,
शिव से बढ़कर जीवन में सत्य न दूजा।

करबद्र सदृश हैं वैभव सफल प्रकृति के,
हैं बेलपत्र त्रिनयन जीवन जागृति के;
है अमृत तत्व जीवन के आक - धतूरे,
शिव में जीवन के धर्म - कर्म हैं पूरे।

कर शक्ति, स्नेह, श्री, ज्ञान सहित त्रिपुरारी
पूजित अन्तर से, संसृति के नर नारी,
हो रहे धन्य पाकर जीवन के फल से,
खिल रहे हर्ष से दृग आलोक - कमल - से।

होकर शिव में जीवन की परिणति पूरी,
कर रही भंग रस मे जीवन की दूरी;
जीवन के कोमल राग स्वरों पर तुलते,
जीवन सुमनों के कोष गन्ध के खुलते।

खिलते अवनी के राग अनेक सुमन में;
बहता जीवन का गन्ध सुगन्ध पवन मे;
चेतन जीवन ने सब जड़तायें त्यागी,
हो उठा अखिल जीवन रस का अनुरागी।

उमड़े जीवन मे रस के उत्स निराले,
गा रहे गीत मधुकर रस से मतवाले;
जीवन मे रस का राग रंग बन छाया,
फैली जीवन की रंजित मोहन माया।

हो उठी राग-रस-रंजित संसृति सारी;
हो उठे आज रस से निर्भर नर नारी;
रस, राग, हर्ष का अमृत पर्व जीवन मे,
छाया गृह, ग्राम, नगर, पथ, वन, उपवन मे।

बन महाकाल के आज अनन्य पुजारी,
कर रहे काल को सहज विजित नर नारी;
जीवन रस उमड़ा बाल, वृद्ध, यौवन में
छाया जीवन का अमृत पर्व जीवन मे।

सुमनों ने ले रस-राग-भरी पिचकारी,
पथिकों को रंजित कर छोड़ी किलकारी;
उड़ता अबीर ऊषा के राग सरीखा,
मन ने जीवन से जागृत जीवन सीखा।

उल्लास हर्ष का पर्व खिला जीवन में,
आनन्द अपरिमित जगा मनुज के मन में;
जीवन में खिलता मर्म आज जीवन का,
आनन्द मुक्ति में खुला मर्म बन्धन का।

कोकिल ने स्वर में सुधा हृदय की घोली,
गा उठी एक स्वर से मनुजो की टोली;
"रस औ राग का पर्व मनोहर आया,
जीवन का सुन्दर सार सभी ने पाया।

गल रहे स्नेह से द्वेष अशेष पुराने,
बन रहे बन्धु जीवन के चिर अनजाने;
बन रहे बाहु वीरों के हार हृदय के
हो रहे हृदय परिचित हृदयों की लय से।

जग उठी पूत जीवन-बेदी की ज्वाला,
हो उठी विचंचल जीवन की जयमाला,
पूजा से पावन छवि के कान्त करो में,
अवतार काम के हुये अनन्त वरों में।

हो शक्ति-स्नेह से संस्कृत वीर हृदय में,
हो श्रेय-ज्ञान से पूत प्रशस्त प्रणय में,
साकार हो उठा काम मनुज के तन में,
हो पूर्णकाम रस-राग भरे जीवन में।

है धन्य उमा-सी प्रति तपशील कुमारी,
है धन्य मनुज जन जीवन के त्रिपुरारी;
कृत कृत्य लोक-मंगल में सब साधन हैं,
आनन्द पर्व में आज सफल जीवन हैं। ५

आरती

जग में मंगल दीप जलें।
जीवन के ध्रुवतारे बन कर स्नेह-प्रदीप जलें।

दीपक-सा शुचि स्नेह-पूर्ण मिट्टी का तन हो,
बाती-सा मृदु सत्व-पूर्ण ज्योतिर्मय मन हो,
आत्मा के आलोक-स्रोत में तम के पुञ्ज गलें।

पूर्ण सत्य की प्रभा विश्व में निर्मल बिखरे,
ज्योति-पर्व में स्नात रूप मानव का निखरे,
सत्य. शक्ति, शिव औ सुन्दर के पथ में लोक चलें।

बने उमा-सी पुण्यवती प्रति प्रकृति-कुमारी,
नर हों शंकर तुल्य तेज-तप संयम-धारी,
शक्ति और शिव की गोदी में वीर कुमार पलें।

परशुराम से बल-विक्रम-युत गुरु हों ज्ञानी,
बने विश्व का प्रति कुमार शिक्षित सेनानी,
शोणितपुर की प्रकृति विजय में स्वर्ग नवीन ढलें।

विश्व-यान-सी बने जागरित संसृति सारी,
शंकर के अवतार बनें मानव त्रिपुरारी,
असुरों के सब छल-बल-विभ्रम जन-अभियाम दलें।

हो शिव का साम्राज्य विश्व में मंगलकारी,
ज्ञान शक्ति-युत बने श्रेय का चिर प्रतिहारी,
शिव-जीवन की कल्पलता पर श्री-आनन्द फलें।

शिवम्

कवि का परिचय

कवि का परिचय

[१]

मैं एक बीज संसृति के अक्षय वट का
उड़ धूलि - कणों के संग पवन पर आया;
जो फिरा शून्य में निराधार ही भटका,
अवनी के उर मे जिसने आश्रय पाया।

तप उठा गर्भ की किस अन्तर्ज्वाला से,
बन गया सृष्टि के पूर्व 'उपक्रम लय का!
घिर अन्तरिक्ष की सजल मेघमाला में
उर हुआ द्रवित किस कोमल करुणामय का!!

हो उठा अंकुरित रूप अलक्षित मेरा,
रस से सिंचित हो अवनी के अंचल मे;
धुल रहा अश्रु से काजल तुल्य अँधेरा,
खिल रहे ज्योति के पर्व मुक्त दृग - दल मे!!

खिल रहीं भूमि पर हैं कितनी फुलवारी,
छाये कितने उपवन औ दुर्गम वन हैं!
सौरभ से आमोदित है अवनी सारी,
छाया से शीतल कितने पथ - आँगन हैं!!

होगा पोषण पाकर धरती के पय से,
पल्लवित कभी यह अंकुर भी इस जग में;
सन्तुष्ट करेगा निज शीतल आश्रय से,
सन्तप्त किसी राही को हारे मग में।

[२]

मैं एक किरण उस अक्षय ज्योतिर्मय की,
जिसकी आभा से आलोकित अग - जग है;
ऊषा में जिसके नित्य नवीन उदय की
जय - गीति सुनाता जाग्रत जीवन - खग है।

उस महाज्योति के आदि स्रोत से मेरा,
जीवन अनन्त के शून्य पन्थ में आया,
भू पर आने के पूर्व अपार अँधेरा
घनमाला - सा था अन्तराल में छाया।

किसकी करुणा के ज्योतिर्मय दृगजल - सा
हो गया द्रवित वह घन - सा सान्द्र अँधेरा!
खिल उठा व्योम के सर में शुभ्र कमल - सा
शुचि ज्योति - पर्व में स्नात मनोरथ मेरा!!

कितने दीपक जल रहे रुचिर अवनी में
पारस कर से, भर स्नेह गृहों में बारे!
अम्बर में होते आलोकित रजनी में
कितने शोभामय शशि औ उज्ज्वल तारे!!

उत्तर आशा की अमृत शिखा यह उज्ज्वल,
बनकर जीवन की रजनी का ध्रुवतारा.
सप्तर्षि मार्ग के लक्ष्य - बिन्दु - सी निश्चल
होगी मानव की गति का नित्य सहारा।

[३]

मैं अमित तेज की एक क्षुद्र चिनगारी
विच्छुरित शून्य से आई अवनीतल में,
लय हुई गर्भ में भूल अरुणिमा सारी
घन में बिजली, बड़वा-सी सागर-जल मे।

दब गई विफल स्वप्नों की धूमिल रज में
वह राहु-ग्रस्त अस्तमित व्योम के रवि-सी,
केसर-सी संध्या के मुकुलित पंकज मे,
जीवन की गोधूली मे सोये कवि-सी।

किसकी करुणा की वायु बही अम्बर मे,
जागे जीवन की ज्वाला के अंगारे!
प्रज्वलित हुईं ज्वालामुखियाँ अन्तर मे
बिखरे स्फुलिङ्ग बन उज्ज्वल रवि, शशि, तारे!!

कितनी बड़वायें उठ सागर में डोलीं,
फैली कितनी दावाओं की ज्वालायें!
कितनी ज्वालामुखियों ने लपटें खोलीं
नभ में नर्तित उल्काओं की मालायें!!

यह लघु चिनगारी मेरे भी जीवन की
बन किसी यज्ञ की उज्ज्वल शिखा पुनीता
शुचि गार्हपत्य बन किसी पवित्र भवन की
होगी जीवन की चिर ज्योतिर्मय गीता।

[४]

मैं एक बिन्दु हूँ उस रस के सागर का
जो अखिल विश्व के अन्तर में लहराता,
जिसमें आत्मा का राजकमल केसर-का
सौरभ-पराग आलोक-सदृश बिखराता।

किस तरुण ताप से ऊर्जित शून्य गगन में
जो लक्ष्य हीन भी घन-सा रहा विचरता,
जो अचल शिलाओं से अवरुद्ध, भुवन में
अन्तःसलिला-सा रहा अलक्षित बहता।

किस करुणामय का शीतल स्पर्शन वर-सा
नभ से अवनी का सरस मार्ग बन जाता,!
किसका अवलोकन बेध शिलायें शर-सा
जीवन-प्रवाह की मुक्त सरणि बन आता!

बह रहे अनेकों रस के स्रोत भुवन में,
कितने सर निर्मल नीर भरे लहराते!
कितने रस के निर्झर कलकल निस्वन मे
जीवन के सुन्दर गीत चिरन्तन गाते!!

यह स्वाति-बिन्दु-सा सफल अश्रुकन मेरा
होगा मन की सीपी के मुक्ताफल में,
बन किसी आँख का आशा-पूर्ण सवेरा
होगा कृतार्थ खिल ओस भरे शतदल मे।

[५]

मैं एक वर्ण · उस चिर जीवन के स्वर का
जो गूँज रहा अज्ञात अनन्त गगन में,
रसराग अपूर्व अलक्षित बन अन्तर का
प्रति ध्वनित कभी जो होता तन्मय क्षण में।

अवरोध कण्ठ का बन जीवन की सीमा
थी रही मौन का विवश काष्ठ - व्रत भारी;
छाती पर बैठी नियति शिला - सी भीमा
वर्जित करती स्वर - क्रम की विधियाँ सारी।

किस करुणा का उद्रेक श्वास औ स्वर की
बन मुक्त सरणि बन्दी जीवन में आया,
चिर मौन वर्ण - विधि ने मेरे अन्तर की
किस महाराग में जीवन का पथ पाया?

हैं गूँज रहे मधुराग अनेक भुवन मे
कर मुग्ध लोक के रसिक श्रवण औ मन को!
प्रति-ध्वनित विहग-सरि-निर्झर के निस्वन में
कर रहे मनोरम जीवन के बन्धन को।

यह एक वर्ण - विधि मेरे अविदित कवि की
बन कर मानव के मुक्त कण्ठ की वाणी,
होगी अवनी में सदा शक्ति - शिव - छवि की
चिर रूप रागिनी अमृतमयी कल्याणी।